CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9-1/83

Provincial Museum,
LUCKNOW.

91/83

State Museum,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum, LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्यकालीन भारत

(द्वितीय संस्करण, संवर्द्धित एवं संशोधित)

लेखक

परमात्मा शरण

इतिहास विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय

बनारस।

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बनारस।

सन् १९४५]

[मूल्य ३) २।।/

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Publisher,
Nand Kishore Bhargava,
Nand Kishore & Bros.
Benares City.

954.02

Printer,
H. M. Sapre,
Shri Lakshmi Narayan Press,
Benares City.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले संस्करण की भूमिका

गत वर्ष श्री काशी विश्व विद्यालय के इण्टरमीडियेट में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने का शुभ निश्चय करने से हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता हुई। प्रस्तुत पुस्तक मुख्यतया इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिये लिखी गई है। परन्तु केवल हिन्दी ही में नहीं, अंग्रेजी में भी इण्टर के स्टएडर्ड की इतिहास की उत्तम पाठ्य पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। खेद यह है कि कई आधुनिक भारतीय विद्वानों ने, जिन्होंने इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं, प्रारम्भिक पाश्चात्य लेखकों की ही लकीर पीटी है। आवश्यकता यह थी कि वे इतने दिनों की नई खोज और नये विचारों का पूरी तरह प्रयोग करके इतिहास को सच्चा रूप देते। मानव समाज की सतत उन्नति या अवनति, भिन्न भिन्न विचारों की प्रगति, संस्थाओं का उद्गम, विकास तथा नाश, इन सब का अध्ययन तथा अनुशीलन करना तथा यह समझने का यत्न करना कि किन कारणों से एवं किन परिस्थितियों में इस संस्कृति तथा सभ्यता का विकास हुआ है, अर्थात् मानव समाज की प्रगति के मौलिक नियमों का समझना ही इतिहास का अन्तिम ध्येय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विगत काल की घटनाओं और इतिहास के रंग-मञ्च के पात्रों के जीवनों इत्यादि का ठीक ठीक अनुशीलन करना आवश्यक है। इतिहास की घटनाएँ एक प्रकार का पाड़ (Scaffolding) हैं, जिनके सहारे उसका सारा भवन खड़ा है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि पाड़ को ही हम भवन न मान बैठें। अतएव सब से पहले घटनाओं का बड़े निष्पक्ष भाव तथा पूरी छान-बीन और परिश्रम से अध्ययन करना इतिहास के अध्ययन की सर्व प्रथम आवश्यकता है। परन्तु साथ ही संश्लेषात्मक रीति से इन घटनाओं के वास्तविक तत्त्व तक पहुँचना भी उतना ही आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना इतिहासाध्ययन निरर्थक सा हो जायगा। इतिहास को इस दृष्टि से देखने से एक और भी बात निकलती है; अर्थात् इतिहास का विषय केवल राजनीतिक घटनाओं अथवा राजनीतिज्ञों तथा विजेताओं का वर्णन ही नहीं है। उसमें सामाजिक जीवन के अन्य अंगों का भी समावेश होना आवश्यक है।

सामान्यतया इतिहास-लेखक किसी बड़े राजा या विजेता के जीवन काल से मरण काल तक अध्यायों का विभाजन करते हैं। लेखक के विचार में इतिहास की प्रगति में किसी बड़े से बड़े मनुष्य का महत्त्व उतनी ही मात्रा में है जितनी मात्रा में उसने अपने कार्यों तथा चरित्र से सभ्यता तथा संस्कृति अथवा सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव डाला हो। अतएव हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि संस्थाओं को मुख्य मान कर हम विद्यार्थियों को यह बतलाने का यत्न करें कि अमुक संस्था अथवा साहित्य पर अमुक व्यक्ति का इतना प्रभाव पड़ा है, न कि संस्थाओं को गौण स्थान देकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्यार्थियों के मन पर यह प्रभाव डाला जाय कि इतिहास केवल दो चार या अधिक विजेताओं की जीवनियों का अध्ययन है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने इसी उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया है। इस पुस्तक के विषय में एक दो बातें और उल्लेखनीय हैं। कई विषयों पर लेखक के विचार प्रायः पाठ्य पुस्तक-कारों से बहुत भिन्न हैं। इन सज्जनों ने पहले पाश्चात्य लेखकों के सैकड़ों वर्ष पुराने सिद्धान्तों की जाँच करने का कष्ट नहीं किया है। दूसरी ओर कतिपय नये विद्वान ऐसे हैं जो अलाउद्दीन खल्जी के काल में State Socialism और Enlightened Despotism (उन्नतिशील स्वच्छन्द शासन) का स्वप्न देखते हैं।

इस प्रकार के सिद्धान्त उन विद्वानों की आकांक्षा को प्रतिबिम्बित करते हैं, न कि किसी वास्तविक घटना को। तत्कालीन साहित्य तथा अन्य सामग्री का भली भाँति अध्ययन करनेवाला कभी इस प्रकार के परिणाम पर नहीं पहुँच सकता।

इसके अतिरिक्त राजपूतों के पतन, बल्बन, नासिरुद्दीन महमूद (दास वंश), इमादुद्दीन रेहान, अलाउद्दीन खिल्जी, खुसरू बरवारी इत्यादि के विषय में लेखक के विचार प्रचलित सिद्धान्तों से बहुत भिन्न हैं। इनकी ओर ध्यान आकृष्ट करने का अभिप्राय केवल यह है कि विद्यार्थी इनको ध्यान से पढ़ें और शिक्षक वर्ग इन पर विवेचना करें। पर लेखक का दावा यह नहीं है कि यह नवीन विचार अन्तिम सत्य अथवा अटल हैं।

यह पुस्तक कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण बहुत ही जल्दी में लिखी गई है, विशेष कर इसका उत्तरार्द्ध। अतएव इसमें अनेक त्रुटियाँ होंगी। यदि कोई विद्वान किसी प्रकार की भूल या त्रुटि की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे तो लेखक उनका बड़ा कृतज्ञ होगा।

मैं श्री आ. बा. ध्रुव, तथा प्रो. श्रीकृष्ण व्यङ्कटेश पुणताम्बेकर का अत्यन्त आभारी हूँ जो मुझे अध्ययन कार्य में सदैव प्रोत्साहन तथा अपने सत्परामर्श से सहायता देते रहे हैं। ग्रन्थ की रचना में मुझे श्रीरामचन्द्र जी वर्मा से भी बहुत बड़ी सहायता मिली है, जिसके लिए मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

अन्य कई प्रकार से मुझे इस कार्य में श्री सुरेन्द्रदत्त सनवाल एम० ए०, तथा श्री भैरवलाल जावेरिया एम० ए० से भी सहायता मिली है जिसके लिये मैं इन मित्रों का कृतज्ञ हूँ।

विजया दशमी १९९१.
२११, केम्डन रोड, लण्डन।

परमात्मा शरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरे संस्करण की भूमिका

मध्यकालीन भारत पहली बार सन् १९३४ के अप्रेल और मई में लिखा गया था जब कि मैं यूरोप जाने की तैयारी कर रहा था। इस कारण पहले संस्करण में कई त्रुटियाँ रह गई थीं। प्रस्तुत संस्करण में पुस्तक को बहुत बढ़ा दिया गया है और पहले संस्करण की त्रुटियों को भी दूर करने का भरसक प्रयत्न किया गया है। इसमें एक नया अध्याय भौगोलिक परिस्थिति पर जोड़ा गया है, जिस पर विद्यार्थी वर्ग को विशेष ध्यान देना चाहिये क्योंकि जिस दृष्टिकोण से इस अध्याय में भौगोलिक प्रभाव की व्याख्या की गई है वह लेखक की रचनाओं के बाहर कहीं नहीं मिलेगा।

इस संस्करण में दक्षिण खण्ड के राज्य, सलतनत के युग में देशी राज्यों का इतिहास इत्यादि कई नये विभाग भी जोड़े गये हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तर पश्चिम की प्राचीन समस्या, तुर्क, अफ़गान आदि क्यों अन्य बाहरी जातियों की तरह हिन्दुओं में न समा गईं, इसके कारण, बलबन, नासिरुद्दीन, महमूद दास वंशीय के चरित्र, अलाउद्दीन ख़िल्जी की आर्थिक योजना मुग़लों की धार्मिक नीति, इत्यादि विषयों की विषद रूप से व्याख्या की गई है और जो सिद्धान्त इन विषयों पर प्रतिपादित किये गये हैं वे बिलकुल नई स्थापनाओं के आधार पर हैं जो कट्टर सार्वजनिक मत से बहुत भिन्न एवं सर्वथा विपरीत हैं। इस कारण विद्यार्थियों को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

अन्त में एक बात विशेष उल्लेखनीय है। हमारे देश में राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं स्वालम्बन के आन्दोलन के कारण जो उत्तेजित एवं उग्र वायुमण्डल उत्पन्न हो गया है उसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या सबसे अधिक जटिल जान पड़ती है। इस समस्या का समाधान करने के अनेक उपाय किये जा रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमान बादशाहों की शासन नीति से इस समस्या का गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध इस कारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है कि विदेशी लेखकों, विशेषतः अँग्रेज इतिहासकारों ने हमारे इतिहास को अपने लाभ के लिये काफी रंगा है और उसका एक बड़ा विकृत रूप प्रदर्शित किया है। हमारे इतिहास के इस विकृत रूप को जो बाहरी लेखकों की देन है, सुधारने और उसे वास्तविक रूप में प्रदर्शित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

परन्तु एक और शिविर से बेचारे भारतीय इतिहास का कारटून बनाया जा रहा है और उसका गला घोटा जा रहा है। इस शिविर में वे लोग हैं जो हिन्दू-मुस्लिम एकता कराने के जोश में यह प्रयत्न कर रहे हैं कि किसी न किसी प्रकार कतिपय मुसलमान बादशाहों की संकीर्ण नीति पर पुचारा फेर कर मुसलमानों को खुश कर लिया जाय और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता बढ़ाई जाय। इन सज्जनों का भाव तो बड़ा सराहनीय है परन्तु उनको यह नहीं मालूम कि इस प्रकार के प्रयास से वे इतिहास का तो वध कर ही रहे हैं, साथ ही अपने उद्देश अर्थात् राष्ट्रीय एकता और हिन्दू-मुस्लिम एकता, को भी अधिक कठिन एवं असम्भव बना रहे हैं। इस प्रकार की काररवाई से वे दोनों वर्गों को अधिक कट्टर एवं असहनशील बना रहे हैं। उनको यह समझना चाहिये कि सच्ची सहनशीलता, उदार-भाव, प्रगतिशीलता इत्यादि गुण किसी जाति अथवा राष्ट्र में तब ही पैदा होते हैं जब उसमें अपनी पुरानी संस्थाओं एवं पूर्वजों के गुणदोष दोनों ही को एक वैज्ञानिकी समदृष्टि और समभाव से समझने की क्षमता एवं धैर्य हो। यदि हम इतिहास को उस विकृतदृष्टि से दर्शाने का प्रयत्न करेंगे जिसका संकेत ऊपर किया गया है तो हम इस वैज्ञानिक, निर्लेप व निष्पक्ष भाव को नष्ट करके उन संकीर्ण भावों को पक्का बना देंगे जिनके कारण किसी समय अथवा परिस्थिति में राष्ट्रीय एकता अथवा उन्नति होना असम्भव होता है। अतएव सब विद्यार्थियों को, चाहे वे किसी भी वर्ग अथवा जाति के हों, इतिहास का एक वैज्ञानिक और निष्पक्ष दृष्टि से अध्ययन करना चाहिये तब ही उससे वे वास्तविक लाभ उठा सकेंगे।

का० वि० वि०
२-१०-१९४५

परमात्मा शरण

Provincial Museum,
LUCKNOW.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय-सूची

पहला खण्ड

पहला अध्याय—भारतवर्ष और निकटस्थ प्रदेशों का भूगोल—भौगोलिक परिस्थिति का इतिहास पर प्रभाव—भारतीय भौगोलिक अवस्था की विचित्रता—देश की लम्बाई-चौड़ाई—सीमायें—सीमाओं की विशेषता—हिमालय—उत्तर पच्छिम—उत्तर पूरब—समुद्र तट—बन्दरगाह—चार खण्ड:—हिमालय की घाटी और तराई, उत्तरी मैदान, बीच की विन्ध्य मेखला, दक्खिन—नदियाँ और उनके काँठे या बेसिन—नदियों की देन—नदियों का इतिहास पर प्रभाव—सिंहावलोकन।

दूसरा अध्याय—हर्ष के बाद और इस्लाम की विजय से पूर्व का भारत—१—राजनीतिक स्थिति—राजपूतों और मुसलमानों का प्रादुर्भाव समकालीन—राजपूतों का साम्राज्य स्थापना का प्रयास—

(१) हिमालय प्रदेश के राज्य; चीन, तिब्बत, कामरूप, काश्मीर, नैपाल।

(२) उत्तरी समतल देश या आर्यावर्त्त के राज्य—कन्नौज—गुर्जरों का उत्कर्ष, मगध, बंगाल, पाल वंश, सेन वंश, पच्छिमोत्तर हिन्दुस्तान, बुन्देल खण्ड का चन्देल वंश, चेद का कलचुरी वंश, मालवे का परमार वंश, चावड़ा वंश, सांभर का चौहान वंश, मेवाड़ का गहलोत वंश।

(३) दक्षिण भारत के राज्य—सुदूर दक्खिन के राज्य—

२—धार्मिक, सामाजिक और नैतिक अवस्था—इस्लाम का प्रवेश—सामाजिक अवस्था—सामाजिक कुरीतियों का आरम्भ—भारतवासियों का भौतिक जीवन—व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन।

३—शासन प्रबन्ध और आर्थिक अवस्था—(सं० ६००–१२०० ई० तक)—शासन-व्यवस्था—ग्राम संस्था—न्याय और दण्ड—आय-व्यय—राजनीतिक स्थिति तथा शासन पद्धति में परिवर्त्तन—आर्थिक स्थिति—सम्पत्तिक विभाजन।

४—साहित्य, कला और शिल्प (६००–१२०० ई०)।

तीसरा अध्याय—१—इस्लाम, भारत में प्रवेश करने से पहले।

२—इस्लाम का भारत में शान्ति पूर्वक प्रवेश—इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म की भिन्नता की समस्या।

चौथा अध्याय—इस्लाम का बलपूर्वक प्रवेश—सिन्ध में अरबी शासन—भारत में प्रवेश करने के मुख्य द्वार—अरबी आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर सीमा की राजनीतिक अवस्था—सिन्ध राज्य—इन देशों की सभ्यता—अरबी आक्रमणों का आरंभ—सिन्ध पर मुसलमानी आक्रमण और विजय—सिन्ध की वास्तविक, आन्तरिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवस्था—भारतवर्ष पर चढ़ाई करने में मुसलमानों का उद्देश—सिन्ध पर चढ़ाई और विजय—मोहम्मद बिन क़ासिम—सिन्ध के हिन्दूओं की हार के कारण—अरबी शासन—अरब विजय का भारत पर प्रभाव।

पाचवाँ अध्याय—राज्य स्थापना का आरंभ—यामिनी वंश का प्रयास—मेहमूद—मेहमूद कार्य चरित्र और कार्य—हिन्दुओं की हार का रहस्य—मेहमूद के संसर्ग का साहित्यिक प्रभाव—अलबैरुनी—ग़जनवी वंश का पतन।

छठा अध्याय—सन् १०००–१२०० ई० तक की राजनीतिक स्थिति—देहली और अजमेर—कन्नौज—बिहार—बुँदेल खंड—चेदी—धार—मेवाड़—अनहिलवाड़ा सिंहावलोकन।

सातवाँ अध्याय—मोहम्मदगूरी का प्रयास और सफलता—कुतुबुद्दीन ऐबक और उसका काम—कन्नौज की चढ़ाई—गुजरात कालिंजर आदि की विजय—हिन्दू प्रतिरोध—मेढ़ जाति का विद्रोह—अनहिलवाड़ा की चढ़ाई और लूट—हिन्दू विद्रोह और मोहम्मद की मौत—बंगाल का मुसलमानी राज्य में मिलना—मोहम्मद गूरी का चरित्र—मोहम्मद गूरी के उत्तराधिकारी और उनका काम—कुतबुद्दीन का शासन।

दूसरा खण्ड

देहली की सल्तनत, उसका उत्थान और पतन

पहला अध्याय—सल्तनत की स्थापना और संघटन—दास वंश—उत्तरी भारत की राजनीतिक परिस्थिति और अल्तमश की समस्यायें—अल्तमश का राज्य—अल्तमश का चरित्र और कार्य—केन्द्रीय शक्ती का ह्रास और पुर्नरुद्धार—रुक्नउद्दीन फ़ीरोज़—रज़िया—चालीस शम्सी अमीरों का गुट—नासिरउद्दीन महमूद का राज्य, और बलबन का शासन—बलबन—तुर्की दल का ह्रास—बलबन का शासन—बलबन के राज्यकाल की मुख्य घटनायें—हिन्दू प्रतिरोध—मुग़ल आक्रमणों का प्रारम्भ—मुग़ल आक्रमण और युवराज मुहम्मद की मृत्यु—बलबन के शासन की सफलता और विफलता—मुस्लिम और भारतीय सभ्यता के संघर्ष और सम्पर्क का परिणाम—राजनीतिक क्षेत्र, दासवंश की नीति—शासन प्रणाली—भाषा तथा साहित्य—कला—धार्मिक क्षेत्र—सामाजिक क्षेत्र।

दूसरा अध्याय—सल्तनत का विस्तार—खल्जी वंश—जलालउद्दीन फीरोज़—दास वंश का अन्त—शासन सम्बन्धी समस्याएँ—मुग़लों का आक्रमण—दक्षिण भारत पर अलाउद्दीन की चढ़ाई—वहाँ की राजनीतिक अवस्था—देवगिरि पर चढ़ाई—जलालउद्दीन का बध और अलाउद्दीन का राज्य—अलाउद्दीन के सिंहासनारूढ़ होने के समय देश की स्थिति—अलाउद्दीन के सहायक—उत्तर पच्छिम समस्या—आन्तरिक विद्रोह—मुग़लों के हमले—अलाउद्दीन की आर्थिक योजना—साम्राज्य विस्तार—अलाउद्दीन का चरित्र—साहित्य और कला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीसरा अध्याय—साम्राज्य की चरमसीमा और ह्रास का आरम्भ—तुग़लक़ वंश—कुछ उदारनीति का प्रयोग—चढ़ाइयाँ व लड़ाइयाँ—ग़यास तुग़लक़ का चरित्र—मुहम्मद बिन तुग़लक़ शाह—मुहम्मद तुग़लक़ के शासन का पहला भाग—राजधानी परिवर्त्तन—संकेत मुद्रा—इब्न बतूता का आगमन—मदुरा का विद्रोह—दुर्भिक्ष और मुहम्मद की सहायता—सरगँद्वारी की रचना—अन्य देश विजय करने की योजनाएँ—साम्राज्य के क्षय तथा विच्छेद का आरम्भ—एनुलमुल्क का विद्रोह—अकालपीड़ित जनता की रक्षा का प्रबन्ध—दक्षिण के विद्रोह—सिंहावलोकन—सुलतान फ़ीरोज़शाह तुग़लक़—साम्राज्य का ह्रास और विच्छेद—राजनीतिक स्थिति—शासन व्यवस्था में सुधार—वास्तु—फ़ीरोज़ का शासन कार्य—फ़ीरोज़ का अन्त—चरित्र—पिछले तुग़ल और तैमूर का आक्रमण।

चौथा अध्याय—सल्तनत का संध्याकाल—पुनरुद्धार का निष्फल प्रयास—सैय्यद वंश—लोदी वंश—बहलोल—सिकन्दर—सिकन्दर का शासन—इब्राहीम।

पाँचवा अध्याय—सल्तनत की शासन प्रणाली—केन्द्रिय सरकार—न्याय विभाग—आय-व्यय—प्रान्तीय शासन—सार्वजनिक वास्तु—शिक्षा—सिंहावलोकन।

छठा अध्याय—पठान साम्राज्य का विच्छेद—स्वतन्त्र रियासतों की स्थापना—जौनपुर—जौनपुर की कला और साहित्य—मालवा—गुजरात—चीगढ़ के शासन काल की घटनायें—खान्देश—सिन्ध—बाहमनी राज्य—विजय नगर साम्राज्य—तालीकोट की लड़ाई—विजयनगर का शासन।

सातवाँ अध्याय—समकालीन हिन्दू रजवाड़ों की दशा—राजपूताने के राजवंश—चौहान वंश—मेवाड़ राज्य—मारवाड़ राज्य।

आठवाँ अध्याय—समाज व संस्कृति—मानसिक दासता तथा कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन—मुस्लिम शासन का प्रभाव—मुसलमानों की सामाजिक अवस्था—आर्थिक स्थिति—धार्मिक स्थिति—तान्त्रिक मत—इस्लाम धर्म का प्रभाव—साहित्य और कला—वास्तुकला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Entered 25/11/1948
Provincial ... LUCKNOW
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
State Museum, LUCKNOW.

पहला खण्ड

पहला अध्याय

भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थिति और उसका इतिहास पर प्रभाव

किसी देश के इतिहास का अध्ययन करने के लिए उसके भूगोल का जानना ज़रूरी है। भूगोल की बुनियाद पर ही इतिहास के भवन का निर्माण होता है। जिस प्रदेश में मनुष्य निवास करता है उसकी भौगोलिक दशा उसके सामाजिक व वैयक्तिक जीवन को ढालने में काफ़ी प्रभाव डालती है। प्रत्येक देश और जाति के जीवन-प्रवाह के भिन्न भिन्न पहलुओं पर—उसकी संस्कृति पर, एवं आर्थिक, नैतिक, शारीरिक इत्यादि, सब ही अवस्थाओं पर भूगोल की छाप होती है। अतएव यह आवश्यक है कि हम अपने देश के इतिहास के अध्ययन करने से पहले उसके भूगोल पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल लें।

भारत देश की भौगोलिक परिस्थिति बड़ी अनुपम है। यह बात हम कई प्रकार से देखते हैं। इस देश के राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक भाग्य निर्माण पर भूगोल का जितना प्रभाव पड़ा है उतना शायद किसी अन्य देश पर न पड़ा होगा। दूसरे भौगोलिक दृष्टि से जितना मर्यादित यह देश है उतना और कोई नहीं है। तीसरे हमारा देश एशिया के बीचोंबीच है, और एक प्रकार से समस्त पृथ्वी के भी। इसी कारण इसके उत्तर, पच्छिम, तथा पूरब के देशों से भारतवर्ष का प्राचीनकाल से व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क चला आया है। इसी कारण हमारी संस्कृति अनेक देशों में फैली।

हमारा देश बड़ा विशाल है। उत्तर में पामीर से दक्खन में कन्याकुमारी तक उसकी लम्बाई लगभग तीन हजार मील है और कराची से आसाम तक लगभग दो हजार मील। इसका आकार एक प्रकार का चतुर्भुज सा है जो दो त्रिभुजों के मिल जाने से बना है। एक त्रिभुज तो वह भाग है जिसकी पूर्वी और पश्चिमी रेखा भारत और बंगाल के समुद्रतट बनाते हैं और कन्याकुमारी उसकी चोटी है, तथा विन्ध्याचल की पेटी या मेखला उसकी मूल रेखा (base) है। इस त्रिभुज के ऊपर उत्तरी मैदान और पर्वतों का एक और त्रिभुज रक्खा हुआ है जिसकी एक रेखा तो यही विन्ध्याचल की पेटी है और दूसरी हिमालय की शृँखला, और मूलरेखा उत्तर पश्चिम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की पहाड़ी और सिन्धु नदी। इस त्रिभुज की दो रेखायें बंगाल और बिहार के बीच में बहुत पास आकर फिर से एक चोंगे की तरह फैल गई हैं।

भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत की अगम्य दीवार है जो उत्तर-पश्चिम और पूरब की तरफ अपनी शाखाएँ दक्षिण की ओर को बढ़ा देती है। यह पहाड़ियाँ दोनों तरफ प्रायः समुद्र तक पहुँच जाती है। जहाँ पहाड़ियों की कोर खतम होती है वहीं से समुद्र शुरू हो जाता है और पूरब, पश्चिम के दोनों किनारे दक्षिण में एक नोक पर जा मिलते हैं।

भारतवर्ष की सीमाओं का एक विशेष महत्व है। प्रकृति ने पहाड़ और समुद्र का एक ऐसा अटूट परकोटा इसके चारों ओर बाँधा है कि बाहरी हमले करनेवाले केवल थोड़े ही से रास्तों से इस देश पर चढ़ाई कर सकते हैं। उत्तर में हिमालय की ऊँची दीवार को तो कोई पार कर ही नहीं सकता। उत्तर-पूरब में कुछ दर्रे ऐसे हैं जिनमें से चीन व तिब्बत (त्रिविष्टप) आने जाने के मार्ग हैं। परन्तु इन रास्तों से बड़ी सेनायें आसानी से आ जा नहीं सकतीं। सेनाओं के आने जाने योग्य बड़े दर्रे सिर्फ भारत के उत्तर-पश्चिम में हैं। इनमें दो रास्ते खास हैं, खैबर का दर्रा उत्तर में और बोलन का दर्रा दक्षिण में।

इन रास्तों की विशेषता समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम भारत के उत्तर पच्छिम के उस पार के भूगोल को भी समझ लें। सिन्ध नदी पंजाब के उत्तर पच्छिम में अटक के कुछ ऊपर पहाड़ों की गोद से निकल कर मैदान में दाखिल होती है और दक्खिन-पच्छिम की राह चलती हुई कराची के पास समुद्र में समा जाती है। यही पंजाब और सिंध प्रान्तों की पच्छिमी सीमा है। इसके उस पार समतल भूमि का एक तंग फ़ीता चला जाता है जिसके पच्छिम में पहाड़ी पुश्ता है। इसी पहाड़ी हिस्से में वे सरहदी जातियाँ रहती हैं जिन्होंने हजारों बरस से आज तक किसी शासक का दबाव नहीं माना और आस-पास के प्रदेशों को लूट मार करके अपनी हाजत पूरी करती रहीं हैं। इस पहाड़ी प्रदेश से जो पहाड़ शुरू होता है वह ईरान तक चला जाता है और इसी के ऊपर अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान का उत्तरी भाग और ईरान का उत्तर पूर्वी भाग आ जाते हैं। इस पठार के चारों तरफ एक ढलाव है और उसके नीचे मैदान। केवल उत्तर पूरब में वह बहुत ऊँचा हो जाता है और पामीर से जा मिलता है और इसी प्रकार उत्तर पच्छिम में आरमीनिया की चोटी से। यह सारा प्रदेश इतना दुर्गम है कि मध्य एशिया और इरान आदि से पूरब की ओर आने के लिये इसमें केवल दो ही झरोखे हैं। अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा अक्षु नदी है। उसके दक्खिन में हिन्दूकुश पर्वत है। इस पहाड़ में काबुल के उत्तर में गोरबन्द के पास एक घाटी है जिसके द्वारा इन देशों के बीच आने जाने का रास्ता है। इसी रास्ते से आकर मध्य एशियाई जातियाँ अथवा व्यापारी लोग खैबर घाटी तक पहुँचते थे। दूसरा बड़ा रास्ता उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश के दक्खिन में है। पंजाब के निचले भाग के पच्छिम में सिंध नदी के उस पार का अफगानिस्तान का पठार ढलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ नीचा हो जाता है, लेकिन उसकी एक पंक्ति आगे को सर निकाले हुए बिलोचिस्तान को पार करके समुद्रतट को जा छूती है। इसी पहाड़ी की पच्छिमी सीमा पर कन्धार, चमन, पिशिन, क्वेटा आदि नगर बसे हुए हैं। इनके पच्छिम में यह पठार एकदम नीचे उतर कर मैदान में मिल जाता है जो पच्छिम में सीस्तान तक और उत्तर में हरात तक चला जाता है। हरात अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर-पच्छिम में उसी प्रकार का नाका है जैसा भारतवर्ष में जमरूद और पेशावर का। इस लिये ईरान, खुरासान आदि से आने वाले हरात के बाहरी मैदान से दक्खिन-पूरब की ओर के मैदान के रास्ते से कन्धार पहुँचते थे और वहाँ से, चमन और खोजक की घाटी से होकर पिशिन और फिर क्वेटा के नीचे बोलन के दर्रे के द्वारा सिंध के मैदान में पहुँचते थे। इसी स्थान पर जहाँ मैदान की एक नोक पहाड़ी के बीच में उत्तर की तरफ घुस गई है सीबी नाम का बड़ा प्राचीन गढ़ है।

इन दो मुख्य रास्तों के अलावा, अरबी लोग बिलोचिस्तान के दक्खिन के रास्ते से भी आते थे परंतु वह रास्ता एक बीहड़ रेगिस्तान में होकर जाता है। खैबर और बोलन के बीच में और भी छोटे दर्रे हैं जैसे, कुर्रम, टोची, जो जिले बन्नू के पच्छिम में हैं और गोमल जो डेरा इस्माईल खां के पच्छिम में है। पर इन रास्तों से हम केवल उस बड़ी सड़क तक ही पहुँच सकते हैं जो काबुल से गजनी होती हुई क़न्धार जाती है। भारत के पच्छिम में उत्तर और दक्खिन के इन दो झरोखों और उन तक पहुँचाने वाले रास्तों की नाका बन्दी करके उनको अपने बस में रखना देश की रक्षा के लिये अत्यन्तावश्यक रहा है। जिन शासकों ने इनके महत्त्व को नहीं समझा वे देश की और अपनी रक्षा करने में सफल न हुए।

इसके अलावा एक और भी बात है। जैसा हम ऊपर कह आये हैं, सरहदी पहाडों के अन्दर हजारों साल से कुछ ऐसी जातियाँ बसती चली आई हैं जिन्होंने बड़े कष्टों से परन्तु बड़ी वीरता के साथ अपने जीवन का निर्वाह भी किया है और अपनी स्वाधीनता की रक्षा भी की है।* इन जातियों के ऐसा बेधड़क और लड़ाकू रहने का कारण यह है कि उनके देश में भूमि ऐसी नहीं है जहाँ खाने-पीने की सामग्री काफ़ी पैदा होती हो। इस कारण उनको अड़ोस-पड़ोस के प्रदेशों को लूट खसोट कर अपना निर्वाह करना पड़ता है। सिन्धु नदी के आर पास के प्रदेश सदा से इन लोगो की लूट-मार से पीड़ित रहे हैं। इनकी बसापत भारत और अफगानिस्तान के बीच के रास्तों के उत्तर-दक्खिन में होने के कारण ही तुरकों, मुगलों और अंग्रेजों को देश की रक्षा करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। और आज दिन तक सरहदी समस्या का कोई सुचारू और टिकाऊ समाधान नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज तक किसी शासक ने भी इन जातियों के प्रति किसी रचनात्मक नीति का बर्त्ताव नहीं किया जिससे उनकी आर्थिक एवं प्राकृतिक हाजतों के लिए उनके

* इन में मुख्य अफ्रीदी, यूसूफ जई, बरक जई, खटक, मोहमंद और रजमक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश में काफी सामग्री उत्पन्न होने लगती, एवं उनको शिक्षा दी जाती और इस प्रकार दमन नीति के बजाय श्रेयस नीति के द्वारा उन जातियों को मित्र बनाया जाता।

ऊपर के कथन से स्पष्ट हो गया होगा कि उत्तर-पच्छिमी प्रदेश का इतिहासिक, राजनैतिक, जनवैज्ञानिक एवं सामरिक दृष्टि से कितना भारी महत्त्व है।

उत्तर-पूरब में हिमालय के उस पार से बहती हुई ब्रह्मपुत्र नदी उत्तर-पूरबी कोने में एकदम दक्खिन की ओर को गिरती और फिर पच्छिम की ओर को चलती है, और अपनी धार से हिमालय और दक्खिन-मुखी पहाड़ियों की पंक्ती को काट कर एक खाई बना देती है। यह पहाड़ियाँ जो हाथ की उँगलियों के समान बंगाल के पूरब में उत्तर से दक्खिन की तरफ को फैली हुई हैं बंगाल और ब्रह्मा के बीच में एक अगम्य प्राचीर-सी खड़ी है। इनके उत्तर में ब्रह्मा और चीन के बीच अब एक सड़क बनाई गई है जो आसाम होती हुई हिन्दुस्तान तक लाई गई है। इससे पहले चीन और ब्रह्मा या भारत को जोड़ने वाली कोई ऐसी सड़क नहीं थी।

भारत देश के पूरबी और पच्छिमी समुद्र तटों पर कई बड़े उत्तम बन्दरगाह और नौकाशय हैं। इनमें सबसे उत्तम बम्बई और कराची हैं। मद्रास और मसुलिपटम इत्यादि भी अच्छे बन्दर हैं। इन दोनों तटों के पास पहाड़ियों की पंक्तियाँ उत्तर से दक्खिन तक चली गई हैं और दूर दक्खिन में तृचनापल्ली के पास मिल गई हैं। इन पर्वतावलियों और इनके बीच के दक्खिन के पठार का भी हमारे इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा है।

अब देश के अन्दरूनी भूगोल का दिग्दर्शन किया जाय। प्रकृति ने इस देश को चार विभागों में बाँट रखा है।

(१) **हिमालय प्रदेश**—हिमालय की तीन परवतावलियाँ हैं। इनमें से जो सब से नीची और दक्खिन की तरफ वाली है उसके और बीच वाली अवली, जो सबसे ऊँची है, के बीच में पूरब से पच्छिम तक ऐसी घाटियाँ हैं जिनमें अति प्राचीनकाल से भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करती रही हैं। पहाड़ी प्रदेश के गर्भ में सुरक्षित होने के कारण यह राज सदैव अपनी स्वाधीनता को कायम रख सके। आज तक भी नैपाल एक स्वतन्त्र राज्य है। परन्तु सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृति दृष्टि से यह सारा पर्वती प्रदेश भारतीय राष्ट्र का एक आवश्यक अंग रहा है।

(२) इसके नीचे वह लम्बा, चौड़ा मैदान है जो पच्छिम में सिन्धु नदी से लगा कर बंगाल तक फैला हुआ है। जैसा हम ऊपर बतला आये हैं यह मैदान एक त्रिभुज की शक्ल का है। इसका पच्छिमी भाग कश्मीर की तलहटी से लगा कर समस्त पंजाब और राजपूताने को पार करके विन्ध्याचल के उत्तरी किनारे तक पहुँचता है। पूरब की ओर बढ़ते हुए यह धीरे-धीरे टेढ़ा होता जाता है, कारण कि इसकी दोनों दीवारें, अर्थात् ऊपर हिमालय और नीचे विन्ध्य मेखला तिरछी होकर एक दूसरे की तरफ झुकती जाती हैं और मिरजापुर और चुनार के पास हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में केवल प्रायः १०० मील का अन्तर रह जाता है और बनारस के आगे चलकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तो और भी कम। यह याद रखना होगा कि पच्छिम में यह अन्तर १००० मील के लगभग है या उससे भी अधिक। परन्तु मिरज़ापुर के पास से विन्ध्याचल की रेखा गंगा के किनारे के बिलकुल ऊपर आ जाती है और कोई ५० मील तक इसी प्रकार चलकर फिर नीचे की तरफ को घूम जाती है। यह मिरजापुर और चुनार के बीच की जगह बड़े महत्त्व की है। उत्तर-पश्चिम से बिहार या बंगाल जाने का रास्ता इसी तंग गली के अन्दर से है। गंगा के उत्तर में जो १०० मील से न्यूनाधिक चौड़ी जगह रह जाती, गंगा के परिवार से घिरी हुई है। पूरब से पश्चिम तक नदियाँ हिमालय से निकलकर दक्षिण-पूरब की तरफ बहती और सारे मैदान को चीरती हुई गंगा में आकर समा जाती हैं। यदि कोई सेना या क़ाफ़ला पश्चिम से बंगाल जाने के लिये गंगा के उत्तर के रास्ते से जाय तो उसे अनेक नदियाँ पार करनी होंगी। यह काम बरसात में अत्यन्त कठिन हो जाता है। यही कारण है कि प्राचीनकाल से उत्तर-पश्चिम से पूरब तक का राजमार्ग (जिसे शेरशाह ने फिर से बनवाया और अब वही ग्रांड ट्रंक रोड कहलाता है) बनारस और प्रयाग के बीच के टुकड़े को छोड़कर बाकी एक सिरे से दूसरे तक गंगा के दाहिनी ओर से जाता है। बनारस से प्रयाग तक इस मार्ग को गंगा के उत्तर में ले जाने का कारण ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है। इस टुकड़े में विन्ध्याचल गंगा से सट जाता है इस कारण उस तरफ कोई बड़ा रास्ता बनाना बहुत कठिन है।* उपरोक्त भौगोलिक परिस्थिति से यह स्पष्ट हो गया होगा कि पश्चिम से चलकर बिहार तक पहुँचने में किसी सेना को कितनी कठिनाई होती होगी। उत्तर-पश्चिम में गंगा परिवार की सब धारायें, और दक्षिण-पश्चिम में गंगा का विन्ध्याचल से मिल जाना बिहार प्रान्त की एक किलाबन्दी का काम करता था और अब भी करता है।

अब बिहार (प्राचीन मगध प्रदेश) के भूगोल पर एक नजर डाली जाय। चुनार से गंगा तो एकदम उत्तर को घूम जाती है और बनारस होती हुई पटना तक (कोई २५० मील) उत्तर-पूरब चलती है, पटना से कोई १०० मील, राजमहल तक सीधी पूरब बहती है। यहाँ से वह एकदम नीचे की तरफ गिरती है और इसी प्रकार समुद्र तक चली जाती है। उधर विन्ध्याचल की रेखा तनिक दक्षिण को झुकी हुई सहसराम और सोन नदी के किनारे तक सीधी चली जाती है और फिर उसी नदी के किनारे दक्षिण-पश्चिम को मुड़ जाती है। इस प्रकार गंगा और विन्ध्याचल के बीच में एक विशाल मैदान छुट जाता है। यह मैदान सोन के पूरब में और भी अधिक विशाल हो जाता है क्योंकि विन्ध्याचल की दूसरी शाखा चुनार-सोनवाली रेखा से ५०, ६० मील नीचे सोन के दक्षिण से निकलती हुई बिहार के पूरब में भागलपुर के निकट गंगा के किनारे पर फिर आ झुकती है और उसके साथ-साथ राजमहल अर्थात् बिहार की पूर्वी सीमा तक जाकर फिर एक दम गंगा के घुमाव के साथ ही दक्षिण को घूम जाती है। यहाँ से गंगा दक्षिण-पूरब की ओर चली जाती है और विन्ध्याचल की पहाड़ी, जो

---

* पिछले बरस मुगलसराय से चुनार, मिर्जापुर होती हुई प्रयाग तक सड़क बन गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस जगह छोटा नागपुर की पहाड़ी कहलाती है, दक्षिण-पश्चिम को झुकती हुई पूर्वी तट की पहाड़ी श्रृंखला में जुड़ जाती है। इस प्रकार बिहार प्रान्त का गंगा के दक्षिण का मैदान, नदी और पर्वत की किलाबन्दी के बीच में सुरक्षित है। बिहार के उत्तरार्ध की पूर्वी सीमा नागर नदी है जो राजमहल के पूरब में गंगा में मिलती है। इस प्रकार बिहार और बंगाल का प्राकृतिक रूप से विभाजन हो जाता है और बिहार से बंगाल पहुँचने का केवल एक तंग रास्ता रह जाता है जिसके उत्तर में गंगा और दक्षिण में विन्ध्याचल है। भागलपूर से राजमहल के उत्तर तक जहाँ गंगा एकदम दक्षिण को घूम पड़ती है, कोई ५० मील लम्बी यह तंग गली है। राजमहल के उत्तर में जहाँ से पहाड़ और नदी दोनों दक्षिण को उतर आते हैं, इस गली का मुहाना है। इस मुहाने के पश्चिम सिरे को तेलियागढ़ी की घाटी और पूर्वी सिरे को सकड़ीगली कहते हैं। तेलिया गढ़ी पर एक किला भी बना हुआ था जिसके अवशेष आज भी दीख पड़ते हैं। इसीके ऊपर से ईस्ट इण्डियन रेल जाती है। इस रास्ते के अतिरिक्त सोन को पार करके छोटा नागपुर की पहाड़ियों के बीच से भी एक मार्ग है लेकिन वह बड़ा दुर्गम है।

उपर्युक्त मुहाने के पूरब में बंगाल का मैदान फैला हुआ है जिसके पूरब में गारो और खासी पहाड़ियाँ हैं जो उसे ब्रह्मा देश से अलग करती हैं।

अब हम इस मैदान के पश्चिमी भाग का बयान करते हैं। पश्चिम भाग के दो मुख्य टुकड़े हैं एक तो पंजाब और मध्यदेश या यू० पी० का पच्छिमी हिस्सा जिसकी पूरब की तरफ कमर पतली होती जाती है जैसा हम ऊपर कह आये हैं। दूसरा पंजाब के दक्षिण में राजपूताना। पंजाब और यू० पी० के बीच का हिस्सा दोनों ओर की भूमि से कुछ ऊँचा गाय की पीठ के समान है। यदि अंबाले से झांसी तक एक लकीर खींची जाय तो वह इसी जल-विभाजक को प्रदर्शित करेगी। इस लाइन के ऊपर भारत के प्राचीन, इतिहास प्रसिद्ध नगर बसे हैं। उत्तर में अंम्बाला और रोपड़ से, दक्षिण की तरफ पानीपत, सुनपत, बागपत, तिलपत, करनाल, देहली, कोसी, छाता, मथुरा-वृन्दावन, आगरा, इटावा, धौलपुर, ग्वालियर, दतिया, ओड़छा और झाँसी ध्यान में रखने लायक हैं। अम्बाले के उत्तर में हिमालय की सबसे ऊँची पीठ (Ridge) के इस पार और उस पार के हिमकोष से वे सब बड़ी-बड़ी नदियाँ उदय होती हैं जो उत्तरी मैदान को एक छोर से दूसरे तक सींचती और उसकी भूमि को इतना उपजाऊ, धन-धान्य पूरित, सस्य-श्यामला, सुजला, सुफला बनाती हैं। इनमें से सिन्धु (इण्डस) और सतलज जिनका उद्गम हिमाचल के दूसरी ओर मानसरोवर के पश्चिम में होता है, उसी जल विभाजक के कारण पश्चिम की तरफ चली जाती हैं। यूँ तो इन सभी नदियों के दृश्य अत्यन्त अद्भुत हैं परन्तु सिन्धु की पर्वती यात्रा तो वर्णनातीत है। इस नदी का उद्गम स्थान कोई २०००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। वहाँ से यह उत्तर-पश्चिम की तरफ लद्दाख (प्राचीन ललाटाक्ष) की ऊँची घाटी को पार करती हुई कश्मीर के उत्तर में बहती है और गिलगिट के पास पहुँच कर दक्षिण की ओर घूमती है। थोड़ी दूर दक्षिण चलकर वह फिर कुछ दूर तक पश्चिम को घूमती है और फिर अन्तिम बार दक्षिण को प्रवाहित होकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कश्मीर की पश्चिमी मर्यादा बाँधती है। इस नदी की हजारों मील की पर्वती यात्रा में कई ऐसे स्थान हैं जहाँ उसकी धारा ५, ६ या १० हजार फुट की ऊँचाई तक से एकदम नीचे गिरती है। इसका सर्वोत्तम और अनुपम दृश्य गिलगिट के पूरब में है, जहाँ यह नदी दक्षिण को घूमती है। इसके बायें करारे पर गगनचुम्बी नंगा पर्वत खड़ा है जिसका शिखर २६६२९ फुट अर्थात् ५ मील से अधिक ऊँचा है। इस स्थान पर सिन्धु मानो स्वर्ग से उतरकर नंगा पर्वत के चरणों में गिर पड़ती है और उसकी परिक्रमा करके नीचे की ओर बढ़ जाती है। यहाँ पर यह जिस गिरिकंदरा में से प्रवाहित होकर आती है वह अपनी गहराई और ऊँचाई में संसार भर में अद्वितीय है। गिलगिट की घाटी जो इसके दाहिनी ओर है केवल ४४०० फुट ऊँची है। यदि हम इस स्थान पर सिन्धु के दाहिने किनारे से उस पार देखें तो नंगा पर्वत की पूरे पाँच मील ऊँची हिमाच्छदित चोटी का सारा ढलान नदी के किनारे तक स्पष्ट दीख पड़ेगा। प्रकृति की इस अद्भुत महिमा को देखकर हम विस्मय से मूक रह जाते हैं।

इसी प्रकार सतलज (शतुद्री) सिन्धु के निकटवर्ती स्थान से निकलकर पहले पश्चिम की तरफ कोई २०० मील तक चलकर दक्षिण-पश्चिम को मुड़ जाती है और कुलू और शिवालक पर्वतों की घाटियों को चीरती हुई सरहिन्द के ऊपर मैदान में प्रवेश करती है। पंजाब की बाकी चार नदियाँ भी उत्तर के पहाड़ों से इसी प्रकार निकल कर पंजाब की भूमि को सींचती हुई दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हैं और सब मिलकर अन्त में मिठनकोट के पास सिन्धु में जा गिरती हैं।

सिन्धु और सतलज के उद्गम स्थान के पूरब की ओर से निकलकर ब्रह्मपुत्र (सांङ्पू) पूरब की तरफ तिब्बत में बहती है और फिर आसाम की पूर्वी सीमा के पास दक्षिण की ओर घूम कर आसाम और बंगाल को सींचती हुई गंगा में मिलकर बंगाल की खाड़ी में जा गिरती है।

परन्तु गंगा-जमनाका परिवार प्रायः हिमालय के दक्षिण तरफ वाले हिम प्रवाह से उदित होता है। यह सब धारायें पहले कुछ दक्षिण-मुखी चलकर पूरब की ओर मुड़ जाती हैं और धीरे-धीरे सब ही गंगा में जा मिलती हैं। मध्यदेश के जल-विभाजक के किनारे पर जमना अपने उद्गम से कोई दो सौ मील बहकर पूरब-मुखी हो जाती है। ऐतिहासिक और सामरिक दृष्टि से जमना की धार का अंबाले से आगरे तक बड़ा महत्त्व है। इस किनारे के तीन मुख्य नाके हैं, एक अंबाला, दूसरा देहली, तीसरा आगरा। इनका महत्त्व समझने के लिए राजपूताने का भूगोल समझ लेना आवश्यक है।

राजपूताना पंजाब के दक्खिन में है। इसके दक्खिन की सीमा नर्मदा के किनारे तक पहुँचती है, यद्यपि मेवाड़ के दक्खिन-पूरब की कुछ रियासतों कों शासन की सुविधा के लिए सेन्ट्रल इण्डिया एजेंसी के अधीन कर दिया गया है। राजपूताने के पच्छिम में सिन्ध है जिसकी रेगिस्तानी भूमि जैसलमेर और बीकानेर के दक्खिन भाग से मिली हुई है। राजपूताने में अरावली (आड़ावली) पहाड़ी दक्खिन-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पच्छिम से उत्तर-पूरब की ओर लेटी हुई है जिसकी एक भुजा देहली तक चली गई है। दक्खिन-पच्छिम में यह आबू (अर्बुद) पर्वत तक जाती है। आबू ही इस पहाड़ी का सब से ऊँचा शिखर है जो ५००० फुट ऊँचा है। आबू के नीचे यह पहाड़ी सीधी दक्खिन को मुड़ गई है और गुजरात की पूर्वी मर्यादा बनकर नर्मदा तक चली गई है। इस पहाड़ी ने राजपूताने को दो बराबर भागों में बाँट दिया है। पच्छिम भाग भारत की प्रसिद्ध मरुभूमि है जो सिंध और बिलोचिस्तान के दक्खिन के रेगिस्तान से मिली चली गई है। अरावली के पूरब का आधा भाग बड़ा हरा-भरा और उपजाऊ है जो दक्खिन में मध्यभारत से लगा हुआ है। आबू के पर्वत-गुच्छ से अरावली की एक और भुजा निकलती है जो पच्छिमी भुजा से कोई ५० मील पूरब की ओर उसके उत्तर पूरब को चली जाती है और ग्वालियर तक पहुँच कर फिर उत्तर को घूम जाती है। और फिर धौलपुर, बयाना, भरतपुर आदि के पास होती हुई, जमना के पच्छिम में वल्लभगढ़ के पास पहली भुजा से जा मिलती है। इन दो भुजाओं के बीच में मेवाड़ का प्रसिद्ध राज्य है और उसके ऊपर जयपुर तथा अन्य छोटे राज्य।

हम ऊपर कह आये हैं कि अरावली की अन्तिम भुजा देहली तक चली गई है। एक ओर तो यह पहाड़ी कमान की शक्ल में है, और दूसरी ओर जमना की सीधी धार। इसी चक्रार्ध के घेरे में देहली बसी हुई है। और देहली के दक्खिन में आगरे तक कई सुदृढ़ और महान गढ़ और नगर बसे हुए हैं जिनके पच्छिम में पहाड़ और पूरब में जमना है।

अब यह समझ में आ जायगा कि देहली भारत का मुख्य द्वार है। पंजाब के उत्तर या दक्खिन से घुसने वाले आक्रान्ता को देहली तक आकर तब भारत के गर्भ में प्रवेश करने का द्वार मिल सकता था। पंजाब के दक्खिन में रेगिस्तान है और एक ओर तो उसके अन्दर सीधा घुस जाने में न पानी मिल सकता था न दाना, और पच्छिमी राजपूताने की उर्वरा भूमि में पहुँचने के लिये रेगिस्तान का लम्बा रास्ता तय करके फिर अरावली की भीत और उसके शिखरों पर जो गढ़ बने हुए हैं उनसे भुगतना पड़ता। इस कारण उस मार्ग से किसी आक्रान्ता का आना असम्भव है और उसको भारत के अन्दर घुसने के लिये देहली तक पहुँचना आवश्यक है। देहली को अधिकार में कर लेने वाले के लिये पूरब, दक्षिण और पश्चिम के तीनों रास्ते साफ़ हो जाते थे। इसी कारण ऐसे महत्त्वशाली स्थान पर अत्यन्त प्राचीनकाल में इन्द्रप्रस्थ और मध्यकाल में उसी जगह देहली की स्थापना की गई। अब केवल इतना और याद रखना होगा कि देहली के उत्तर में कोई १२५ मील के फासले पर सिरमूर पहाड़ तक और दक्षिण में आगरे तक जमना के किनारे इसी प्रकार दुर्ग-नगरियाँ बसी हुई हैं। कारण की इसी हिस्से के किसी स्थान से जमना को पार करके बाहरी सेना घुस सकती है। परन्तु इन सबकी व्यवस्था और नियन्त्रण देहली के केन्द्र से ही हो सकती है और होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजपूताने के पूरब में और जमना के नदि-परिवार को अपनी गोद में लिये हुए विन्ध्यपर्वत उत्तर की ओर फैलता जाता है। इसी पर्वत खण्ड के पच्छिमी भाग में बुन्देलखण्ड, उसके पूरब में बघेलखण्ड और उसके पूरब में छोटा नागपुर और सन्थाल प्रदेश स्थित हैं। विन्ध्याचल का यही परकोटा गंगा के मैदान की मर्यादा है। जिस प्रकार हिमालय की घाटियों के अंक में अनेक छोटे-छोटे राज्य प्राचीन काल से पलते और स्वाधीन बने रहे, उसी प्रकार विन्ध्य पर्वत के अंक में भी अनेक राज्य और जातियाँ प्राचीन काल से विद्यमान रहे और ब्रिटिश आतंक से पूर्व अपनी स्वाधीनता को क़ायम रख सके।

इसी विन्ध्य पर्वत के दक्षिण भाग में मध्य प्रान्त और पच्छिम भाग में जो राजपूताने के दक्षिण और गुजरात के पूरब में है, मालवा (अवन्ति) प्रदेश है। विन्ध्य पर्वत का यह सिलसिला जिसकी कन्दराओं में नरमदा और तासी (तापी) तथा चम्बल, केन, बेतवा, धसान, सोन और गोदावरी और महानदी, पूरब से पश्चिम तक जल प्रवाह की एक अटूट शृङ्खला सी समस्त प्रदेश को सींचती है, हमारे देश की कमर में एक प्रकार की मेखला बाँधे हुए हैं। इसी कारण इसको विन्ध्य मेखला कहा जाता है।

इस विन्ध्य मेखला की दक्षिण भुजा के कांठे में, तासी के दोनों पार खानदेश, खानदेश के पूरब में बरार और मध्यप्रान्त का निचला भाग, और फिर गोंडवाना प्रदेश है जो उड़ीसा के अन्दर फैलता हुआ पूर्वी तट तक पहुँच जाता है। ये तीनों प्रदेश विन्ध्य मेखला के निचले ढलान पर स्थित हैं जिस प्रकार उत्तर में गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड इत्यादि की कतार है।

खानदेश और मध्य प्रान्त के नीचे दक्षिण का पठार प्रारम्भ हो जाता है। इस पठार की पहाड़ियों का सिलसिला मैसूर तक चला जाता है। दक्षिण भारत के उत्तराखण्ड या आर्यावर्त्त से विन्ध्य मेखला के कारण बिल्कुल पृथक् सा हो गया है। यहाँ की भूमि पथरीली और कई प्रकार के चट्टानों की बनी है। इन चट्टानों के ऊपर बड़े बड़े दुर्ग बने हुए हैं। सबसे अद्भुत इतिहासिक अवशेष यहाँ के गुफ़ा-मन्दिर और चैत्य हैं।

यहाँ की भूमी कुछ बहुत उपजाऊ नहीं है। केवल थोड़ा सा हिस्सा जो बम्बई के उत्तर व पूरब में है, वहाँ की काली मिट्टी होने के कारण उपजाऊ है।

दक्षिण पठार के पच्छिम में मराठा देश है। उसके तीन मुख्य भाग हैं; (१) कोंकण अर्थात् धरती की वह लम्बी पतली पट्टी जो पश्चिमी घाट के पर्वत और भारत महासागर के बीच में है। ये हिस्सा चौड़ाई में २० मील से शायद ही कहीं अधिक हो परन्तु लम्बाई में कल्याण से गोवा तक कोई ३०० मील है। इसकी पीठ पर सैयादरी या पश्चिमी घाट का पहाड़ खड़ा है। (२) इस सैयादरी की ऊपरी चोटियों पर एक भिन्न प्रदेश है। यह महाराष्ट्र का दूसरा भाग है जो घाट माथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहलाता है। (३) तीसरा भाग वह है जो इस पहाड़ के ढलान पर है। उसका नाम 'देश' है।

पूरबी किनारे का पहाड़ इतना ऊँचा और खड़ा नहीं है जितना सैयादरी, और यहाँ का समुद्री तट भी कोंकण की निस्बत अधिक चौड़ा है। इसका निचला भाग करनाटक, तामिलनाड और ऊपर का तिलंगाना कहलाता है। तिलंगाना गोंडवाना के साथ मिल जाता है।

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति पर यहाँ की नदियों का बड़ा प्रभाव पड़ा है। उत्तराखण्ड की नदियाँ तो आर्यजाति की जीवनाधारा रही हैं। महान हिमालय पर्वत के अनन्त, बहुमूल्य एवं उपजाऊ बनाने वाले कोश को ला ला कर इन नदियों ने उत्तरी मैदान की भूमि पर सदा से बिछाया है और उस भूमि को इतना रत्नगर्भा और सस्य श्यामला बनाया है। इन्हीं नदियों के द्वारा उत्तरी भारत का व्यापार होता रहा है। गंगा, सिन्धु और उनकी सहायक धाराओं के किनारों पर इसी कारण हमारे देश के प्राचीनतम बड़े बड़े नगर पाये जाते हैं। देहली, लाहोर, आगरा, इलाहाबाद, केवल राजनैतिक केन्द्र ही न थे, व्यापार के भी बड़े भारी दिसावर थे। लाहोर से लहरी बन्दर (कराची) को इतना माल नावों द्वारा, पश्चिमी देशों के लिये, जाता था, कि उस बन्दर का नाम ही लाहोरी या लहरी बन्दर पड़ गया था। गंगा-जमना के तट के नगरों का तो कहना ही क्या। इलाहाबाद से भागलपुर और राजमहल तक, मिरजापुर, बनारस, पटना, इत्यादि समस्त शहरों के बन्दरगाहों में २०, ३० और ५० हजार तक नावें माल से लदी खड़ी रहती थीं जो देश के एक कोने से दूसरे तक आती जाती थीं। इस प्रकार यह नदियाँ हमारे देश के आर्थिक और व्यावसायिक जीवन की नाड़ियाँ थीं। नदियों द्वारा हमारा व्यापार अत्यन्त सस्ता और सुव्यवस्थित था। उसके बीमे की भी व्यवस्था थी। बीमा कम्पनियाँ हर व्यापारी दिसावर में होती थीं जिनका पेशा ही व्यापारी सामान का बीमा करना होता था। जब से विदेशी पूँजीपतियों की रेलें बनी, उनकी मालगाड़ियों को चलाउ करने के लिये, हमारे इस नाविक व्यापार को भी उसी प्रकार नष्ट किया गया जिस प्रकार बंगाल और ढाका के कपड़े के व्यापार को।

इसके अतिरिक्त नदियों ने राजनैतिक विभागों, जिलों, इत्यादि के विभाजन में बड़ी सहायता दी है। बहुत से प्रान्तों, सरकारों, परगनों इत्यादि की सीमायें नदियों के होने से बड़ी आसानी से बन गईं। यही नदियाँ आक्रमणों के समय शत्रु से रक्षा करने में भी सहायक हुई हैं।

नदियों के साथ साथ पहाड़ों ने भी प्रान्तों आदि के विभाजन में सहायता ही नहीं दी है किन्तु प्रान्तों के विभाजन को अनिवार्य रूप से प्रभावित किया है।

भौगोलिक परिस्थिति के कारण ही भारत के उत्तराखंड का मैदान एक ऐसा दुर्गम ही नहीं अभेद्य गढ़ बना रहा है जिसमें प्रवेश करने के केवल दो द्वार हैं। इन्हीं द्वारों से होकर बाहरी जातियाँ, व्यापारी एवं आक्रान्ता इस देश में आते रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब तक हमारे शासकों ने इन द्वारों के महत्त्व को समझ कर अपने अधिकार में रक्खा और दृढ़ता तथा सामरिक चतुराई और दूरदर्शिता से उनकी रक्षा की तब तक देश स्वतन्त्र रहा। परन्तु जब से राजपूत शासक इस देश के विधाता हुए वे एक ऐसी संस्कृति में पले थे जिसके रचेताओं ने प्राचीन उदार, उन्नतिशील, सार्वजनिक समानता के जीवन संचार करने वाले सिद्धान्तों पर इस उद्देश्य से कुठाराघात किया था कि वे अपने संकीर्ण एवं संकुचित एकवर्गीय विशेष स्वत्वों की स्थापना और प्रसार कर सकें। इसी धर्म के ठेकेदारों ने अपने अन्धविश्वासी चेलों, यानि राजपूत राजाओं को जीवन के वैयक्तिक, नैतिक एवं सामाजिक, प्रत्येक पहलू में एक बड़े संकीर्ण, और जीवन रहित सिद्धान्तों की शिक्षा दी। इसके अनेक परिणामों को दर्शाने का यहाँ अवसर नहीं है। परन्तु इस संकुचित धर्म भाव और संकीर्ण मनोवृत्ति का राजनैतिक प्रभाव यह हुआ कि समस्त संसार के इतिहास में केवल भारत के राजपूत राजा ही ऐसे हुए जिन्होंने कभी भी अपने देश की सीमा की समस्या को और उसकी रक्षा करने के महत्त्व को नहीं समझ पाया। परिणाम यह हुआ कि ये एक ऐसे देश की भी, जिसको प्रकृति ने ही एक अभेद्य दुर्ग बनाया है, बाहरी लुटेरों और आक्रान्ताओं से रक्षा न कर सके। हमारी आज राजनैतिक ही नहीं परन्तु नैतिक व धार्मिक दासता एवं पतन का मुख्य कारण यही राजपूत काल और उसकी संस्कृति है।

भूगोल का एक और प्रभाव भारतवर्ष जैसे विशाल देश पर यह पड़ता है कि ऐसे काल में जब कि आवागमन के साधन प्रायः मंद गति वाले हों, जो प्रदेश केन्द्र से दूर होते हैं अथवा पहाड़, जंगल या नदियों इत्यादि से सुरक्षित होते हैं उनकी जनता में विद्रोह करने और स्वतन्त्र हो जाने की प्रवृत्ति प्रबल रहती है। इसके प्रतिकूल पास वाले अथवा सुगम स्थानों की जनता राजभक्त रहती है और राज्य की दृढ़ता में सहायक होती है।

देश की उपजाऊ भूमि, सुन्दर समुद्री तट, अच्छे अच्छे बन्दर, बड़ी बड़ी नदियाँ जिनमें व्यापारी बेड़े चल सकें, विपुल खनिज वस्तुएँ इत्यादि, देश और जाति को सुख सम्पन्नता का जीवन प्रदान करके इस योग्य बनाते हैं कि वे अपने अन्दर सुदृढ़, सुव्यवस्थित और चिरस्थायी सामाजिक संस्थाओं की रचना एवं स्थापना कर सकें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

हर्ष के पीछे और इस्लाम की विजय से पहले का भारत

१.

राजनीतिक स्थिति (सन् ६००–१००० ई०)

साम्राज्य के लिये संघर्ष

राजपूत काल की राजनीतिक प्रगति—ईसा की १२ वीं शताब्दी के अन्त में पश्चिमोत्तर देशों से आकर मुसलमान विजेताओं ने उत्तरीय भारत को जीता और उस पर अपना राज्य स्थापित किया। इससे पहले भी भारत पर दो बार मुस्लिम आक्रमण हुए थे। इस देश को हस्तगत करने के प्रयास में तथा अपना प्रभुत्व जमाने के बाद अपनी नैतिक और धार्मिक संस्थाओं के निर्माण में उनका तत्कालीन भारतीय संस्थाओं एवं संस्कृति से संघर्ष होना अनिवार्य था। मुस्लिम साम्राज्य एवं संस्कृति की भारतीय रूप-रेखा को समझने के लिये तत्कालीन भारतीय संस्कृति तथा राजनीतिक अवस्था का दिग्दर्शन परमावश्यक है।

मुसल्मानी आक्रमणों के समय सारा देश कई छोटी बड़ी राजपूत रियासतों में बँटा हुआ था। महाराज हर्षवर्धन के साम्राज्य के बाद जो राजवंश देश में प्रादुर्भूत हुए, वे राजपूत कहलाये। इसी से सन् ६४० से १२०० ई० तक के काल को राजपूत काल कहते हैं। यद्यपि हर्ष के बाद इस युग में कई राज्य उससे भी बड़े एवं प्रतापी हुए, तथापि उस समय कतिपय ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण हर्ष के समय का महत्त्व इतना अधिक हो गया कि यह मानना ही पड़ेगा कि उसके बाद से एक ऐसा नया युग प्रारम्भ हुआ जिसके विशेष चिह्न हम स्पष्ट देख सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में हर्ष के काल में हूणों तथा अन्य मध्य एशियाई जातियों के आक्रमण बन्द हो गये। जो हूण इत्यादि बाहर से आये थे, वे भारतीय संस्कृत के अनुयायी बन कर हिन्दू जाति में मिल जुल कर एक हो गये और अपने भेद-भाव भूल गये। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय तक आर्य जाति बड़ी उदारता के साथ अन्य बाहरी जातियों को ग्रहण करके पचा लेती थी; उसमें तब तक वह संकीर्णता उत्पन्न नहीं हुई थी जो राजपूत काल अथवा धार्मिक दृष्टि से पौराणिक काल में उत्पन्न हो गई। राजपूत वंशों का प्रादुर्भाव तथा उत्कर्ष यहीं से प्रारम्भ हुआ। बौद्ध मत की अन्तिम रश्मि हर्ष महाराज के संरक्षण में अपना चमत्कार दिखा कर विलुप्त हो गई। उधर मुसलमानी धर्म्म का प्रसार बहुत प्रबलता से होना शुरू हुआ। पश्चिमी एशिया में मुसलमान धर्म और साम्राज्य का तथा भारतवर्ष में राजपूतों का प्रादुर्भाव, दोनों घटनाएँ लगभग साथ ही साथ हुईं। उसी समय से दोनों का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अरबों का आक्रमण तो राजपूतों ने रोक दिया था। फिर कई शताब्दियों तक उनको मुसलमानों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से कुछ काम न पड़ा। बाहरी हमलों से छुट्टी मिली। प्राचीन आर्य सभ्यता एवं साम्राज्य पुनः स्थापित करने की उत्कण्ठा तथा आदर्श से इन राजपूतों के दिल भरे हुए थे। इन्होंने ब्राह्मण गुरुओं की नई बुद्धि के अनुसार धर्म और सभ्यता का खूब रक्षण-पोषण किया और राजनीतिक क्षेत्र में साम्राज्य स्थापित करने के लिये परस्पर संघर्ष प्रारम्भ किया। इस संघर्ष में एक बाहरी जाति भी अखाड़े में कूद पड़ी और राजपूतों को पीछे हटा कर उनसे बाज़ी ले गई—ये लोग मुसल्मान थे।

साम्राज्य स्थापना का प्रयास—साम्राज्य-स्थापना के इस प्रयास में कभी कभी किसी वंश का अत्यन्त उत्कर्ष हुआ। अन्य राजाओं ने उसका प्रभुत्व और नेतृत्व भी स्वीकार किया, परन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक न रही। शीघ्र ही उसका पतन हुआ और कुछ समय के लिये परस्पर के लड़ाई-झगड़ों की आग भड़की। ऐसे समय में देश की राजनीतिक परिस्थिति अत्यन्त निर्बल हो जाती थी। महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों के समय में ऐसी ही अवस्था थी जिसके कारण राजपूत उसकी लूट-मार से देश की तनिक भी रक्षा न कर सके।

सन् ६४७ से १००० ई० के मध्य में जितने राज्य भारतवर्ष में वर्त्तमान थे, उनको इन तीन समूहों में बाँटा जा सकता है—

(१) हिमालय प्रदेशस्थ राज्य।
(२) उत्तरी मैदान या आर्यावर्त्त के राज्य।
(३) दक्षिण भारत के राज्य।

(१) हिमालय प्रदेश के राज्य

चीन—प्राचीन काल से उत्तरी भारत के राज्यों से चीन का सम्बन्ध चला आता था। ८ वीं शताब्दी में ह्वेनत्सांग नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने अपना प्रभुत्व पश्चिम की तरफ काश्मीर तक स्थापित किया। परन्तु इसी समय अरबवालों ने दक्षिण-पश्चिम से उधर बढ़ना शुरू किया जिसके कारण चीनी राजा को पीछे हटना पड़ा।

तिब्बत—सातवीं और आठवीं शताब्दी में तिब्बत का राज्य बड़ा शक्तिशाली था और चीन तथा भारतवर्ष से उसका गहरा सम्बन्ध था। नैपाल और ल्हासा के मार्ग से भारत और तिब्बत के बीच आवागमन होता था। स्नोंगत्सन गम्पो यहाँ का बड़ा भारी राजा हुआ जिसने सम्भवतः सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राज्य किया। उसने नैपाल और तिहुत तक का देश जीत लिया था। उसकी एक स्त्री बौद्ध थी जिसके प्रभाव से उसने तिब्बत में बौद्ध धर्म्म की स्थापना की। फिर ११ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मगध के कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने तिब्बत में लामा मत की नींव डाली।

कामरूप (आसाम)—आसाम प्रदेश का प्राचीन नाम कामरूप था। यद्यपि आर्य सभ्यता और संस्कृति के नाते यह प्रदेश भी भारतवर्ष का ही भाग था, परन्तु उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों के बीच में घिरे रहने से बहुत समय तक उसका इस देश से कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक सम्बन्ध न रहा। प्राचीन काल से वहाँ आर्य धर्म प्रचलित था। पहले-पहल महाराज समुद्रगुप्त ने उसे जीता और वहाँ के राजा से कर वसूल किया। तब भी आन्तरिक स्वतन्त्रता क़ायम रही। छठी शताब्दी के अन्त में भास्कर वर्म्मा वहाँ राज्य करता था। बंगाल में शशांक और कन्नौज में महाराज हर्ष उसके समकालीन थे। शशांक के भय से उसने हर्ष से संधि कर ली। शशांक ने मालवे के राजा से मेल कर लिया। इस प्रकार बंगाल और मालवा एक तरफ़ और कन्नौज तथा कामरूप दूसरी तरफ़, दो प्रतिद्वन्द्वी संघ बन गये। शशांक की मृत्यु के उपरांत हर्ष ने भास्कर वर्मा के साथ एक अधीनस्थ राजा के समान व्यवहार किया। कुछ काल पीछे भास्कर वर्मा को हटा शालास्तम्भ नामक एक म्लेच्छ राजा बन बैठा। उसके वंश ने लगभग ३०० वर्ष राज्य किया। १३ वीं शताब्दी के आरम्भ से सन् १८१६ तक वहाँ आहोम वंश का राज्य रहा (जिससे 'आसाम' नाम प्रचलित हुआ)। यह लोग उत्तरी ब्रह्मा से आये थे और शान फ़िरक़े के थे। आसाम आने पर उन्होंने अपना मत त्याग कर हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। आहोम लोगों का शासन बहुत दृढ़ तथा उत्तम था। मुसलमानों से आसाम का विशेष सम्पर्क १३ वीं शती के प्रारम्भ में हुआ। १२०५ ई० (सं० १२६२) में इख्तियार उद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खल्जी ने आसाम और तिब्बत पर हमला किया। परन्तु वहाँ के पहाड़ी प्रदेश में उसकी सेना ऐसी फँसी कि १० हजार सेना में से १०० से अधिक आदमी बचकर न आये। फिर सं० १२५८ में बंगाल के एक शासक ने आसाम पर चढ़ाई की। उसका भी वैसा ही परिणाम हुआ। फिर १७ वीं शती में औरङ्गज़ेब के मन्त्री एवं सेनापति मीरजुमला ने भी आसाम पर हमला किया और उसकी भी वही गति हुई जो उससे पहले मुसलमान आक्रान्ताओं की हुई थी। आसाम तो इन आक्रान्ताओं के लिये एक प्रकार से 'यम की घाटी' साबित हुआ। जब मीर जुमला की सेना वहाँ नष्ट हो गई और वह बड़ी कठिनाई से जान बचा कर वापस आया तो उसने कहा कि आसाम तो एक बड़ा ही भयानक, बीहड़ और जंगली देश है। जिस किसी सेना ने इस देश में प्रवेश किया उसी को जीवन से हाथ धोना पड़ा। १८१६ ई० में आसाम को बर्मावालों ने जीत लिया और १८२५ ई० में अंग्रेज़ों ने उस पर अधिकार कर लिया। अब आसामी लोग हिन्दू जनता में मिलकर एक हो गये हैं। उनकी भाषा भी संस्कृत की ही पुत्रियों में से एक है। आसाम में प्रायः तान्त्रिक मत प्रचलित है जो बौद्ध और शैव मतों के सम्मिश्रण से विकसित हुआ है।

काश्मीर—काश्मीर का प्राचीन इतिहास अज्ञात है। ७ वीं शताब्दी में चीनी यात्री युवानच्वांग के पर्यटन के समय कर्कोट वंशीय दुर्लभवर्धन वहाँ राज्य करता था। उसका बेटा प्रतापवर्धन और पोता चन्द्रापीड़ दोनों बड़े प्रतापी और प्रजापालक हुए। चन्द्रापीड़ के भाई तारापीड़ ने उसे मरवा डाला और ४ वर्ष तक बहुत अन्यायपूर्ण शासन किया। उसके बाद उसका छोटा भाई ललितादित्य मुक्तापीड़ राजा हुआ, जो काश्मीर का सबसे महान् और शक्तिशाली राजा हो गया है। उसने लगभग सन्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

७२४ से ७५२ ई० तक राज्य किया। उसने समस्त उत्तरी भारत पर आसाम तक चढ़ाई की और दक्षिण में चालुक्य वंश पर भी आक्रमण किया। शायद उसने गुजरात और मालवा भी जीत लिया था और सिंध में अरब लोगों को भी पराजित किया था।

ललितादित्य ने अनेक मन्दिर, धर्म्मशालाएँ और विहार इत्यादि बनवाये थे। काश्मीर का नामी मार्तण्ड मन्दिर उसी ने बनवाया था। उसके बाद कई पीढ़ियों तक कोई राजा इतना योग्य न हुआ जो उसका महत्व बनाये रख सकता। ८ वीं शताब्दी के अन्त में ललितापीड़ बड़ा दुष्ट और निर्दयी राजा हुआ। उस समय राज्य में कई दल हो गये थे। अन्त में एक दल के नेता उत्पल का पोता अवन्ति वर्म्मन् सिंहासनारूढ़ हुआ।

उत्पल वंश के अवन्ति वर्म्मा ने सन् ८५५ से ८८३ ई० तक राज्य किया। उसने अपने चतुर मन्त्री सुरा की सहायता से राज्य में विद्या और धन-धान्य तथा कलाओं की बड़ी उन्नति की। सुरा शैव मतानुयायी था और राजा वैष्णव था, तो भी दोनों बड़े प्रेम से रहते थे। अवन्ति वर्म्मा ने अवन्तिपुर नामक नगर बसाया और अनेक मन्दिर बनवाये जिनके भग्नावशेष आज तक उसके उत्तम कामों की याद दिलाते हैं। अपने वस्तु विभाग के मन्त्री की सहायता से उसने काश्मीर घाटी में जल-सिंचन की एक बड़ी भारी योजना की जिससे देश बाढ़ों के भय से मुक्त हो गया और अन्य प्रकार से उसे बड़ा लाभ हुआ।

अवन्ति वर्म्मा के बाद उसका बेटा शंकर वर्म्मा राजा हुआ जिसने राज्य की सीमा को विस्तृत किया और झेलम तथा चुनाब नदियों के दोआब के गुर्जर राजा तथा उसके सहायक लल्लीय शाह को पराजित किया। परन्तु वह लल्लीय शाह को न जीत सका और न प्रतिहार (पड़िहार) राजा भोज को ही। उसने प्रजा से बहुत अधिक कर लेना शुरू किया जिसके कारण वह मारा गया। उसके बाद उसका पोता गोपाल वर्म्मा राजा हुआ। उसकी माता सुगन्धा दुराचारिणी थी। गोपाल वर्म्मा ने उसे दुराचरण से रोकना चाहा, पर उसने अपने मित्र प्रभाकर देव से मिल कर अपने पुत्र को मरवा डाला। इसके बाद काश्मीर में कोई सुयोग्य या शक्तिशाली राजा न हुआ। सन् १३३९ में एक मुस्लिम वंश ने काश्मीर पर अधिकार जमा लिया।

नैपाल—नैपाल का प्राचीन इतिहास भी परम्पराबद्ध ही है। दूसरी शताब्दी के आरम्भ में नैपाल को लिच्छवी वंश के राजा ने जीत लिया। इस वंश के लगभग २८ राजाओं ने कोई ४ या ५ सौ वर्ष तक नैपाल पर राज्य किया। गुप्त काल में नैपाल के राजा को समुद्रगुप्त का प्रभुत्व मानना पड़ा था और लिच्छवी वंश की एक स्त्री भी गुप्त सम्राट् को ब्याही थी।

७ वीं शताब्दी में अन्तिम लिच्छवी राजा के मन्त्री अंशु वर्म्मा ने, राजवंश के पारस्परिक झगड़ों के कारण, उसे हटा कर स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार एक नये वंश की स्थापना हुई। इसके वंशजों ने ७ वीं शताब्दी तक राज्य किया और फिर नैपाल सन् ८७९ तक तिब्बत के अधीन रहा। जब तिब्बत साम्राज्य की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति नष्ट हुई, तब नैपाल भी स्वतन्त्र हो गया। इस समय से नैपाल में एक नया युग आरम्भ हुआ। धन-धान्य की उन्नति हुई और नये नये नगर इत्यादि बनने लगे। ११ वीं शताब्दी में नैपाल तीन छोटे छोटे राज्यों में बँट गया। सन् १०९८ में तिरहुत के राजा नयनदेव ने नैपाल को जीत लिया, और नैपाल के राजा तिरहुत का प्रभुत्व मानते रहे। इसके थोड़े ही दिन बाद मल्ल वंशीय राजाओं ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उधर तिरहुत में नयनदेव के वंशज राज्य कर रहे थे। जब सन् १३२४-२५ में ग़यासउद्दीन तुग़लक ने बंगाल से वापस आते समय तिरहुत पर हमला किया तो वहाँ का राजा हरिसिंह भाग कर नैपाल चला आया और वहाँ उसने अपना राज्य स्थापित किया। कोई सौ वर्ष बाद मल्लवंशीय यक्ष ने फिर उसे जीत लिया। परन्तु उसके वंशजों के पारस्परिक कलह के कारण सन् १७६८ में राजपूत राजा पृथ्वीनारायण गुर्खा ने वहाँ एक छोटा सा राज्य स्थापित किया और उसका विस्तार किया। इसी के वंशज आज तक नैपाल पर राज्य कर रहे हैं।

(२) उत्तरी समतल देश या आर्यावर्त्त के राज्य

कन्नौज—कन्नौज भारत के अत्यन्त प्राचीन नगरों में से है। महाभारत तक में इसका ज़िक्र आया है। चीनी यात्री फ़ाह्यान अपनी भारत-यात्रा के समय कन्नौज भी गया था, पर उस समय वह नगर अवनति पर था। परन्तु थोड़े ही समय पीछे मौखरी राजाओं ने और फिर हर्ष ने उसे अपनी राजधानी बना कर बहुत विशाल एवं समुन्नत नगर बना दिया। उस समय वहाँ सैकड़ों मन्दिर और बौद्ध मठ इत्यादि बनाये गये। विद्या, धन-धान्य, कला-कौशल इत्यादि समस्त बातों में वह उत्तरी भारत का सर्वोपरि नगर हो गया।

हर्ष के बाद ८ वीं शताब्दी के शुरू में राजा यशोवर्मन् ने कन्नौज पर राज्य स्थापित किया। यह बड़ा शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी था। इसने एक बार फिर सारे देश को एक शासन में लाने का प्रयत्न किया। सबसे पहले इसने पूर्वीय भारत के राजा जीवितगुप्त द्वितीय को हरा कर बंगाल की खाड़ी तक समस्त देश जीता। फिर वह मरुदेश (राजपूताना), थानेश्वर इत्यादि प्रदेशों को अधिकृत करके हिमालय तक पहुँचा। सन् ७३१ ई० में उसने अपना एक दूतमण्डल चीन के सम्राट् के पास पास भेजा। हिमालय को पार कर के उसने तिब्बत पर भी हमला किया था। परन्तु उसका समकालीन काश्मीर का राजा ललितादित्य उससे भी शक्तिशाली था। उसने सन् ७४० में यशोवर्मन् पर आक्रमण करके उसे परास्त किया। तथापि यशोवर्म्मन् की कीर्त्ति बहुत अधिक थी, क्योंकि वह केवल विजयी ही नहीं था, बल्कि बड़ा विद्या-प्रेमी, साहित्यसेवी और विद्वानों का आश्रयदाता भी था। संस्कृत का प्रसिद्ध कवि भवभूति उसी के दरबार में रहता था। भवभूति का मध्यकालीन कवियों में बहुत ऊँचा स्थान है। कुछ लोग तो उसकी कविता को कालिदास की कविता से भी उत्कृष्ट मानते हैं। भवभूति का 'उत्तरराम चरित' नाटक संसार के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से है।

उसके दरबार में दूसरा प्रसिद्ध कवि वाक्पतिराज था। वह प्राकृत भाषा का बड़ा विद्वान था और उसी भाषा में उसने अत्यन्त उत्कृष्ट कविता की है। उसने अपने 'गौड़वहो' नामक काव्य में यशोवर्म्मन् की वङ्गाल-विजय का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक विद्वान भी यशोवर्म्मन् के दरबार में आश्रय पाते थे। यशोवर्मन् के उत्तराधिकारी वैसे योद्धा न हुए और काश्मीर तथा वङ्गाल के पाल राजाओं ने उनको कई बार परास्त किया।

गुर्जरों का उत्कर्ष—काश्मीर के प्रतापी सम्राट् ललितादित्य के बाद मारवाड़ (गुर्जरात्र) में गुर्जर प्रतिहार वंश ने बड़ी उन्नति की। इन्होंने ७४० ई० के लगभग अपना स्वतन्त्र राज्य क़ायम किया। कुछ विद्वानों का मत है कि गुर्जर लोग बाहर से आनेवाले हूणों की सन्तान हैं। इस मत में जो कुछ सचाई हो, परन्तु ८ वीं शताब्दी में ये लोग भारतीय सभ्यता के रंग में इतने रंग गये थे कि इन्हें विदेशी समझना सुगम नहीं है। पहला गुर्जर राजा नागभट्ट था। इसकी राजधानी भीनमाल अथवा उसके पास माण्डोर में थी। नागभट के वंशज वत्सराज ने (प्रायः ७७०-८०० ई०) क़न्नौज के अन्तिम राजा को ७८३ ई० में हरा कर अपना राज्य वहाँ स्थापित किया और अपनी शक्ति बढ़ाई। उसका पोता, रामभद्र का बेटा मिहिरभोज इस वंश का सबसे प्रतापी राजा हुआ। इसने सन् ८४३ से ८९० तक राज्य किया। उस समय गौड़ (बंगाल) के पाल राजाओं की शक्ति कम हो रही थी। भोज ने अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिये इस परिस्थिति से लाभ उठाया और धीरे-धीरे पंजाब से लेकर मगध तक सारा प्रदेश अधिकृत कर लिया। राजपूताना, ग्वालियर और सम्भवतः मालवा (अवन्ति) और सौराष्ट्र भी उसके राज्य में शामिल थे। भोज के उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य को और भी विस्तृत किया। साम्राज्य-स्थापना के इस संघर्ष में अपने प्रतिद्वन्द्वी पालों और राष्ट्रकूटों को हराकर उस समय गुर्जर प्रतिहार ही सफल हुए। इनका साम्राज्य हिमालय से नर्बदा तक और सिंध प्रान्त तथा सतलज नदी से यमुना के उत्तर-पूर्वी तट तक और उधर मगध तक फैला हुआ था। लगभग सौ वर्ष क़ायम रहने के बाद १०वीं सदी के आरम्भ में इसका पतन शुरू हुआ।

सन् ९१६ ई० के लगभग राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय ने प्रतिहार सम्राट् महिपाल को परास्त किया, परन्तु अपना राज्य उत्तर में स्थापित न किया। परिणाम यह हुआ कि प्रतिहारों की शक्ति तो नष्ट हो गई और उनके स्थान पर कोई शक्तिशाली राज्य क़ायम न हुआ। इसके बाद जैजक भुक्ति के राजा यशोवर्म्मन् चन्देल ने भी कन्नौज पर हमला किया और उसकी शक्ति नष्ट की। फिर तो गुजरात में सोलंकी, अजमेर में चौहान और मालवे में परमार वंशों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये और ग्वालियर चन्देलों की अधीनता में चला गया।

सन् १०१९ में जब कि उत्तरी भारत में कोई शक्तिशाली साम्राज्य नहीं रह गया था और प्रतिहार साम्राज्य कई टुकड़ों में बँट चुका था, महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर हमला किया। प्रतिहार राजा राज्यपाल ने बड़ी दीनता एवं तिरस्करणीय भीरुता से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी रक्षा की और महमूद से संधि कर ली। जिस पर क्रुद्ध हो कर चन्देल तथा गवालियर के राजाओं ने उस पर चढ़ाई करके उसे मार डाला।

राज्यपाल के बेटे त्रिलोचनपाल के बाद प्रतिहारों की शक्ति घटती ही गई। अन्त में सन् १०७२ और १०९० ई० के बीच में गहड़वाल राजा चन्द्रदेव ने अन्तिम प्रतिहार को हटा कर गहड़वाल साम्राज्य की स्थापना की और बनारस तक का प्रदेश अधिकृत किया*।

मगध—गुप्त सम्राटों के पतन के उपरान्त मगध में एक वंश की स्थापना हुई थी जिसके प्रायः समस्त राजाओं के नाम भी गुप्तान्त थे; परन्तु यह कहना कठिन है है कि ये गुप्त सम्राटों के ही वंशज थे। इस वंश का राज्य लगभग सन् ५००–७०० ई० तक रहा होगा। इन्होंने आसाम के राजाओं आदि को परास्त भी किया, परन्तु ये साधारण शक्तिशाली ही रहे। ई० ८वीं शताब्दी के मध्य में कन्नौज के सम्राट् यशोवर्मन् ने इस वंश के अन्तिम राजा जीवितगुप्त को हरा कर इस वंश का अन्त कर दिया।

बंगाल और पाल वंश—हर्ष के बाद ९वीं सदी के आरम्भ तक बंगाल और उड़ीसा (कलिंग) की स्थिति बहुत अस्त-व्यस्त रही। उस पर कन्नौज तथा मगध के राजाओं का अधिकार चला आता था। परन्तु ८वीं शताब्दी के अन्त में, जब कि गुर्जर प्रतिहार उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य जमा रहे थे, पूर्वी भारत में पाल वंश का प्रादुर्भाव हुआ। देश की अव्यवस्था तथा अराजकता से तंग आकर बंगाल के सरदारों तथा जनता ने सन् ७६५ ई० के लगभग एक योग्य पुरुष को अपना राजा चुना जिसका नाम गोपाल था। यह बौद्ध था। इसने बड़ी योग्यता के साथ बंगाल में सुशासन तथा सुव्यवस्था स्थापित की†।

गोपाल के उत्तराधिकारी धर्म्मपाल ने अपने पराक्रम तथा विस्तृत विजयों से साम्राज्य को इतना समुन्नत किया कि उत्तर भारत के साम्राज्य (—) संघर्ष में सम्मिलित होनेवाले बड़े राज्यों में उसे स्थान प्राप्त हुआ। कुछ लेखकों का मत है कि उसने लगभग समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया। उसका राज्य सतलज से बंगाल की खाड़ी तक और हिमालय से विन्ध्याचल तक फैला हुआ था। भागलपुर के पास गंगा के किनारे विक्रम-शिला में उसने एक विहार तथा १०७ मन्दिर और बौद्ध धर्म की शिक्षा के लिए ६ विद्यालय बनवाये। उसने कन्नौज को जीत कर वहाँ एक महासभा की जिसमें अवन्ति और गान्धार आदि दूरस्थ प्रदेशों तक के अनेक अधीनस्थ राजा उपहार लेकर आये थे। पाल

---

* प्रारम्भ में गहड़वालों की राजधानी कन्नौज थी अथवा वाराणसी, इस विषय पर देखो एच० सी० राय रचित 'डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ़ नॉर्दर्न इण्डिया', भाग १, पृ० ५०६–७.

† इसने कितने दिन राज्य किया तथा इसके वंशजों ने कितने समय तक राज्य किया, इस विषय में अभी कोई मत स्थिर नहीं हो सकता। देखो डा० हि० पृ० २७१.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राजाओं ने बौद्ध धर्म को पुनः स्थापित करने की बड़ी कोशिश की। भारत में ये बौद्ध-धर्म के अन्तिम पोषक थे।

इसी समय दक्षिण में राष्ट्रकूट वंशी सम्राट एक बड़ा साम्राज्य क़ायम कर रहे थे। इधर प्रतिहार नागभट द्वितीय ने धर्मपाल द्वारा स्थापित चक्रयुद्ध को हरा कर प्रतिहार वंश को फिर उठाया। उधर धर्मपाल और चक्रयुद्ध ने राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय को साथ मिला कर कन्नौज पर चढ़ाई की। गोविन्द ने समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया। परन्तु शीघ्र ही अपने निजी राज्य में झगड़े शुरू हो जाने के कारण वह वापस लौट गया और पालों तथा प्रतिहारों में फिर से संघर्ष शुरू हो गया। धर्मपाल का लड़का देवपाल इस वंश का सबसे बड़ा प्रतापी और बलवान् राजा हुआ। इसने बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक और हिमालय से विंध्याचल तक समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया और प्रतिहारों को एक बार फिर कन्नौज से मार भगाया।

ई० ११ वीं सदी के प्रारम्भ में पाल वंश की शक्ति का ह्रास शुरू हुआ। वे तुर्क आक्रमणकारियों से देश को न बचा सके। महिपाल प्रथम ने पाल राज्य की शक्ति फिर से बढ़ाई, परन्तु उसके बाद वे साम्राज्य-स्थापना के संग्राम में सफल न हो सके।

सेन वंश—११वीं सदी के मध्य में पालों की शक्ति बहुत घट चुकी थी। लगभग १०५० ई० में बंगाल का अधिक भाग, जो पाल राजाओं के अधीन था, सेन वंश के संस्थापक सामन्तसेन ने जीत लिया था। जान पड़ता है कि यह सामन्तसेन ब्राह्मण था, और दक्षिण से चालुक्य राजकुमार विक्रमादित्य की सेना के साथ बंगाल पर हमला करने आया था और अपने राजा की ओर से गंगा नदी के निकटवर्त्ती प्रदेश में नियत हुआ था। सेनवंशी पहले ब्रह्म-क्षत्रिय कहलाते थे। फिर धीरे धीरे ब्रह्म शब्द लुप्त हो गया। वे अपना वंश महाभारत के कौरव योद्धा कर्ण से चला हुआ बतलाते हैं।

सेन वंश के तीसरे राजा विजयसेन ने पाल राजा को पीछे हटा कर बंगाल पर स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसका बेटा बल्लालसेन इस वंश का सब से प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुआ। इसने प्रायः ११५६-११८५ ई० तक राज्य किया। इसने मिथिला को जीता और बंगाल के पाल राजा को पीछे हटाया। यह स्वयं बड़ा विद्वान् एवं विद्वानों का पोषक था। इसने एक ग्रन्थ 'दान सागर' लिखा, और दूसरा समाप्त न कर पाया, जिसे उसके पुत्र लक्ष्मणसेन ने पूरा किया। यह वैष्णव धर्म का अनुयायी था। धर्म-प्रचार के लिए इसने दूर दूर तक प्रचारक भेजे। इसने बंगाल में कुलीन प्रथा जारी की जिसके कारण जातीय बन्धन और भी कड़े हो गये।

इसका पुत्र लक्ष्मणसेन भी अपने पिता के समान ही योग्य और प्रतापी था। उसने अपने पुराने राजनगर गौड़ के पास ही अपने नाम पर एक नया नगर लक्ष्मणावती बनवाया। लक्ष्मणसेन भी अपने पिता के समान बड़ा विद्वान् तथा विद्वानों का पोषक और आश्रयदाता था। उसके दरबार में अनेक विद्वान् तथा कवि रहते थे जिनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीतगोविन्द का प्रसिद्ध रचयिता जयदेव भी था। लक्ष्मणसेन बड़ा योग्य, न्यायकर्त्ता तथा प्रजापालक था। इस राज्य के विनाश के विषय में जो कथा मुस्लिम लेखकों ने दी है, वह संशयात्मक है। इस विषय की विवेचना पाँचवें अध्याय में की जायगी। लक्ष्मणसेन के उत्तराधिकारी १३ वीं सदी के अन्त तक पूर्वी बंगाल में राज्य करते रहे।

पश्चिमोत्तर हिन्दुस्तान—कुशन वंश के ह्रास के बाद का इतिहास अभी अँधेरे में है। उस समय काबुल, ग़ज़नी इत्यादि प्रदेश भी हिन्दुस्तान में शामिल थे। दसवीं सदी के पिछले भाग में काबुल में हिन्दू शाही वंशीय राजा जयपाल राज्य करता था। उसकी पूर्वी राजधानी वमन्द या वैहिन्द (प्राचीन उद्भाण्डपुर, आधुनिक उन्द जो सिन्धु नदी के किनारे अटक के पास है) भी थी। ग़ज़नी में तुर्कों का राज्य क़ायम हो जाने के कारण हिन्दूशाहियों को पंजाब की तरफ हटना पड़ा। यहाँ पर उन्होंने लाहौर और फिर शायद भटिण्डा को अपना केन्द्र बनाया। परन्तु इस समय भी उनका राज्य सतलज से लमग़ान और काबुल तक फैला हुआ था और वे हिन्दुस्तान के सबसे बड़े राय (राजा) समझे जाते थे। कन्नौज के पड़िहारों के ह्रास के कारण उनको अपना वैभव तथा राज्य बढ़ाने का अवसर मिल गया था। इस समय ग़ज़नवी वंश से इनको लड़ना पड़ा जिसके कारण अन्त को उनका नाश हुआ।

बुन्देलखण्ड का चन्देल वंश—इस युग में उत्तरी मैदान के अन्य भागों में भी छोटे बड़े कई राजपूत राज्य स्थापित हुए। लगभग ९ वीं शताब्दी के शुरू में प्रयाग के दक्षिण-पश्चिम में चन्देल राज्य की स्थापना हुई जिसकी राजधानी खजुराहो नगर में थी जो अब छतरपुर रियासत में है। चन्देलों का उद्गम अभी अँधेरे में है। इस वंश के सबसे प्रसिद्ध राजा धंग के बनारस से प्राप्त लेख में दी हुई वंशावली के अनुसार चन्देलों का प्रारम्भ ९ वीं सदी के आरम्भ तक जाता है *। जान पड़ता है कि उस समय कन्नौज के वर्मा वंश के पतन के कारण उस प्रान्त का प्रान्ताधीश स्वतन्त्र हो बैठा था, क्योंकि इससे पहले वह सारा प्रदेश कन्नौज के अधीन था। इस राज्य का नाम जैजक भुक्ति या जिझोती था जिससे पता चलता है कि पूर्व काल में यह एक भुक्ति अथवा प्रान्त रहा होगा।

इस वंश का पहला प्रतापी राजा हर्ष का पुत्र यशोवर्मा था जिसने कालिंजर के प्रसिद्ध किले† को कलचुरि राजा से छीन लिया और उत्तर में यमुना नदी तक अपना अधिकार बढ़ाया। हर्ष के पिता राहिल्य ने महोबा को अपनी राजधानी बनाया था। यहाँ उसका बनाया हुआ तालाब राहिल्यसागर और मन्दिर अब तक मौजूद हैं। यशोवर्म्मन् के राज्य का समय अनुमानतः सन् ९३० से ९५० तक था।

---

* ए० इ० खं० १, पृ० १२३–५ † यह किला बाँदा जिले में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यशोवर्मा के बेटे राजा धंग ने शायद सन् ९५०–१००० तक राज्य किया। यह इस वंश का सबसे बड़ा राजा था। इसने अपना राज्य कालिञ्जर से भिलसा (विदिशा) तक और जमना के किनारे से दक्षिण में चेदी तक फैलाया। इसने पंजाब के राजा जयपाल को सुबुक्तगीन के विरुद्ध सहायता दी थी।

धंग के बेटे राजा गंड ने अनंगपाल को अमीर महमूद गजनवी के विरुद्ध १००८ ई० में सहायता दी थी। फिर जब सन् १०१९ में कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल ने महमूद के आक्रमण के समय बड़ी भीरुता दिखाई और उससे संधि कर ली, तब गंड ने राजपूतों का एक संघ बना कर राज्यपाल को दण्ड देने के लिये अपने पुत्र विद्याधर को भेजा। महमूद अपने मित्र को बचाने के लिये आया, पर परास्त होकर लौट गया। परन्तु फिर १०२३ ई० में उसने गंड राजा को हराकर उससे कालिंजर छीन लिया।

चन्देल वास्तु-कला—चन्देल वंश का शेष इतिहास छठे अध्याय में दिया जायगा। परन्तु उनकी कला के बारे में दो शब्द यहीं पर कह देना उचित है। मध्यकालीन भारतीय हिन्दू कला में, विशेषकर वास्तु कला में, चन्देलों का स्थान बहुत ऊँचा है। अन्य राजपूतों की भाँति उन्होंने अनेक तालाब, झीलें और मन्दिर बनवाये थे। इनमें उनकी अनेक झीलें, जिन्हें पहाड़ियों के बीच में बड़े बड़े बाँध बनाकर और पानी को रोक कर तैयार किया गया है, विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु सबसे अधिक विशाल एवं सुन्दर इनके मन्दिर है जो प्रायः इन झीलों के किनारे बने हैं। इन सब में सर्वांगसुन्दर, सुदृढ़ तथा भव्य खजुराहो के मन्दिर हैं जिनकी बराबरी के मन्दिर मिलना कठिन है। इन मन्दिरों को नृपति धंग ने बनवाया था।

चेदी का कलचुरी वंश—९वीं शताब्दी के मध्य में एक और वंश का प्राबल्य हुआ जिसको कलचुरी या हैहय वंश कहा जाता है। पुराणों से ज्ञात होता है कि इस वंश का इतिहास भी बहुत प्राचीन रहा होगा। परन्तु इतना निश्चय है कि ८५० ई० के लगभग इस वंश का राजा कुक्कलदेव नागपुर के पास चेदी में राज्य करता था। कुक्कल ने अपने वंश का वैभव तथा शक्ति बहुत बढ़ाई और राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजा, चन्देलवंशीय हर्ष तथा कन्नौज के मिहिर भोज से, जो उसके समकालीन थे, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। कलचुरी राजाओं ने अपना राज्य यमुना नदी तक फैलाया। इस वंश का सबसे प्रतापशाली राजा अमर गांगेयदेव हुआ। उसने और उसके पुत्र कर्ण ने अपने वंश का गौरव और अधिकार बहुत विस्तृत किया। इस वंश का विशेष वर्णन छठे अध्याय में होगा।

मालवे का परमार वंश—इस वंश का पहला राजा कृष्णराजा था, जिसने शायद ९वीं सदी के अन्त में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और अपने पराक्रम से अपने वंश का वैभव बहुत बढ़ाया। इसकी राजधानी धारा नगरी थी।

इस वंश के तीसरे राजा श्रीहर्ष ने हूण लोगों को हराया। (हूण शब्द यहाँ पर किसी बाहरी जाति के लिये प्रयुक्त हुआ है।) दूसरे उसने मालखेड़ (निजाम राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में) के राष्ट्रकूटों की राजधानी को लूटा। श्रीहर्ष का पुत्र सुप्रसिद्ध राजा वाक्पतिराज अथवा मुंज हुआ। यह बड़ा योद्धा और यशस्वी था और साथ ही बड़ा विद्वान और कवि भी था। इसके राज्य में बहुत से विद्वान, कवि इत्यादि आश्रय पाते थे, जिन्होंने संस्कृत में बहुत उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। धनञ्जय ने दशरूपक, हलायुध ने पिङ्गल-सूत्रों की टीका, अमितगति ने सुभाषितरत्नसन्दोह तथा पद्मगुप्त ने 'नवसाहसाङ्कचरित' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ उसी के समय में रचे थे। इसने राष्ट्रकूट, चोल, केरल इत्यादि समस्त राजाओं को और चेदी के हैहय राजा युवराजदेव को भी परास्त किया। कहा जाता है कि अन्त में उसने चालुक्य राजा तैलप पर चढ़ाई की और उस युद्ध में वह पकड़ा गया और मारा गया। मुंज ने मुंज सागर आदि अनेक झीलें और घाट इत्यादि बनवाये थे।

राजा भोज—सुप्रसिद्ध राजा भोज मुंज के भाई सिन्धुराज का पुत्र था। वह इतना ज्ञानी, विद्याप्रेमी एवं यशस्वी हुआ कि उसकी कीर्ति सारे देश में फैल गई और उसका नाम भारतवर्ष के घर घर में आज तक याद किया जाता है। यों तो इस वंश के सभी राजा विद्वान और विद्वानों का आदर करनेवाले थे, परन्तु भोज का स्थान उनमें सर्वोपरि है। वस्तुतः भोज संसार के सर्वोच्च महान् व्यक्तियों और सम्राटों में से था।

उसके समय में परमार वंश की कीर्ति, यश और प्रभुत्व दिग्दिगन्तर में फैल गये। उसने शायद १०१० से १०५५ ई० तक राज्य किया। उसको चेदी, गुजरात इत्यादि के सीमास्थ राजाओं से युद्ध करने पड़े तथा उसने शायद तुरुष्कों (तुर्कों) को हराया। उस समय महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण हो रहे थे और सोमनाथ को लूटने के बाद सम्राट् परमारदेव के भय से महमूद पश्चिम भारत में न गया। भोज का यश इतना विस्तृत था कि अपने समय में वह समस्त भारतवर्ष का सम्राट् माना जाता था। उसका इतना मान केवल उसके प्राबल्य के कारण ही नहीं था, प्रत्युत उसके अनेक गुणों के कारण था।

भोज का इतना यश वस्तुतः उसकी साहित्य-सेवा, विद्यानुराग एवं अत्यन्त सुन्दर तथा उदार शासन के कारण हुआ। उसके पूर्वज मुंज की मृत्यु पर विद्वानों को अत्यन्त दुःख और निराशा हुई थी, क्योंकि वे यह समझते थे कि अब कोई ऐसा विद्यानुरागी न होगा। वे 'गते मुंजे यशःपुंजे निरालम्बा सरस्वती' कहकर विलाप करते थे। परन्तु भोज ने उनकी निराशा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। विद्वान लेखक श्री चिन्तामणि वैद्य के शब्दों में भोज का चरित्र एक वास्तविक प्राचीन क्षत्रिय राजा का उदाहरण था। उसने राम और युधिष्ठिर की भाँति शास्त्र और शस्त्र दोनों का ही सुचारु रूप से परिशीलन किया। वह केवल विद्वानों का आश्रयदाता और आदरकर्ता ही नहीं किन्तु स्वयं भी अद्वितीय विद्वान था। उसने ज्योतिष, अलंकार, वास्तु शास्त्र, योग तथा व्याकरण का विशेष अध्ययन किया था और इन सब विषयों पर बहुत उच्च कोटि के ग्रन्थ रचे थे जो आज तक प्रामाणिक माने जाते हैं। वास्तु शास्त्र पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'समराङ्गणसूत्रधार' अलंकार शास्त्र पर 'सरस्वती कण्ठाभरण', योग पर 'राजमार्तण्ड', ज्योतिष पर 'राजमृगाङ्ककरण' इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थ उसने लिखे। मिताक्षरा और प्रायश्चित्त-विवेक आदि के लेखक भोज को हिन्दू लोग दंड-विधान का भी बड़ा विद्वान मानते हैं। इससे मालूम होता है कि शासन-विधान इत्यादि में भी भोज कितनी योग्यता रखता होगा।

संस्कृत साहित्य की वृद्धि एवं शिक्षा के प्रसार के लिये भोज ने जो प्रयत्न किया और जैसी सफलता उसे प्राप्त हुई, उसकी उपमा मध्यकालीन इतिहास में उपलब्ध नहीं है। उसकी अपनी बहुमुखी विद्वत्ता तथा विद्या-प्रचार के कार्यों से उसका नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

भोज को यह गौरव प्राप्त था कि उसके राज्य में कोई व्यक्ति अशिक्षित नहीं था। उसने संस्कृत शिक्षा के लिये धारा नगरी में सरस्वती-सदन अथवा भारती-भवन नामक एक महाविद्यालय बनवाया था जिसको तोड़ फोड़ कर मुसलमानों ने 'कमाल मौला' नामक मस्जिद बना डाली। इस महाविद्यालय में भिन्न भिन्न विषयों के सूत्र शिलाओं पर खुदे हुए थे। वे शिलाएँ मस्जिद के फर्श में लगा दी गई। अब उनके लेख इतने घिस गये हैं कि उनका पढ़ा जाना असम्भव है।

अपने समकालीन महमूद ग़ज़नवी के विपरीत भोज का विद्वानों के प्रति व्यवहार अत्यन्त उदारता का होता था। वह उनको बड़े बड़े पुरस्कार देता तथा अन्य प्रकार से उनको प्रोत्साहन देता था। प्रसिद्ध विद्वान् उव्वट ने वाजसनेय संहिता की टीका उज्जैन में उसी के समय में लिखी थी।

भोज बड़ा कलानुरागी भी था। उसने भोपाल के निकट पहाड़ियों के बीच में बाँध बनवा कर खेतों की सिंचाई करने के उद्देश्य से एक बड़ी भारी झील बनवाई थी। इस झील का क्षेत्रफल २५० वर्ग मील था और इसका नाम भोजपल या भोजसर था। चित्तौड़ में उसने त्रिभुवननारायण का विशाल शिव-मन्दिर बनवाया और सम्भवतः सोमनाथ का मन्दिर भी उसी का बनवाया हुआ था।

भोज का शासन इतना उत्तम, सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित था कि उसके राज्य में कोई भूखा नहीं रह सकता था। उसके समकालीन लेखकों ने उसको उचित ही 'मालव चक्रवर्त्ती' और 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया है। उसके समस्त गुणों और कार्यों को देखते हुए उसका युग स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने के योग्य है।

परमारवंशी अन्य राजाओं का वर्णन आगे किया जायगा।

चावड़ा वंश—सारस्वत मंडल (उत्तरी गुजरात) में इसी समय चावड़ा वंश का राज्य था। इसके इतिहास की सामग्री अत्यन्त न्यून है। श्री चिन्तामणि वैद्य का अनुमान है कि ये भीनमाल के चाप (चापोत्कट) वंश की एक शाखा थी और इसका राज्य कन्नौज के साम्राज्य के अधीन था। इस वंश के संस्थापक बनराज ने ८वीं शताब्दी के मध्य में उत्तर गुजरात में अन्हिलपुर (अन्हिलवाड़ा) पाटन नगर बसाया। इसी समय बापा ने चित्तौड़ की, सामन्तदेव ने साँभर की और नागभट्ट ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मांडोर राज्य की नींव डाली थी। इस वंश में ६ राजा हुए जिन्होंने कोई २०० वर्ष के लगभग राज्य किया। अन्तिम राजा के भांजे मूलराज सोलंकी ने सन् ९६१ ई० में उससे राज्य छीन लिया और अपना राज्य स्थापित किया। इनके विषय में कोई विशेष बात मालूम नहीं है।

साँभर का चौहान वंश—८वीं शताब्दी के मध्य में लगभग उसी समय जब कि मेवाड़ का गुहिलोत वंश तथा चावड़ा वंश इत्यादि स्थापित हुए, साँभर (सायम्भर अथवा शाकम्भरी) प्रदेश में चाहमान या चौहान वंशीय राज्य की स्थापना हुई। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि इस वंश का संस्थापक अहिच्छत्र * का सामन्तदेव नामक एक सरदार था। सामन्तदेव का समय सम्भवतः लगभग सन् ७५० से ७७८ ई० के बीच का है। उसके बाद इस वंश का ७वाँ राजा गुवक बड़ा प्रतापी हुआ। इसने अनुमानतः ८६८ ई० के लगभग राज्य किया। गुवक शैव था और इस वंश के राजा शैव देवता श्रीहर्ष के पुजारी थे। गुवक के वंश में पाँचवाँ राजा वाक्पतिराज और उसका पोता विग्रहराज बड़े बलशाली हुए। विग्रहराज ने लगभग ९७३ ई० (१०३० वि०) तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी दुर्लभराज लगभग १००० ई० तक राज्य करता रहा।

जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर आक्रमण किये, उस समय दुर्लभ के वंशज साँभर में राज्य करते थे। मुसलमान लेखक फ़रिश्ता के मनगढ़ंत लेख से ऐसा भ्रम फैल गया है कि महमूद ने अजमेर पर भी हमला किया; और उसके विरुद्ध पञ्जाब के राजा जयपाल की सहायता के लिये जो हिन्दू संघ लड़ा था, उसमें दिल्ली और अजमेर के राजा भी थे। परन्तु यह सर्वथा भ्रम है। उस समय अजमेर और दिल्ली विद्यमान ही नहीं थे और नाही महमूद सोमनाथ की चढ़ाई के समय अजमेर या साँभर होता हुआ गया था।

मेवाड़ का गहलोत वंश—मेवाड़ का गहलोत वंश राजपूताने का शिरोमणि माना जाता है। परन्तु अन्यों की भाँति इस वंश का प्राचीन इतिहास भी अंधकार में है। शिलालेखों, जनश्रुतियों और भाटों की ख्यातों इत्यादि में जो कुछ इस वंश की सामग्री है, उसके आधार पर निश्चय रूप से कुछ भी कहना अशक्य है।

उदयपुर के राणा अपने आपको रामचंद्र के वंशधर मानते हैं। परन्तु इस वंश का ई० १० वीं शताब्दी से पहले का इतिहास बिलकुल अनिश्चित है। इस वंश का संस्थापक बापा रावल माना जाता है। बापा ई० ८वीं सदी के पूर्वार्द्ध में नागदा की पहाड़ियों में राज्य करता था। उस समय शायद वह चित्तौड़ के मौर्य राजा का

---

* यह अहिच्छत्र प्राचीन उत्तर पांचाल देश की राजधानी थी। इस नगर के विशाल भग्नावशेष बरेली जिले (संयुक्त प्रान्त) में, रामनगर गाँव के निकट अब तक विद्यमान है। प्राचीन काल में शिवालक पर्वत से उत्तर पांचाल तक का प्रदेश शाकम्भरी कहलाना था। इसी कारण चौहानों ने राजपूताना पहुँच कर अपनी नई राजधानी का नाम शाकम्भरी रखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामन्त रहा हो। बापा एकलिङ्ग शिव का उपासक था, जिसका मन्दिर अब तक उदयपुर राज्य में वर्तमान है। बापा बड़ा योद्धा था। उस समय अरब के मुसलमान साम्राज्य का विस्तार दूर दूर तक फैल रहा था। भारत में उन्होंने सिध को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। परन्तु जिस प्रकार स्पेन को जीतने के बाद मुसलमानों को यूरोप में आगे बढ़ने से चार्ल्स मार्टेल ने ७३२ ई० में टूर्स की लड़ाई में हरा कर पीछे हटा दिया था, उसी प्रकार बापा ने मुस्लिम आक्रमणकारियों को सिन्ध से आगे बढ़ने से रोक दिया।

परन्तु बापा के वंशधरों का इतिहास १२ वीं शताब्दी के आरम्भ तक अनिश्चित सा ही है। महमूद ग़ज़नवी से चित्तौड़ वंशीय राजाओं की कभी मुठभेड़ नहीं हुई। मुहम्मद ग़ोरी के समय में मेवाड़ में सामन्तसिंह राज्य करता था।

(३) दक्षिण खण्ड के राज्य—दक्षिण खण्ड में दो प्रदेश हैं, एक तो वह भाग जो दक्षिण का पठार कहलाता है और एक सुदूर दक्षिण जो प्रायः कृष्णा के दक्षिण से शुरू होकर समुद्र तक चला जाता है। दक्षिण के पठार और उत्तरा खण्ड के बीच में नरमदा और तासी पूरब से पश्चिम को बहती हैं और उनके दोनों तरफ़ विन्ध्य और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ। विन्ध्याचल तो एक मेखला के समान धीरे-धीरे उत्तर की तरफ मुड़ता हुआ बुन्देलखण्ड और बघेलखंड को पार करता हुआ छोटा नागपुर की पहाड़ियों से जा मिलता है। सतपुड़ा की एक भुजा तासी के दक्षिण किनारे से पूरब की तरफ चलती हुई दक्षिण के पठार की उत्तरी सीमा बनाती है। दक्षिण के पठार के उत्तर में यही दो मुख्य नदियाँ और पर्वत हैं और दक्षिण में कृष्णा नदी।

दक्षिण और सुदूर दक्षिण के इन दोनों प्रदेशों में भी अतिप्राचीन काल से कई रियासतें मौजूद थीं। इन रियासतों का इतिहास भी उतना ही जटिल और उलझा हुआ है जितना उस समय के उत्तरी भारत के राज्यों का। परन्तु इनके इतिहास पर प्रकाश डालना इसलिये आवश्यक है कि हम यह जान सकें की मुसलमानी साम्राज्य के दक्षिण में फैलने पर उन रियासतों का क्या प्रभाव पड़ा।

दक्षिण पठार की रियासतों या राज्यों में मुख्य ये थीं; देवगिरि का यादव वंश; मान्य खेत (माल खेद) के राष्ट्रकूट; वातापि (बादामी) के चालुक्य; कल्यानि और वेंगी के राष्ट्रकूट, बनवासी के कदम्ब, वारंगल के काकतीय, मैसूर के गंग, और द्वार समुद्र का होयसल वंश।

सुदूर दक्षिण के राज्यों में, कांची या कांजीवरम् का पल्लव, तंजोर का चोल, मदुरा का पाण्ड्य, और मलाबार का चेर, ये सब राजवंश थे।

चालुक्य वंश—चालुक्य वंश बड़ा प्राचीन था। उस वंश का सबसे महान राजा पुलकेशि दूसरा, हर्षवर्धन का समकालीन था। उस समय समस्त देश को इन दोनों महाराजाओं ने बाँट रक्खा था। उत्तरी भारत प्रायः सारा हर्ष के अधीन था और दक्षिण पुलकेशि के। सुदूर दक्षिण में कांची के पल्लव राजाओं से पुलकेशि की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बराबर लड़ाई रहती थी। इन्हीं के साथ लड़ते हुए वह सं० ६४२ में मारा गया। इस समय पल्लव राजा ने चालुक्य राजधानी वातापि को (जो बीजापुर के जिले में है) ध्वंस कर डाला। पुलकेशि के बाद सं० ७४६ में कीर्त्तिवर्मन दूसरा राज्यगद्दी पर बैठा परन्तु उस समय से चालुक्यों का ह्रास होता गया और मान्यखेद के राष्ट्रकूटों की (मालखेद जो आजकल निज़ाम राज्य में है०) शक्ति बढ़ी जिसके सामने चालुक्यों का दीपक फीका पड़ गया। चालुक्य वंश का एक राज्य गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में, वेंगी में था। इसको पुलकेशि के भाई विष्णुवर्धन ने स्थापित किया था। लगभग दो सौ बरस के बाद चालुक्यों की शक्ति को तैलप दूसरे ने फिर से बढ़ाया। (९७३–९९७) तैलप के सबसे प्रतापी वंशज सोमेश्वर पहले ने १०५३ ई० में कल्यानी को (जो निज़ाम राज्य में है) अपनी राजधानी बनाया। इसी कारण यह पिछले चालुक्य कल्यानी के चालुक्य कहलाये। जिस प्रकार पहले चालुक्यों का पल्लवों और राष्ट्रकूटों के साथ बराबर झगड़ा होता रहता था, उसी प्रकार कल्यानी के चालुक्यों की दक्षिण के चोल राजाओं और उत्तर के परमारों तथा कलचुरियों से, बराबर लड़ाई होती रहती थी। इस कल्यानी के चालुक्य वंश का एक महान् शक्तिशाली राजा विक्रमादित्य छठा हुआ। उसने उत्तर और दक्षिण के राज्यों पर चढ़ाइयाँ कीं और उनको हराया। अपनी विजयों का स्मारक स्थापित करने के लिये उसने १०७६ ई० में चालुक्य-विक्रम काल नामक अपना संवत् चलाया। उसके दरबार का सबसे विख्यात विद्वान् विल्हण कवि था जिसने अपने स्वामि के नाम पर प्रख्यात काव्य-विक्रमाङ्क देव चरित की रचना करके उसकी कीर्त्ति को अमर कर दिया। परन्तु चालुक्य वंश बहुत दिन क़ायम न रहा। ११९० में उसका अन्त हो गया।

राष्ट्रकूट वंश—जब चालुक्य वंश का ह्रास हो रहा था उस समय राष्ट्रकूट वंश का उत्थान हुआ। इस वंश का पहला प्रतापी राजा दन्ति दुर्ग खड्गावलोक ७५३ ई० के लगभग हुआ। इसने वातापी को जीतकर और भी कई स्थान हस्तगत किये। इसके उत्तराधिकारी कृष्ण प्रथम ने लगभग सारा दक्षिण अपने अधीन कर लिया और चालुक्यों का राज लगभग नष्ट कर दिया। इसीने इलोरा की गुफाओं में कैलास मन्दिर का निर्माण कराया था। उसके वंशधर गोविन्द तीसरे ने (ई० सं० ७८३–८१५) बड़े बड़े पराक्रम किये। उसने गुर्जरों, पल्लवों और वेंगी के चालुक्यों के साथ बहुत सी लड़ाईयाँ लड़ीं। इसी वंश के इन्द्र तीसरे (९१४ ई०) ने उत्तर के पालों और गुर्जरों से बड़े युद्ध किये और उत्तरी भारत के कुछ भागों पर अपना अधिकार जमाया। परन्तु इसके बाद सं० ९७४ ई० में अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्क से चालुक्य-वंशीय तैलप दूसरे ने अपने पूर्वजों का खोया हुआ राज्य फिर से छीन लिया और दूसरे (कल्याणी) के राष्ट्रकूट वंश की स्थापना की।

राष्ट्रकूट राजा कला एवं विद्या की उन्नति करने में किसीसे कम न थे। इनके आश्रय में जैन साहित्य की विशेष उन्नति हुई। इनके समय में इलोरा के प्रसिद्ध गुफा मन्दिर बने जो समस्त संसार में वास्तुकला का एक अनुपम नमूना हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यादव वंश—देवगिरि के यादव राजा पहले पश्चिमी चालुक्यों के सामन्त थे। सं० ११८७ ई० के लगभग भिल्लम तीसरे ने अपने वंश को स्वतन्त्र कर लिया। उसीने देवगिरी की स्थापना करके उसे अपना केन्द्र बनाया। यादव राजाओं ने वारंगल के काकतीय और द्वारसमुद्र के होयसल राजाओं से बहुत बार लड़ाई की क्योंकि वे दक्षिण में अपना राज्य विस्तार करना चाहते थे। इन सबको रामचन्द्र ने परास्त किया परन्तु वह स्वयं अलाउद्दीन खिल्जी के द्वारा पराजित हुआ (१२९४) और फिर १३१२ में अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने देवगिरी को फिर से जीता और लूटा। इसके बाद देवगिरी राज्य का पतन होता ही गया।

कर्नाटक के तीन राज्य, कदम्ब, गंग और होयसल, इसी युग में स्थापित, उन्नत और नष्ट हुए। कदम्ब और गंग कुल प्राचीनकाल से विद्यमान थे। परन्तु जब १२ वीं शती में होयसलों की शक्ति बढ़ी तो इन दोनों का पतन शुरू हो गया। कदम्ब कुल के राजा कनाडा और उत्तरी कर्नाटक पर राज्य करते थे और गंगकुल मैसूर पर। सं० ११३० में होयसल वंशीय विष्णुवर्द्धन ने कदम्ब राज्य पर आक्रमण किया और उसके मुख्य नगर बनवासी और हंगल को नष्ट किया। होयसल राजा अपने वंश के अति-प्राचीन होने का दावा करते थे परन्तु उनका उत्कर्ष ११वीं शती में शुरू हुआ था और १२वीं शती में उनका प्रभुत्त्व बढ़ा। उस शती में उन्होंने दक्षिण के चोल और पाण्ड्य राज्यों के कुछ भागों को जीता और उत्तर में कदम्ब और चालुक्य राज्यों को। इस समय दक्षिण के राज्यों में समस्त दक्षिण खण्ड को अधीन करने के लिये परस्पर युद्ध होने शुरू हुए थे और प्रत्येक की इच्छा थी कि सबके ऊपर अपना आधिपत्य जमाये। यह युद्ध पूरी तरह जोर पकड़ भी न पाये थे कि उत्तरी भारत से एक तीसरी शक्ति ने इनको आकर अचानक घेर लिया। देवगिरी को जीतने के बाद मलिक काफ़ूर ने द्वार समुद्र (मैसूर रियासत में आधुनिक हेलिबिड) पर छापा मारा, उसे पूरी तरह लूटा, और होयसल राजा बीर बल्लाल तीसरे को (१३१० ई०) में पकड़ कर देहली ले गया। उसी समय कदम्बों की राजधानी गोवा को भी काफ़ूर ने ध्वंस किया। कोंकण के कदम्बों पर अन्तिम और नाशकारी आक्रमण १३२७ ई० में मुहम्मद तुग़लक़ का हुआ। इब्न-ए-बतूता का कहना है कि कदम्ब राजा के एक विद्रोही पुत्र ने मुसलमानों को बुलाया था।

वारङ्गल के काकतीय राजा—यह वंश तिलंगाना या तलूगू प्रान्त में राज्य करता था। इस वंश के एक राजा ने वारंगल नगर की जो अब निज़ाम रियासत के पूरब में है, सं० ११३० ई० में नींव डाली। उसके बेटे प्रताप रुद्रदेव पहले ने सं० ११६२ ई० के आस पास यादवों और उड़ीसा के शासकों को जीता था। उसी वंश के एक अन्य राजा, गणपति राजा के बारे में कहा जाता है कि उसने सं० ११९९ में चोल राजा को पराजित किया था। सं० १२६१ ई० में इस वंश की रानी रुद्रम्मा शासन करती थी। मारको पोलो, जो इस समय भारतवर्ष में भ्रमण कर रहा था, कहता है कि रानी रुद्रम्मा बड़ी चतुराई एवं योग्यता से शासन करती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रानी रुद्रम्मा का उत्तराधिकारी प्रताप रुद्रदेव दूसरा हुआ जिसने १२९१ से १३३० ई० तक राज्य किया। इसके बाद काकतीय वंश का अन्त हो गया। उसके राज्य काल में मलिक काफूर ने वारंगल पर हमला करके उसे खूब लूटा। प्रताप रुद्रदेव ने बहुत सा धन, सोना व जवाहरात देकर अपनी रिहाई करानी चाही परन्तु मलिक काफूर ने कुछ न सुना और उसे पकड़ कर देहली ले गया। वहाँ से वह अपनी मृत्यु के थोड़े ही दिन पहले इस शर्त्त पर छोड़ा गया कि वह देहली सुल्तान के अधीनस्थ रहेगा।

सुदूर दक्षिण के राज्य—सुदूर दक्षिण के राज्यों में कांची के पल्लव, तंजारे के चोल, मदुरा के पाण्ड्य और मलाबार या केरल के चेर वंश थे। यद्यपि ये राज्य उत्तराखण्ड से बहुत दूर थे तथापि वे दिल्ली के सुलतानों के हमलों से न बच पाये। ये राज्य कन्याकुमारी से कोई १०० मील उत्तर की तरफ तक फैले हुए थे। इनमें सबसे ऊपर चोल राज्य करोमण्डल (चोडमण्डल) तट पर दक्षिण की तरफ नेलोर और पुडूकोटई तक फैला हुआ था। वहाँ पर पाण्ड्य राज्य की सीमा से मिल कर पच्छिम में कुर्ग तक पहुँचता था। चोल राज्य के दक्षिण में पाण्ड्य राज्य पुडूकोटई से कन्या कुमारी तक फैला हुआ था और केरल राज्य पश्चिम की तरफ मलाबार तट पर चन्द्र-गिरि नदी के दक्षिण में था। इसमें कुर्ग का मुख्य भाग सम्मिलित था। पल्लव राज्य चोल राज्य के उत्तर में था।

पल्लव वंश—पल्लवों का ऊद्गम अनिश्चित है। उनके बारे में यह माना जाता है कि शायद वे किसी बाहरी देश से आये थे। उनका राज्य बड़े प्राचीन काल से मौजूद था। हर्षवर्द्धन और पुलकेशि के काल में उनकी सत्ता इतनी प्रबल थी कि वे पुलकेशि का मुकाबला कर सकते थे। इसी वंश के राजा नरसिंह वर्मन महान ने (प्रायः ६३०–६६८ ई०) सं० ६४२ में वातापी पर चढ़ाई करके पुलकेशी को मारा और चालुक्य सत्ता को नष्ट प्रायः किया। कहा जाता है कि उसने कई बार चोल, चेर और पाड्य राजाओं को परास्त किया था। उसने लंका द्वीप पर भी कई बार चढ़ाई करके वहाँ के राजा को हराया था। पल्लव राजा कई पीढ़ियों तक उत्तर में चालुक्यों और राष्ट्रकूटों के साथ पश्चिम में गंग वंश के साथ, और दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राजाओं के साथ लड़ते रहे। अन्तिम राजा का नाम अपराजित था। परन्तु उसका यह नाम सार्थक सिद्ध न हुआ। ९वीं शती के अन्त में चोलवंशीय आदित्य ने अपराजित को हरा कर पल्लव वंश और राज्य का अन्त कर दिया।

चोल वंश—चोल वंश भी अति प्राचीन था। उसकी शक्ति भी अन्य राज्यों की तरह घटती बढ़ती रही। ९वीं शती के अन्तिम भाग में उपरोक्त राजा आदित्य चोल ने फिर से अपने वंश का प्रभुत्व स्थापित किया। उसका बेटा परान्तक और भी प्रतापी हुआ। उसके विशेषणों और उपनामों से पता चलता है कि उसने मदुरा और लंका को भी जीता था। चोलवंश के सबसे महान राजा राजराज महान (९८५–१०१६ ई०) और उसका बेटा राजेन्द्र गंगईकोंडा (१०१६–१०४२ ई०) थे। इन दो

राजाओं ने समस्त दक्षिण को ही अधिकृत नहीं किया, बल्कि उत्तर में गंगा के तट तक और समुद्रपार बृहत्तर भारत के प्रदेशों तक पर चढ़ाइयाँ कीं और अपनी कीर्त्ति फैलाई। उन्होंने पाण्ड्य, चेर, सिंहल, गंग पूरब और पश्चिम के चालुक्य, कदम्ब, राष्ट्रकूट और कलिंग, इन सब राज्यों को जीतकर अपने अधीन किया। फिर कलिंग को अपने समर का केन्द्र बनाकर उन्होंने समुद्रगुप्त की तरह बिहार बंगाल और ब्रह्मा, बंगाल की खाड़ी के टापू तथा सुमात्रा और जावा तक धावा मारा और वहाँ अपना आतंक जमाया। इन अपूर्व विजयों के स्मारक रूप उन्होंने एक नई राजधानी की स्थापना की और उसका नाम गंगईकोंडा—चोलपुरम रक्खा। परन्तु इतनी महान चोल सत्ता भी बहुत काल तक न ठहर सकी। राजेन्द्र चोल की १०४२ ई० में मृत्यु हो गई और वह अपने उत्तराधिकारी के लिये, जो उसके समान वीर और शक्तिमान न था, चारों ओर लड़ाई और शत्रुता की धरोहर छोड़ गया। बहुत ही जल्दी उनके समुद्र पार के टापू उनके हाथ से निकल गये। फिर १२ वीं शती में चोलवंश में परस्पर कलह की आग भड़की जिसके कारण उनका ह्रास और भी तेजी से होना शुरू हुआ। यह दशा देखकर होयसल, पाण्ड्य और काकतीय राजा लोग न केवल स्वतन्त्र हो गये बल्कि उन्होंने चोल राज्य की भूमि पर अपना अधिकार फैलाना शुरू किया और चोल राज्य को भारी नुकसान पहुँचाया।

पांड्य राज—१० वीं शती के अन्त से लगाकर १३वीं शती के प्रारम्भ तक पांड्य वंश चोल राज्य के अधीनस्थ रहा। सं० १२१६ ई० में सुन्दर पांड्य ने अपने राज्य को स्वाधीन किया। उसने १२३९ तक राज्य किया। फिर उसके पोते जातवर्म्मन सुन्दर पांड्य (१२५१–१२६८ ई०) के काल में मदुरा का राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँचा। जात वर्म्मन ने चोल राजा को ही नहीं हराया बल्कि होयसलों, पल्लवों और काकतीय राजा को भी पराजित कर उनकी भूमि का कुछ भाग अधिकृत किया और अपना राज्य नैलोर तक फैलाया। उसके बाद कुलशेखर (१२६८–१३११ ई०) ने क़िलान और लंका को जीता (१२८४ ई० में)। परन्तु कुलशेखर के जीवनकाल में ही उसके बेटों में परस्पर झगड़े शुरू हो गये। एक बेटे सुन्दर पांड्य ने कुलशेखर को मार डाला और अपने भाई वीर पांड्य के विरुद्ध मुसलमानी सैनिक मलिक काफ़ूर से सहायता माँगी। जैसा हम ऊपर देख आये हैं मलिक काफ़ूर ने १३१०–११ ई० में मदुरा पर हमला किया और पांड्य वंश का अन्त कर दिया।

चेर वंश—चेर वंश भी मुसलमानों के दक्षिणी हमलों से बहुत पहले स्थापित और उत्कृष्ट हो चुका था। उसका सबसे महान् राजा दूसरी शती ई० में सेनगुहवन नामक हुआ। उसका इतिहास कुछ निश्चित नहीं है। इस वंश के शासक पेरुमल या चेरमान कहलाते थे। उनके राजा के विषय में सर्वसामान्य में यह खबर फैली हुई थी कि वह मुसलमान हो गया था और जब वह मक्का हज करने गया, तो वहीं उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु यह विश्वास बिलकुल निराधार है। इस वंश का ९ वीं शती में अन्त हो गया और उसके बाद कुलशेखर पेरूमल वंश का प्रादुर्भाव हुआ। यही लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रावंकोर के आधुनिक राजाओं के पूर्वज थे। मुसलमानों के शान्ति पूर्वक प्रवेश के उल्लेख से विदित होगा कि मलाबार में मुसलमानी प्रभाव बहुत पहले अर्थात् ८वीं शती से ही फैल चुका था।

२

धार्मिक, सामाजिक और नैतिक अवस्था (सन् ६००—१२०० ई०)

धार्मिक अवस्था—७ वीं सदी में बौद्ध धर्म्म का अन्तिम दीपक टिमटिमा रहा था। शैव और वैष्णव धर्म्मों का प्राबल्य होता जा रहा था और बौद्ध धर्म्म का अस्तित्व भी इन्हीं धर्म्मों के अथाह समुद्र में लीन होता जा रहा था। भगवान् बुद्ध भी एक अवतार हो गये थे और अन्य हिन्दू देवताओं के समान पूजे जाते थे। इस प्रकार हिन्दू और बौद्ध मतों में कोई भेद न रह गया था। भारतवर्ष में धार्मिक सहिष्णुता सदैव से रही है और इस समय भी थी। बौद्ध मत ने केवल बुद्ध ही नहीं, बल्कि बोधिसत्त्व इत्यादि कई अन्य देवता भी पूजा के लिये हिन्दू मत को प्रदान किये थे। इस समय जनता में देवालय, मन्दिर, मठ, धर्मशाला इत्यादि बनवाने और उनको खूब दान देने की विशेष प्रवृत्ति थी। वे लोग विष्णु, शिव, देवी, गणेश और सूर्य आदि के मन्दिर बनवाते थे। इसी काल से सहस्रों मन्दिर और देवस्थान देश में बनने शुरू हुए। राजा, सरदार, धनी एवं दरिद्र सभी इनको दान देना परम धर्म समझते थे। परिणाम यह हुआ कि मध्य-कालीन यूरोप की भाँति ये मन्दिर और मठ भी अगणित सम्पत्ति के आगार बन गये और इनके पुजारी और मठाधीश बहुत विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। इनके सहस्रों वंशज आजतक विद्यमान हैं जिनकी अवस्था किसी से छिपी नहीं है।

ब्राह्मण, जैन और बौद्ध—ये तीन धर्म सन् ६०० से १००० ई० तक के काल में प्रचलित थे। इनमें से बौद्ध धर्म तो मृतप्राय हो चुका था और जैन धर्म बहुत परिमित क्षेत्र में रह गया था। तो भी राजपूताने, दक्षिण और गुजरात में जैन धर्म्म का बहुत प्राबल्य था और कई राजा भी जैन थे। ब्राह्मण धर्म में भागवत या वैष्णव मत और शैव मत दोनों का यथेष्ट प्रचार था। सन् १००० से १२०० ई० तक जैन धर्म ने राजपूताने में बहुत ज़ोर पकड़ा और वहाँ की अधिकतर जनता जैन धर्मानुयायी हो गई। यद्यपि राजा लोग प्रायः शैव थे, तथापि वे किसी अन्य मतवाले के साथ अन्याय नहीं करते थे।

उत्तर भारत में उस समय वैष्णव धर्म ने एक नया रूप धारण किया। यहाँ राधा-कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा शुरू हुई। लक्ष्मण सेन के राजकवि जयदेव ने अपने गीत-गोविन्द (१२ वीं सदी) में राधा-कृष्ण के प्रेम की कहानी अत्यन्त मधुर शब्दों में गाई। इसके बाद वैष्णव धर्म बंगाल में श्री चैतन्यदेव के प्रयास से और पश्चिमोत्तर तथा मध्य भारत में रामानन्द इत्यादि अन्य महात्माओं के प्रयत्न से बहुत फैला। इस वैष्णव धर्म में अहिंसा के सिद्धान्त पर प्रायः उतना ही ज़ोर दिया

गया था जितना जैन धर्म में। दक्षिण में भी इसका प्रचार हुआ, परन्तु राधाकृष्ण-वाले पन्थ के रूप में नहीं। इसका मुख्य श्रेय श्री रामानुजाचार्य को है। उन्होंने वेदों, ब्राह्मणों और वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार किया और शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन किया। वैष्णव धर्म तो तामिल और आन्ध्र देश में फैल रहा था और शैव मत इसी समय कर्नाटक और पश्चिमी तट की ओर एक नये और प्रबल रूप में उठ रहा था। शैव मत के इस नये रूप को लिंगायत या वीरशैव धर्म कहते हैं। इसका प्रवर्त्तक वासव नामक एक ब्राह्मण था। इस धर्म का मूल सिद्धान्त अहिंसा था, पर वह वर्णाश्रम धर्म, ब्राह्मणों की उच्चता और जात-पाँत का विरोधी था और कहता था कि प्रत्येक मनुष्य सत्कर्मों से परम गति प्राप्त कर सकता है। वासव ने तो तप और संन्यास का भी खण्डन किया था और केवल कर्मण्यता तथा प्रयत्न पर जोर दिया था। उसने ब्राह्मणों के आधिपत्य की जड़ पर हर प्रकार से कुठाराघात किया था।

इस्लाम धर्म—सुबुक्तगीन और महमूद ग़ज़नवी ने जिन जिन देशों को जीता, उन्हें बलात् मुसलमान बनाने का भी प्रयत्न किया। १० वीं सदी से पहले अफ़गानिस्तान और बलोचिस्तान इत्यादि के निवासी हिन्दू थे। पश्चिमोत्तर पहाड़ी प्रदेश की जातियाँ भी बौद्ध और हिन्दू थीं। सुबुक्तगीन और महमूद के प्रयास से ये समस्त प्रदेश मुसलमान हो गये; और आज कल तो वे यह भी भूल गये हैं कि हम केवल ९०० वर्ष पूर्व हिन्दू थे। फिर पंजाब में भी बहुत से लोगों को मुसलमान बनाया गया।

सामाजिक अवस्था—७वीं शताब्दी तक भारत में प्राचीन काल की भाँति मुख्यतया चार वर्ण थे। अभी तक इन वर्णों में छोटी उपजातियों के भेद उत्पन्न नहीं हुए थे। उनमें परस्पर विवाह तथा खान-पान के सम्बन्ध हुआ करते थे। ब्राह्मण मुख्यतया अध्ययन और अध्यापन का कार्य करते और समाज के नेता समझे जाते थे। वे राजाओं के मन्त्री होते थे। परन्तु सन् ७०० से १००० ई० के बीच में वे अन्य पेशे भी करने लगे और पाराशर स्मृति आदि में सब वर्णों को अन्य कार्य करने की आज्ञा भी दे दी गई। इसी प्रकार क्षत्रियों में भी परिवर्त्तन हुआ। जो मनुष्य राजा बन जाता, फिर चाहे वह किसी वर्ण का रहा हो, उसे सब क्षत्रिय मानने लगते थे और ब्राह्मण तथा भाट लोग प्राचीन सूर्य अथवा चन्द्रवंश से उसका नाता जोड़ देते थे। बौद्ध और जैन मत के अनुसार खेती-बारी करना पाप समझा जाता था, क्योंकि इसमें अनेक जीवों की हिंसा होती थी। इससे प्रभावित होकर वैश्यों ने खेती-बारी छोड़ दी; और जो लोग खेती-बारी करते थे, वे शूद्रों के समान समझे जाने लगे। सेवा करनेवाले वर्ग का नाम शूद्र था। तब तक ये लोग अछूत नहीं थे और इनको भी पंचयज्ञों का अधिकार था। धीरे-धीरे इनके काम भी बढ़ते गये, क्योंकि जैसा ऊपर बतला आये हैं, वैश्य आदि अन्य वर्णों ने अपने बहुत से काम छोड़ दिये थे और राजपूत काल में दस्तकारी के काम तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाने लगे थे। इस प्रकार का भाव प्रत्येक समाज में, जहाँ जागीरदारी की प्रथा होती है, पाया जाता है। इस प्रकार इन चारों वर्णों के सिवा कई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी जातियाँ भी बन गईं जो पीछे से अन्त्यज कहलाईं। ये लोग पेशेवर थे और निम्नलिखित आठ श्रेणियों में विभक्त थे—धोबी, चमार, मदारी, टोकरी और ढाल बनानेवाले, मल्लाह, धीवर, जुलाहे और चिड़ीमार। ये लोग पहले अन्त्यज नहीं समझे जाते थे। केवल चांडाल और मृतप (कफ़न लेनेवाले) अन्त्यज समझे जाते थे।

सामाजिक कुरीतियों का आरम्भ—छूत-छात की कुरीति भी ११ वीं शताब्दी तक बहुत नहीं बढ़ी थी, जैसा कि अलबेरूनी के कथन से सिद्ध होता है। इसके उपरान्त छूत-छात भी बढ़ती गई। सती की प्रथा तो, जान पड़ता है, बहुत पहले से शुरू हो गई थी। हर्ष की माता अपने पति के साथ सती हुई थी। परन्तु उस समय किसी को बलात् सती नहीं किया जाता था। परदे की प्रथा का आरम्भ कब से और क्यों हुआ, यह कहना कठिन है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि राजपूत काल में जो पार्थक्य एवं कुलीन प्रथा आरम्भ हुई थी, उसका एक परिणाम परदा भी था। कुलीन वंश के लोग अपनी स्त्रियों को किसी के सामने नहीं आने देते थे और इसमें अपनी मानहानि समझते थे। फिर भी यह निश्चित है कि इस प्रथा का अत्यन्त विस्तार तथा वृद्धि मुस्लिम विजय के बाद हुई। बाल-विवाह तथा विधवाओं के पुनर्विवाह का वर्जन कोई १० वीं सदी से शुरू हुआ। बाल-विवाह का कारण श्री चि० वि० वैद्य के मतानुसार यह था कि बौद्ध मत में क्वाँरी स्त्रियाँ संन्यासिनी हो जाती थीं। उनको इससे रोकने के लिये उनका विवाह बचपन में ही करना आरम्भ कर दिया गया। इसीके साथ बहु-विवाह की प्रथा भी आरम्भ हुई।

स्त्रियों की अवस्था—उपर्युक्त अनेक कुप्रथाएँ होते हुए भी सन् ६०० से १२०० ई० तक के काल में स्त्रियों की अवस्था सामान्यतया अच्छी थी। उनका बहुत आदर होता था। उनको उच्चतम शिक्षा दी जाती थी जिसके अनेक उदाहरण उस समय के इतिहास में मिलते हैं। शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ करनेवाली मण्डन मिश्र की पत्नी प्रकाण्ड विदुषी थी। कवि राजशेखर की पत्नी अवन्ति-सुन्दरी, भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती, हर्ष की बहन राज्यश्री आदि बहुत विदुषी स्त्रियाँ थीं। हर्ष-रचित रत्नावली नाटिका से पता चलता है कि रानियाँ चित्र कला, गायन, वादन, नृत्य इत्यादि बहुत अच्छी तरह जानती थीं और इन कलाओं की शिक्षा दूसरों को देती थीं। स्त्रियों को देवी का स्वरूप माना जाता था। स्मृतियों में स्त्रियों को पिता, गुरु तथा ब्राह्मण से भी कहीं अधिक आदर और मान के योग्य बतलाया गया है। राजपूतों में अब तक स्त्री जाति की रक्षा करना सर्वोच्च धर्म माना जाता है। पर आगे चलकर यह अवस्था न रही। राजपूत जाति नवीन ब्राह्मणधर्म की जंजीरों में ग्रसित होकर उसके विश्वास, विचार एवं कर्म अधिकाधिक संकीर्ण एवं स्थावर होते चले गये। स्त्रियों की रक्षा का उनके विश्वास के अनुसार यह अर्थ हो गया कि उनको मनुष्य अन्य सम्पत्ति के समान समझे। स्त्रियाँ एक प्रकार का खिलौना बन गईं जो मनुष्य के मनोरंजन और क्रीड़ा में काम आयें। अगर उनका स्वामी, उनसे रंगरेलियाँ और विलास करनेवाला इस लोक से सिधार जाय तो उसके यह खिलोने जिनकी तादाद एक से हजारों तक हो

सकती थी सब उसके शव के साथ जला दिये जायँ, क्योंकि नवीन ब्राह्मण धर्म की शिक्षा के अनुसार इस मनोविनोद की सामग्री को अपने स्वामी के बाद जीवित रहने का कोई अधिकार ही नहीं था। कारण कि इसका मौलिक सिद्धान्त यह था कि स्त्री का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व अथवा जीवन कार्य है ही नहीं, वह तो केवल मनुष्य के जीवन-यापन का एक साधनमात्र है। इस प्रकार के विश्वासों का परिणाम यह हुआ कि राजपूतों को क्या, समस्त हिन्दू जाति को कुरीतियों और नैतिक एवं सामाजिक संकीर्णता और क्षुद्रता के दैत्य ने हड़प कर लिया। सती, बाल-विवाह, छूतछात, जात-पात के अत्यन्त निकृष्ट भेदभाव, ऊँच-नीच के निराकार विचार, परदा (जिसकी मात्रा उतनी ही अधिक होती थी जितना कि परदा करानेवाला अपने को कुलीनता में उच्च समझता हो) इत्यादि अनेक कुरीतियाँ जाति में फैल गईं। मुसलमान लोग भी जिनमें से ९० फ़ी सदी यहीं के निवासी और पहले हिन्दू थे इन कुरीतियों से बच न सके।

भारतीयों का भौतिक जीवन—इस काल में भौतिक जीवन में भारतीय जनता यथेष्ट उन्नत थी। कला-कौशल, गायन-वादन, खेल-तमाशे, मेले-त्यौहार इत्यादि को सुन्दर, मनोहर तथा आनन्दमय बनाने के अनेक उपाय किये जाते थे। हिन्दू त्यौहारों और मेलों का बहुत महत्त्व था। मेलों में यात्रा, देव-पूजा, प्रदर्शिनी इत्यादि का एक ही में समावेश होता था। इन्हीं में बड़े-बड़े महात्माओं द्वारा जनता को उपदेश भी मिलते थे, और साथ ही खेल-तमाशे, नाटक इत्यादि से उनका मनोरंजन भी होता था। इसी प्रकार त्यौहारों में कई बातों का समावेश होता था। इन अवसरों पर चित्र और नाटक इत्यादि दिखलाये जाते थे। बड़े-बड़े भोज होते थे। पशु-पक्षियों की लड़ाई, कुश्ती, जल-विहार, नावों की दौड़, तैराकी, वर्षा ऋतु में झूले, वसन्त में रंग, पिचकारी इत्यादि मनोविनोद के बहुत से कार्य होते थे जिनमें स्त्री-पुरुष सभी सम्मिलित होते थे। घरों में लोग शतरंज, चौपड़ इत्यादि खेल खेलते थे। जूए का भी काफ़ी प्रचार था; परन्तु उस पर राज्य का नियन्त्रण रहता था और कर लगाया जाता था।

वस्त्र ऋतुओं के अनुसार पहने जाते थे। प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि कपड़ा, रेशम, ऊन तथा चमड़ा सीने के साधन बहुत पहले से वर्त्तमान थे। अजन्ता के चित्रों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ एक प्रकार की अँगिया पहनती थीं और उसके ऊपर से साड़ी पहनती थीं। इन कपड़ों के अतिरिक्त लहँगे आदि का भी रवाज था। उत्तरी भारत में पुरुष कुछ सिला हुआ कपड़ा भी पहनते थे, परन्तु दक्षिण में सामान्यतया केवल दो धोतियों से काम चलाते थें। धनाढ्य लोग बड़े-बड़े कीमती कपड़े पहनते थे। विवाह इत्यादि के अवसरों पर स्त्रियों को अत्यन्त सुन्दर कपड़े तथा आभूषण पहनाये जाते थे। आभूषण अनेक प्रकार के तथा रत्न-जटित होते थे। शृंगार के लिये स्त्रियाँ केश-विन्यास करती थीं और कई प्रकार के तेल, इत्र इत्यादि का प्रयोग होता था। फूल-मालाओं और गजरों का भी बहुत रवाज था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वान् तथा उच्च शिक्षित लोग अपना मनोविनोद साहित्य-चर्चा द्वारा करते थे। राजा लोग अपने दरबार में विद्वानों को भी रखना और उनका हर प्रकार से आदर-सम्मान करना अपना कर्त्तव्य समझते थे और स्वयं भी बड़े ज्ञानवान तथा विद्याव्यसनी होते थे। मालवे के राजा भोज का नाम उसके विद्या-प्रेम के कारण ही आज तक प्रसिद्ध है। उस समय और भी ऐसे बहुत से राजा हुए थे।

भोजन इत्यादि में सफ़ाई का बहुत खयाल रखा जाता था। उच्छिष्ट भोजन किसी को नहीं खिलाया जाता था। खाने के लिये सोने, चाँदी, ताँबे आदि के पात्रों का प्रयोग होता था। भोजन प्रायः गेहूँ, चावल इत्यादि अनाज, फल, सब्जी, घी, शक्कर, मक्खन इत्यादि का होता था और सामान्यतया लोग शाकाहारी होते थे। कुछ प्रान्तों में मछली आदि भी खाई जाती थी। मुसलिम-विजय के बाद से राजपूतों में माँस खाने का अधिक प्रचार हुआ; परन्तु अन्य उच्च जातियों में उतना प्रचार नहीं था। उत्तर में ब्राह्मण भी माँस खाने लगे थे। दक्षिण में माँस का प्रचार बहुत कम था। मद्य-पान आदि वर्जित था, परन्तु धीरे-धीरे राजाओं तथा सरदारों में एवं राज-दरबार से सम्बन्ध रखनेवाले कर्म्मचारियों में मद्यपान का प्रचार अधिक बढ़ा। राजपूतों में बहुत प्राचीन काल से अफ़ीम खाने का रवाज भी जारी है। यह रवाज कब शुरू हुआ, यह जानना तो कठिन है, पर इसका एक मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि लड़ाई में अफ़ीम का नशा (जिसे ठेठ भाषा में "अमल" कहा जाता है) बड़ा उपयुक्त होता था। अफ़ीम के नशे से ज्ञान-तन्तु (nerves) कुछ ऐसी ठोस और सुन्न हो जाती है कि चाहे जैसा घाव लग जाय या कितनी ही देर तक कोई लड़ता रहे, उसे कष्ट या थकान अनुभव नहीं होता था। यह बात तो निश्चय सी ही है कि अफ़ीम का इतना अधिक प्रचार इसी गुण के कारण राजपूतों में हुआ।

व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र में भारतवासी सदैव से बहुत पवित्र तथा उज्ज्वल रहे हैं। मेगस्थनीज़ से लेकर सभी विदेशी यात्रियों ने भारतवासियों की सरलता, सचाई, ईमानदारी आदि की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। राजपूत लोग तो सचाई और ईमानदारी के नाम पर जान देते थे। उनकी पराजय का एक कारण यह भी था। सामान्यतया भारतवासी बहुत न्यायपरायण, निष्कपट, स्वामि-भक्त तथा निर्भीक होते थे। वे अतिथि-सेवा और सत्कार के लिये प्रसिद्ध थे। धर्म का प्रभाव उन पर बहुत गहरा था। परन्तु इस काल में उनका धर्म प्रायः ब्राह्मणों के हाथ में था। रूढ़िवाद की प्रधानता और स्वतन्त्र विचार का अभाव इसी समय से प्रारम्भ हुआ। परिणाम यह हुआ कि देवी-देवता, मन्दिर-मूर्ति इत्यादि की पूजा तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक अन्धविश्वासों को धर्म का मुख्य अंग मान लिया गया। सामाजिक और वैयक्तिक दोनों प्रकार के जीवन में निर्जीव विधि-विधानों तथा परिपाटियों को धर्म समझा जाने लगा। आधुनिक हिन्दू समाज के जीवन में जो अन्धविश्वास तथा कुरीतियाँ प्रचलित हैं, वे सब इसी समय से आरम्भ हुई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

३
शासन-प्रबन्ध और आर्थिक अवस्था (सन् ६००—१२०० ई०)

सातवीं शताब्दी के बाद देश में किस प्रकार और कितने राजपूत राज्य स्थापित हुए, इसका संक्षिप्त विवरण हम इस अध्याय के आरम्भ में दे चुके हैं। इन राज्यों में प्राचीन राजनीतिक सिद्धान्तों एवं शासन पद्धति के अनुकरण का प्रयत्न किया जाता था। इस समय के सभी राज्य एक-तन्त्री थे। तथापि राजा सर्वेसर्वा नहीं होता था; उसकी शक्ति राजधर्म से परिमित रहती थी। राजा की मन्त्री-परिषद् होती थी जिसके हाथ में वस्तुतः राज्य की प्रायः सारी शक्ति रहती थी। इस मन्त्री-परिषद् के सदस्य राज्य के सर्वोत्तम विद्वान्, बुद्धिमान् और गुणज्ञ बनाये जाते थे। ये लोग धर्म के सिवा किसी सांसारिक शक्ति से नहीं डरते थे और राजा को निस्संकोच होकर ठीक-ठीक सलाह देते थे तथा उसे कोई ऐसा काम नहीं करने देते थे जिससे प्रजा का अहित होता। मन्त्री-परिषद् के अतिरिक्त प्राचीन काल की भाँति शायद इस समय भी ऐसे संन्यासी महात्मागण राज्य में रहते थे जो आवश्यकता पड़ने पर राजा को धर्म तथा न्याय से विचलित होने से बचाते और उसका पथ-प्रदर्शन करते थे। इस प्रकार राजा प्रजा-हितैषी होता था, प्रजाघातक नहीं। वह प्रजा के सब प्रकार के कृत्यों आदि का उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझता था। वह केवल आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों की ओर ही नहीं, किन्तु प्रजा की सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी अवस्था पर भी लक्ष्य रखता था।

शासन के सिद्धान्त तथा राज्य के मूलभूत नियम स्मृतियों में वर्णित थे जिन पर देशकालानुसार टीका-टिप्पणी, संशोधन और परिवर्धन आदि विद्वान् लोग करते रहते थे। इन सिद्धान्तों के अनुसार ही राजा लोग शासन करते थे।

इस समय साम्राज्य का आदर्श केवल यही समझा जाता था कि भिन्न भिन्न शासक लोग किसी अत्यन्त शक्तिशाली राजा का प्रभुत्व स्वीकार कर लें। इतने ही से वह सन्तुष्ट हो जाता था। राजा तथा सामन्तगण उसके सार्वदेशिक यज्ञों में सम्मिलित होते और भेंट इत्यादि से उसका आदर-सत्कार करते थे। इसके अतिरिक्त वे हर प्रकार से अपने राज्य में स्वतन्त्र रहते थे। सम्राट् उनके शासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करता था। यदि कोई शक्तिशाली राजा न होता था तो कोई चक्रवर्ती भी न होता था।

राष्ट्रीय एकता का विचार भारत में अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। परन्तु उस समय जातीय एकता के लिये एक साम्राज्य का होना अनिवार्य नहीं समझा जाता था। एक जाति और एक राज्य का सिद्धान्त आधुनिक काल की उपज है। उस समय जातीय एकता के लिये समान धर्म, समान संस्कृति, समान सभ्यता एवं समान उद्देश्य बिना एक साम्राज्य के भी सम्भव थे; क्योंकि देश में चाहे जितने राजा होते, राजनीतिक धर्म के मूल सिद्धान्तों का पालन करना उन सब का कर्तव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता था और प्रजा के हित-अहित तथा उन्नति के सामान्य आदर्शों में सभी लोग एक प्रकार से सहायक होते थे। इस कारण जातीय ऐक्य के लिये राज्य की एकता की आवश्यकता न थी। ऐसी ही दशा राजपूत काल के पूर्वार्ध में थी। परन्तु जब आधुनिक काल में एक-जाति और एक-राज्य का सिद्धान्त सर्वमान्य होता गया, तब उसे राजपूत लोग न समझ सके और उन्होंने अन्य बातों की तरह उस सिद्धान्त में भी कोई परिवर्तन न किया और पुराने ही विचारों पर डटे रहे। इसी कारण वे उन्नति की दौड़ में पिछड़ गये और विदेशियों के हाथों अपमानित हुए तथा देश और जाति की स्वतन्त्रता खो बैठे।

शासन-व्यवस्था—राज्य प्रायः भुक्ति (प्रान्त), विषय (जिला) और ग्रामों में विभक्त होता था। प्रान्ताधिकारी के बहुत से नाम शिलालेखों में मिलते हैं। वह विषयपति (जिले का स्वामी) को नियुक्त करता था। सब कर्मचारियों के अलग-अलग दफ्तर होते थे। प्रान्तीय शासकों के पास राजा की लिखित आज्ञाएँ जाती थीं जिन पर राजमुद्रा की छाप लगी होती थी। प्रान्तों में भिन्न-भिन्न विभाग भिन्न कर्मचारियों के अधिकार में होते थे जिनमें से कुछ के नाम यहाँ दिये जाते हैं—ग्रामिक (ग्राम का मुखिया), शौल्किक (शुल्क लेनेवाला), गौल्मिक (किले का अध्यक्ष), ध्रुवाधिकरण (भूमि-कर लेनेवाला), भाण्डागाराधिकृत (कोषाध्यक्ष), इत्यादि। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से कर्मचारी होते थे।

ग्राम-संस्था—शासन का मुख्य विभाग ग्राम-संस्था थी जो प्राचीन काल से भारत में प्रचलित थी। ग्राम का प्रबन्ध वहीं की पंचायत द्वारा होता था। ग्राम-संस्था मानों एक छोटा सा प्रजातन्त्र था जिसमें प्रजा का अपने शासन में पूरा अधिकार होता था।

इन्हीं ग्राम-संस्थाओं के द्वारा केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध होता था। हम ऊपर दक्षिण के चोल राज्य तथा मालवे के परमार राज्य आदि के वर्णन में बतला आये हैं कि उनका प्रबन्ध कैसा अच्छा था। ग्राम-सभाओं के दो कार्य होते थे—विचार करना और शासन करना। सम्पूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे ; जैसे कृषि और उद्यान, सिंचाई, व्यापार, मन्दिर आदि के लिये। ग्राम-सभाएँ सार्वजनिक वास्तु अर्थात् नहरों, तालाबों और कूओं की मरम्मत समय-समय पर कराती थीं तथा ग्राम की रक्षा इत्यादि का भी प्रबंध करती थीं। शहरों में नगर-सभाएँ नगरों का प्रबन्ध करने के लिये होती थीं।

न्याय और दण्ड—न्याय का सर्वोच्चाधिकारी राजा होता था। वह प्रायः अपनी मन्त्री-परिषद् की सलाह से न्याय करता था। राजा के अतिरिक्त न्याय विभाग के लिये एक विशेष अधिकारी रहता था जिसके नीचे प्रान्तों और विषयों में अन्य अधिकारी होते थे। दण्ड-विधान बहुत कठोर थे और इस सिद्धान्त पर बने थे कि दण्ड की कठोरता से भयभीत होकर लोग पाप न करें। चोरी, जारी इत्यादि के लिये अंग-च्छेद, निर्वासन, जुर्माना, कारागार आदि दण्ड दिये जाते थे। अभियोगों में लिखित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मौखिक साक्षी ली जाती थी। कहीं-कहीं दिव्य साक्षी (Ordeal) की क्रूर प्रथा भी प्रचलित थी।

राजनियमों में स्त्रियों की स्थिति भी वर्णित थी। माता-पिता की दी हुई सम्पत्ति में उनका पूरा अधिकार रहता था और पुत्र के न होने पर पुत्री ही पिता के धन की अधिकारिणी होती थी।

आय-व्यय—सबसे अधिक आय भूमिकर से होती थी जो उपज का $\frac{1}{6}$ होता था। इसके अतिरिक्त देशी माल पर चुंगी तथा बाहर से आनेवाले माल पर बन्दरगाहों पर आयात-कर (Customs or Import Duties) लगाये जाते थे। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटे-छोटे कर होते थे। राजकीय आय चार भागों में व्यय की जाती थी। एक भाग राष्ट्रीय कार्यों के लिये, दूसरा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिये, तीसरा शिक्षा-विभाग के लिये और चौथा धार्मिक सम्प्रदायों को सहायता देने के लिए होता था। पहले भाग में शासन-प्रबन्ध तथा सेना इत्यादि का व्यय सम्मिलित था। राज्य की ओर से जनता के लिये सार्वजनिक वास्तु अर्थात् धर्मशालाएँ, कूएँ, औषधालय, सड़कें इत्यादि बनवाई जाती थीं और शिल्पशालयों को विशेष सहायता दी जाती थी। उस समय सेना का प्रबन्ध भी अच्छा था। राजा लोग मुख्यतया सारी सेना अपने अधिकार में रखते थे जिसकी संख्या बहुत अधिक होती थी। सेना के प्रायः चार अंग होते थे ; यथा—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल। परन्तु इनमें घुड़सवार सेना मुख्य समझी जाती थी। जो राज्य समुद्र-तट पर होते थे अथवा जिनमें बड़ी-बड़ी नदियाँ होती थीं, वे नौ-सेना भी रखते थे। सैनिकों को वेतन नकद मिलता था। जागीर की प्रथा उस समय बहुत कम थी। स्थायी सेना (Standing Army) की संख्या बहुत काफ़ी होती थी, परन्तु अवसर पड़ने पर अस्थायी सेना (Temporary Army) भी तैयार कर ली जाती थी।

राजनीतिक स्थिति तथा शासन-पद्धति में परिवर्तन—उपर्युक्त शासन-व्यवस्था राजपूत काल के प्रारम्भ में ही थी। पीछे से उसमें धीरे-धीरे परिवर्तन होते गये। इस परिवर्तन का मुख्य चिह्न जागीरदारी की प्रथा (Feudal System) का प्रादुर्भाव था। किन कारणों से इस प्रथा का जन्म और विकास हुआ, इसका विवेचन इस स्थान पर करना कठिन है। परन्तु इस प्रथा का परिणाम यह हुआ कि भारत के राजनीतिक संघटन में बहुत निर्बलता आ गई। राजाओं ने शासन का कार्य तथा सेना का प्रबन्ध जागीरदारों को सौंप दिया। समाज का ढाँचा बदल गया। सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय आदर्शों एवं आकांक्षाओं के स्थान पर संकुचित, अदूरदर्शी और वैयक्तिक आदर-मान के आदर्श सामने आ गये। इस परिवर्तन के बाद प्रत्येक राजपूत राजा अथवा सैनिक वैयक्तिक प्रतिष्ठा के आदर्श और उद्देश्य से सब कार्य करता था। इसी को वह परम धर्म मानता था। युद्ध भी इसी उद्देश्य से होता था, क्योंकि उसका ध्येय पारलौकिक था। ऐहिक सफलता तथा उन्नति और जन-सेवा उसके लिये गौण थी। हिन्दू समाज का संघटन इसी सामाजिक दृढ़ता के अभाव के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण तभी से जर्जर हो गया है और यही उसकी विचारशून्यता तथा पतन का मुख्य कारण है।

आर्थिक-स्थिति—भारतवर्ष की प्रायः जनता का व्यवसाय कृषि था। राजा और सामन्तगण कृषकों के रक्षण-पोषण तथा सुभीते का विशेष ध्यान रखते थे। सिंचाई तालाबों, कूओं और नहरों से होती थीं। तालाब बनवाने की प्रथा भारत में अति प्राचीन काल से चली आई है। प्रत्येक नगर अथवा ग्राम में तालाब या कुण्ड अवश्य होता था। उसी के किनारे मेले इत्यादि भी लगते थे। इनके अतिरिक्त राजा लोग बड़ी-बड़ी झीलें बनवाते थे। बड़े-बड़े बाँध बनाकर पहाड़ों के बीच की भूमि को एक झील के रूप में परिवर्तित कर देते थे। फिर उसमें वर्षा तथा आस-पास की नदियों का पानी भर कर इकट्ठा हो जाता था। इस प्रकार की बहुत सी झीलें अब भी राजपूताने में वर्तमान हैं। धारा नगरी के राजा भोज ने इसी विधि से ढाई सौ वर्ग मील परिमाण की एक झील बनवाई थी। नहरों के बनाने का भी बहुत रवाज था जैसा कि राज-तरंगिणी आदि ग्रन्थों से पता चलता है।

भारत का व्यापार भी उतना ही उन्नत था। बड़े बड़े नगर व्यापार के केन्द्र थे जिनमें अनेक धनाढ्य व्यापारी रहते थे और केवल भारतीय नगरों से ही नहीं, प्रत्युत अन्य देशों से भी व्यापार करते थे। पश्चिमी तट के बन्दरगाह भड़ौच (भृगुकच्छ) इत्यादि के द्वारा फ़ारस, मिस्र आदि देशों को माल जाता था। जल और स्थल दोनों मार्गों से व्यापार होता था। भारत का व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम में समस्त योरप और पूर्व में जावा, सुमात्रा, चीन आदि देशों से था। विशेष कर यहाँ की छींट, मलमल, रेशम और दूसरे अनेक प्रकार के वस्त्र, मोती, हीरे, रत्न, हाथी-दाँत, मसाले आदि आदि वस्तुएँ बाहर जाती थीं।

भारत में धातुओं का व्यवसाय भी अत्यन्त उन्नत था। भारतीय लोग कच्चे लोहे को गलाकर बहुत बढ़िया फ़ौलाद बनाना जानते थे। कुतुब मीनार के पासवाला लोहे का विशाल स्तम्भ इतना भारी है कि उसे आजकल का कोई कारखाना नहीं बना सकता। यह कम से कम १५०० वर्ष पुराना है और इतने समय तक खुली हवा और वर्षा में रहने पर भी उस पर जंग का नाम-निशान नहीं। इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी धातुओं की बनी हुई अद्भुत वस्तुएँ मिलती हैं। बहुमूल्य धातुओं (जैसे सोने, चाँदी) के तरह तरह के पात्र और रत्न-जटित आभूषण बनते थे। भारतवासियों को आभूषण पहनने का बहुत शौक था। धातुओं की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ भी बनाई जाती थीं। इसके अतिरिक्त हाथी-दाँत, काँच, सीप इत्यादि की चूड़ियाँ और अन्य वस्तुएँ भी अत्यन्त उत्तम बनती थीं।

साम्पत्तिक विभाजन—उस समय उद्योग-धन्धे पूँजीदारों की बड़ी-बड़ी कलों द्वारा नहीं चलते थे। प्रत्येक उद्योगी वर्ग की अलग अलग गण-संस्था (Guild) होती थी। भिन्न-भिन्न उद्योग प्रायः वंशानुक्रमिक हो जाते थे, इस कारण उनमें उन्नति भी बहुत होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उस समय की सामान्य आर्थिक परिस्थिति को देखने से पता चलता है कि देश धन-धान्य से भरपूर था। मुसलमान आक्रमणकारियों को आकृष्ट करनेवाली देश की सम्पत्ति ही थी। एक एक मन्दिर में करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति जमा थी जिसे सैकड़ों वर्षों तक बाहरी आक्रमणकारियों ने लूटा, जिसका ठीक ठीक अनुमान करना भी असम्भव है। इस प्रकार उस समय देश की आर्थिक स्थिति संसार की जातियों में समुन्नत थी।

४

साहित्य, कला और शिल्प (सन् ६००–१२०० ई०)

साहित्य—संस्कृत साहित्य का पुनरुद्धार गुप्तकाल से शुरू हुआ था और उसका प्रवाह अविकल रूप से राजपूत युग में चलता रहा। इस युग में मुख्यतया काव्य-ग्रन्थों तथा ललित कलाओं की बहुत उन्नति हुई, क्योंकि जनता का झुकाव भक्ति मार्ग की ओर था। परन्तु प्राचीन आर्य साहित्य के समान सर्वोच्च श्रेणी के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक साहित्य की कोई वृद्धि न हुई। वेदों, ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों तथा दर्शनों पर अनेक धर्मगुरुओं और विद्वानों ने बड़ी बड़ी टीकाएँ कीं और उन्हीं के आधार पर जैन तथा बौद्ध विद्वानों ने भी अपने अपने दर्शन को अत्यन्त उच्च श्रेणी तक पहुँचाया। इस काल में संस्कृत भाषा में लालित्य लाने का विशेष प्रयत्न हुआ। उसका शब्द-भाण्डार बहुत बढ़ा और भिन्न भिन्न लेखन-शैलियाँ आविष्कृत हुईं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, यह विकास बहुत पहले से प्रारम्भ हो चुका था और इसका पथ-प्रदर्शन कवि-कुल-चूड़ामणि कालिदास, भास और अश्वघोष आदि अपने काव्यों द्वारा कर चुके थे। यह उन्नति सातवीं सदी के बाद भी बराबर होती रही। इस समय भारवि-कृत किरातार्जुनीय (सातवीं सदी) भट्टि-काव्य, शिशुपाल-वध आदि अनेक उच्च कोटि के ग्रंथ लिखे गये। काव्य में भिन्न-भिन्न रस-प्रधान ग्रंथ लिखे गये। बारहवीं शताब्दी का जयदेव-कृत गीत-गोविन्द गेय काव्य (Lyric Poetry) का उत्कृष्ट ग्रंथ है। गीत-गोविन्द के अनुपम अनुप्रास और भाषा-लालित्य तथा माधुर्य कथनातीत हैं। पद्य-काव्य के अतिरिक्त गद्य में भी अनेक अत्यन्त सुन्दर ग्रंथ लिखे गये, जैसे दण्डी कवि का दशकुमार-चरित और बाण के हर्ष-चरित तथा कादम्बरी तथा धनपाल की तिलक-मञ्जरी। इस काल में मुद्राराक्षस, मृच्छकटिक, महाराज हर्षवर्द्धन रचित रत्नावली और प्रियदर्शिका, चौहान राजा बीसलदेव रचित हरिकेलि नाटक, सोमेश्वर रचित ललित-विग्रहराज-नाटक इत्यादि इत्यादि अनेक ग्रन्थ लिखे गये तथा ध्वनि, अलंकार, छन्द शास्त्र आदि साहित्य के अन्यान्य अंगों पर भी बहुत से ग्रन्थ बने।

दार्शनिक साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन षट्-दर्शनों के आधार पर अनेक सम्प्रदाय उत्पन्न हुए और बहुत से धर्माचार्यों ने भिन्न भिन्न टीकाएँ लिखकर नये नये विचार उपस्थित किये। शंकर का द्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, जैनियों का स्याद्-वाद, चार्वाक का नास्तिकवाद तथा छोटे छोटे अनेक सम्प्रदाय इस समय में प्रचलित हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विज्ञान तत्त्व की शाखाओं में ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद और काम-शास्त्र की अत्यन्त उन्नति हुई। पाँचवीं शताब्दी के अन्त में ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् वराहमिहिर ने प्राचीन ज्योतिष के सिद्धान्तों का अपने ग्रन्थों में समावेश किया। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त और खण्डखाद्य लिखे। दसवीं शताब्दी के अन्त में पृथुदक स्वामी ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की टीका लिखी। बारहवीं शताब्दी के अन्त में प्रसिद्ध ज्योतिषी महेश्वर के पुत्र भास्कराचार्य ने ज्योतिष शास्त्र पर सूर्य-सिद्धान्त, सिद्धान्त-शिरोमणि इत्यादि कई ग्रंथ लिखे। सिद्धान्त-शिरोमणि एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है और इसके लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणिताध्याय और गोलाध्याय नाम के चार भाग हैं। पहले दो गणित सम्बन्धी और पिछले दो ज्योतिष सम्बन्धी हैं। पृथिवी के गोलाकार होने, भूभ्रमण (Revolution of the Earth) और आकर्षण (Theory of Gravitation)* के सिद्धान्त भास्कराचार्य ने बारहवीं शताब्दी में ही भली भाँति प्रतिपादित कर दिये थे। फलित ज्योतिष का भी इस समय में अत्यन्त विकास हुआ। वराहमिहिर की बृहत् संहिता फलित ज्योतिष का मुख्य ग्रन्थ है। इसके आधार पर बाद में बहुत से ग्रन्थ लिखे गये। ८ वीं सदी में अरब के खलीफ़ाओं ने ज्योतिष के ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद कराये और अन्य विद्याओं के साथ यह विद्या भी भारत से सीखी।

गणित में अंकगणित और बीजगणित की भी इस काल में बहुत उन्नति हुई। १ से ९ तक और शून्य का अंक-क्रम भारत में ही आविष्कृत हुआ और यहीं से यह संख्या-प्रणाली समस्त पाश्चात्य देशों ने सीखी। बीजगणित के सिद्धान्त भी यहीं प्रतिपादित हुए थे। इस काल के ज्योतिष शास्त्रों के उपर्युक्त रचयिताओं ने ही गणित के सिद्धान्त लिखे। इनमें गणित के आठों मूल नियम—योग, ऋण, गुणा, भाग, वर्गीकरण, घनीकरण, वर्गमूल और घनमूल वर्णित हैं। बीजगणित, रेखागणित और त्रिकोणमिति की भी इस काल में अत्यन्त उन्नति हुई और प्राचीन काल के यूनानियों की तरह यूरोप के विद्वानों ने भी यहीं से ये सब विद्याएँ सीखीं।

प्राचीन काल में तो आयुर्वेद की अत्यन्त उन्नति हो ही चुकी थी। मध्य काल में भी वाग्भट्ट का अष्टांग संग्रह (७ वीं सदी) और माधवकर का माधव निदान (९ वीं सदी) आदि प्रामाणिक ग्रन्थ रचे गये। सन् १०६० में बंगाल के चक्रपाणि-दत्त ने सुश्रुत और चरक की टीका तथा चिकित्सासार संग्रह लिखे। सन् १२०० ई० के लगभग शार्ंगधर ने शार्ंगधर-संहिता लिखी। इन ग्रन्थों में चिकित्सा शास्त्र, शरीर विज्ञान, पदार्थ और औषध विज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं की पूरी तरह से व्याख्या की गई है। शल्य शास्त्र की भी यथेष्ट उन्नति इस काल में हुई थी। सर्प-विद्या भारत में बहुत ही उन्नत थी। पशुचिकित्सा पर तो बहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे जिनमें घोड़ों

---

* आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हाथियों आदि के रोगों की चिकित्सा ही नहीं, वरन् उनकी पहचान इत्यादि भी बड़े विस्तार से वर्णित है। जिस प्रकार मनुष्यों के लिये चिकित्सालय बनते थे, उसी प्रकार पशुओं के लिये भी बनते थे।

इन विद्याओं के अतिरिक्त काम शास्त्र, संगीत, नृत्य आदि पर भी बहुत विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ इस काल में लिखे गये। देवगिरि के यादव राजा सिंघण के संगीताचार्य शार्ङ्गदेव ने संगीतरत्नाकर ग्रन्थ में संगीत कला का इतिहास भी लिखा था। उसी में शुद्ध सात और विकृत बारह स्वर, वाद्यादि के चार भेद, स्वरों की श्रुतियाँ और जातियाँ, ग्राम, मूर्च्छना, प्रस्तार, राग, गायन और उसके गुण-दोष, ताल, नर्तन और तब तक प्रचलित विद्याओं के नाम आदि का भी वर्णन है। वास्तु कला पर भी राजा भोज आदि ने बहुत से बड़े बड़े ग्रन्थ इस काल में लिखे जो अब तक प्राप्त हैं।

कला और शिल्प—भारतीय कला के अन्यान्य अंगों की भी इस काल में बहुत अधिक उन्नति हुई। इस देश में कला का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक रहा है। अनन्त सत्य की प्राप्ति ही उसका हेतु है। अनन्त विश्वव्यापी नियमों को सान्त प्राकृतिक रचनाओं द्वारा व्यक्त करना उसका ध्येय है। इसी कारण भारतीय कला चाहे जिस रूपान्तर में प्रकट हो, सांकेतिक है, आनुकृतिक नहीं। भारत की प्रत्येक कला में ये संकेत विद्यमान हैं।

तक्षण कला का प्राचीन (बौद्ध कालीन) भारत में अत्यन्त विकास हुआ था। उस समय अनेक स्थानों पर चट्टानों को काट-काट कर ऐसे विहार, चैत्य एवं मन्दिर बनाये गये थे जो अब भी देखनेवालों को आश्चर्य-चकित कर देते हैं। सातवीं और आठवीं सदी में भी अजन्ता इत्यादि स्थानों में इस प्रकार की गुफाओं में चैत्य और विहार बने जो इस कला के सर्वोत्तम नमूने हैं। परन्तु इस काल में वास्तु कला का अनुपम विकास हुआ। जैनियों और वेदधर्मानुयायियों के सहस्रों मन्दिर इस अवकाश में बने जो देश के उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक फैले हुए हैं और जिनकी कला सुन्दरता एवं दृढ़ता के गुणों के समान रूप से मिश्रित होने के कारण अद्वितीय हो गई है। देश-भेद के अनुसार ये मन्दिर भी भिन्न भिन्न शैलियों के हैं। जैन तथा ब्राह्मण मन्दिरों की रचना-शैली में कोई भेद नहीं है; परन्तु उनके चिह्न तथा विशेषताएँ पृथक्-पृथक् होने के कारण उनकी पहचान होती है। मन्दिरों में मुख्य दो भाग होते हैं। एक गर्भगृह या देवालय जिसमें मुख्य देवता की प्रतिमा रहती है। इसकी छत प्रायः शिखर-रूप में बनी होती है जिसकी चोटी पर कमल या आमलक रहता है। इसी के ऊपर कलश होता है और वहीं ध्वज-दण्ड भी रहता है। देवालय के आगे मण्डप या जगमोहन होता है जिसकी छत प्रायः गोल और स्तूप के समान होती है। जैन मन्दिरों के चारों ओर छोटी-छोटी देव-कुलिकाएँ बनी होती हैं जिनमें तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ स्थापित रहती हैं। ब्राह्मण मन्दिरों के कोनों पर कभी-कभी चार छोटे मन्दिर

* पाँच देवता ये हैं—विष्णु, शिव, रुद्र, देवी और सूर्य।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी होते हैं जिनमें शेष चार देवताओं * की प्रतिमाएँ स्थापित रहती हैं। ऐसे मन्दिरों को पंचायतन कहते हैं और यह पंचरत्न का सिद्धान्त कहलाता है। द्रविड़ शैली के मन्दिरों में देवस्थान के ऊपर चतुरस्र आकार का कई मंजिलों का मण्डप होता है जो ऊपर की ओर छोटा होता जाता है। देवस्थान के आगे छोटे या बड़े कई स्तम्भोंवाले विस्तृत भवन होते हैं। मन्दिर के चारों ओर एक प्रकार के विहार से घिरा हुआ बड़ा मैदान होता है। इसके द्वारों पर ऊँचे-ऊँचे गोपुर होते हैं। आर्य शैली के मन्दिर प्रायः उत्तर में पाये जाते हैं और द्रविड़ शैली के दक्षिण तथा वृन्दाबन में। आर्य शैली के मन्दिर खजुराहो, भुवनेश्वर (उड़ीसा), चित्तौड़, गवालियर, चन्द्रावती, पालीताना, आबू इत्यादि स्थानों में हैं। आबू के मन्दिरों की तक्षण कला का जोड़ संसार भर की वास्तु और तक्षण कला में नहीं मिल सकता। द्रविड़ शैली के मन्दिर वृन्दाबन के अतिरिक्त इलोरा, तंजौर, श्रीरंगम् इत्यादि स्थानों में विद्यमान हैं।

इस काल में चित्रकला का विकास भी दूसरी कलाओं से कम नहीं हुआ। अजन्ता आदि की गुफाओं में चट्टानों पर बने हुए इस काल के जो चित्र अब तक विद्यमान हैं, वे उस समय की उन्नति के सूचक हैं। काग़ज़ या वस्त्र इत्यादि पर बने हुए चित्र इतने दिनों तक रह नहीं सकते थे। तक्षण कला के समान इन चित्रों से भी तत्कालीन इतिहास और सभ्यता के अनेक अंगों का पता लगता है। अन्य कलाओं की भाँति भारतीय चित्र कला का भी विशेष गुण यह है कि यह रूप-प्रधान होने के बदले भाव-प्रधान है। आजकल अजन्ता की भाव-प्रधान कला ही सर्वप्रिय हो रही है और अन्य सम्प्रदायोंवाले अपनी कलाओं को इसी अजन्ता की कला के रूप में ढाल रहे हैं।

तीसरा अध्याय

१

इस्लाम, भारत में प्रवेश करने से पहले

इस्लाम धर्म के जन्म के थोड़े दिन बाद ही उसका भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा तक विस्तार हो गया। परन्तु उस समय केवल सिंध में कुछ दिनों तक मुस्लिम राज्य स्थापित होकर समाप्त हो गया। फिर कई शताब्दी बाद दूसरे मार्ग से इस्लाम भारत में आया। किन कारणों से इस्लाम का प्रवेश सिंध के मार्ग से होने से रुक गया और फिर उत्तर-पश्चिम से किन कारणों से उसका प्रवेश हुआ, तथा उस समय उसका स्वरूप कैसा था, उसकी क्या भावनाएँ थीं एवं क्या उद्देश्य थे और भारतीय सभ्यता के साथ उनका संघर्ष होने पर क्या परिणाम हुए, इन सब बातों को भली भाँति समझाने के लिये यह आवश्यक है कि हम पहले संक्षेप में तत्कालीन इस्लाम का कुछ वर्णन करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन् ६२२ ई० में मुहम्मद को आत्म-रक्षा के लिये मक्के से भाग कर मदीने जाना पड़ा और अपने विरोधियों का दमन करने के लिये सेना तैयार करनी पड़ी। थोड़े ही दिनों में मुहम्मद ने प्रायः सारे अरब पर अपना अधिकार जमा लिया। फिरक़ों में बँटे हुए, परस्पर लड़नेवाले अरबों को उसने एकता के सूत्र में बाँध दिया और उनको एक धर्म के जोश से भर दिया। धर्म की रक्षा तथा प्रसार और उसके अनुयायियों के भरण-पोषण की आवश्यकता ने सैनिक बल को जन्म दिया। उसका नेता मुहम्मद हुआ। मुहम्मद और उसके चार उत्तराधिकारी (खलीफ़ा) * अपने धर्म को फैलाने के सच्चे जोश से भरे हुए थे। कोई सांसारिक साम्राज्य स्थापित करने के विचार अथवा आकांक्षा से वे लोग प्रेरित नहीं हुए थे। उनका जीवन अत्यन्त सादा और फ़कीरों का सा था। एक सदी के अन्दर उन्हीं के उत्तराधिकारी पूरी तरह से राजाओं के समान रहने सहने और व्यय करने लगे। पहले खलीफ़ाओं ने अपने सारे जीवन में उतना धन व्यय न किया था जितना पिछले खलीफ़ा एक-एक दिन में व्यय कर डालते थे। सन् ६५६ में उस्मान के मरने पर उसके नियोजित दमिश्क़ के शासक मुआविया ने स्वतन्त्र रूप से राज्य करना आरम्भ कर दिया और अली को खलीफ़ा स्वीकार न किया। थोड़े दिन बाद अली और उसके पुत्रों का वध हो जाने पर अली का परिवार निर्बल हो गया और मुआविया के वंशज ही मुस्लिम साम्राज्य के खलीफ़ा मान लिये गये। अब ये लोग वास्तविक बादशाहों के समान काम करने लगे और हर प्रकार की दरबारी शान-शौकत रखने लगे। धर्म्म-प्रचार के स्थान पर उनका उद्देश्य अपने परिवारों की शक्ति और अपने राज्य को बढ़ाना ही रह गया। लगभग सौ वर्षों के बाद अली के पक्षवालों को अवसर मिला और उमैया वंश का नाश हुआ। इन्होंने अपनी राजधानी बग़दाद में रखी। इस समय तक फ़ारस के पूरब तक इस्लाम फैल चुका था। बग़दाद के खलीफ़ाओं पर ईरानी सभ्यता और संस्कृति की गहरी छाप पड़ी। उनका दरबार शान-शौकत और सजधज में अपना सानी न रखता था। वे बड़े विद्या-व्यसनी तथा विद्वानों के पोषक और रक्षक थे। उन्होंने हज़ारों भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद अरबी में कराये। तलवार के बल से ईरान (फ़ारस) मुसलमान तो हो गया, परन्तु उसकी प्राचीन संस्कृति अमिट थी जिसने शीघ्र ही अपने विजेताओं पर अपना गहरा सिक्का जमा दिया। इधर खलीफ़ा लोग भोग-विलास में मस्त होने लगे। परिणाम यह हुआ कि नवीं सदी में ही वे खिलाफ़त के विस्तृत साम्राज्य पर अपना अधिकार क़ायम न रख सके। यद्यपि नाम के लिए खलीफ़ा सारे मुस्लिम संसार का नेता तथा प्रमुख माना जाता था, तथापि प्रत्येक इस्लामी देश में सूबेदारों ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। फ़ारस में भी इसी प्रकार राजवंश स्थापित हुए। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सामानी वंश था जिसकी स्थापना अमीर इस्माइल

---

* अबू बक्र सन् ६३२–३४; उमर सन् ६३४–४४; उस्मान सन् ६४४–५६; अली सन् ६५६–६१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामानी ने सन् ९११ में बुखारा में की थी। फ़ारस के ये राजा संस्कृति में तो बहुत बढ़े थे और राज-काज के सामान्य कार्यों में भी बड़े दक्ष थे, परन्तु सैनिक गुणों का इनमें अभाव था। ९वीं शताब्दी के अन्त तक मध्य एशिया की तुर्क, तातार इत्यादि जातियाँ भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुकी थीं। इनमें तुर्क लोग बड़े वीर सैनिक और विजेता होते थे। फ़ारस के बादशाहों की सेना में तुर्क सरदार ही सेनापति थे। उनका सारा सैन्य-बल तुर्कों पर आश्रित था। सदियों से तुर्क सैनिक और योद्धा फ़ारस के दरबारों में नौकरी करते करते उनकी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हुए बिना न रह सकते थे। प्राचीन फ़ारस का राजनीतिक आदर्श साम्राज्यवाद था। अपने बड़े साम्राज्यों की गाथाएँ वे लोग शाहनामे इत्यादि महाकाव्यों में पढ़ते थे। इन महाकाव्यों और उनके वीर चरित्रों, सोहराब, रुस्तम, नौशेरवाँ, दारा और कैकाऊस आदि सम्राटों के नाम का फ़ारस की जनता उतना ही आदर करती थी जितना अरब के मुसलमान कुरान और नबी का, अथवा भारतवासी रामायण, महाभारत तथा राम-कृष्ण का आदर करते हैं। फारसवालों के लिये अपने उन पूर्वजों के कारनामे तथा उनके साम्राज्य आदर्शरूप थे। मुसलमान होने पर भी उनके यही आदर्श बने रहे। तुर्क सभी योद्धा शनैः शनैः फ़ारस के आदर्शों, अर्थात् साम्राज्य-वाद के रंग में रँग गये और साथ ही फ़ारस के उत्कृष्ट साहित्य और कला के प्रेमी हो गये। इस प्रकार इन लोगों के चरित्र पर तीन प्रकार की छाप लगी। वे मुसलमान धर्म के नये अनुयायी थे, इसलिए उसके प्रचार और प्रसार के लिये बहुत उत्सुक थे और इसी में अपनी कीर्त्ति मानते थे। युद्ध और लूट-मार करना उनका पैतृक कार्य्य था। इसके साथ उनमें फारस के साहित्य के ज्ञान से साम्राज्य स्थापित करने की आकांक्षा उत्पन्न हो गई। इसका सर्वोत्तम उदाहरण महमूद ग़ज़नवी था। उसके पूर्वज फ़ारस के पूर्वोत्तर में खुरासानी बादशाहत के सरहदी सरदार थे। जिन मुसलमानों ने अन्त में भारत को जीता, वे यही भाव, आदर्श और चरित्र साथ लेकर आये थे।

२

इस्लाम का भारत में शान्तिपूर्वक प्रवेश

अरबों का भारतवर्ष से बहुत पुराना सम्बन्ध था। प्राचीन काल में जब समुद्री मार्ग से भारत और एशिया के पश्चिमी देशों में व्यापार होता था, उस समय वे हिन्द महासागर की किश्तियों के केवट थे। हिन्दुस्तान के पश्चिमी तट पर खम्बात (Cambay) से लेकर दक्षिण के चोल, कल्याण, सोपारा आदि स्थानों तक में इनकी बस्तियाँ थीं। १४वीं सदी में पुर्तगालियों के आने तक इस तट पर अरबी नाविकों का व्यापार खूब चलता रहा। सातवीं सदी में अरब की सब जातियाँ एकता के सूत्र में बँध गईं और तब से उन्होंने देश-देशान्तरों को विजय करना आरम्भ किया। इससे उत्तेजित होकर अरब के व्यापारियों ने हिन्द महासागर का सारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापार अपने अधिकार में कर लिया। ७वीं सदी में इधर तो खलीफ़ाओं ने हिन्द को सिन्ध की ओर से जीतने की तैयारियाँ शुरू कीं, उधर अरबी सौदागरों ने मलाबार तट पर अपने धर्म का प्रचार शुरू किया। वे लोग हिन्दुस्तानी औरतों से विवाह करते और इस प्रकार भारत में मुस्लिम संख्या बढ़ाते थे। इस मामले में उनको हिन्दू राजाओं, विशेषतया वल्लभी वंश और कालीकट के जेमोरिन से बहुत सहायता मिली। इनके प्रोत्साहन से बहुत से मुस्लिम व्यापारी खम्भात, कालीकट और कोलम आदि स्थानों में बस गये। उनको केवल अपनी मस्जिदें बनाने की ही स्वतन्त्रता नहीं दी गई, बल्कि वल्लभी राजा ने स्वयं उनके लिये मस्जिदें बनवाईं। इन्हीं लोगों की औलाद में से कोंकण की नटिया जाति और मलाबार की मोपला जाति है। मलाबार तट पर आठवीं सदी में इनके उपनिवेश बढ़ने शुरू हुए। जेमोरिन ने अपने जहाजों के लिये केवट प्राप्त करने के उद्देश्य से कालीकट की नीच जातियों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने की प्रेरणा की। इन कारणों से यथेष्ट संख्या में हिन्दुस्तानी लोग मुसलमान हो गये। फिर खलीफ़ा लोग प्रचारकों को भेजने लगे। १५वीं सदी में तैमूर के वंशज शाहरुख ने अब्दुर्रज़्ज़ाक़ (सन् १४४१) को कालीकट इसी अभिप्राय से भेजा था। इस प्रकार दक्षिण भारत में व्यापारियों और प्रचारकों द्वारा इस्लाम का प्रचार हुआ।

शान्तिपूर्वक धर्म-प्रचार में सब से महत्वपूर्ण कार्य मुसलमान फ़क़ीरों और दर्वेशों ने किया। यह कार्य ११वीं सदी से शुरू हो गया था। सन् १००५ में शेख इस्माईल बुखारा से भारत में आया और उसने अपने प्रचार से सैकड़ों को मुसलमान बनाया। सन् १०६७ में अब्दुल्लाह यमनी ने गुजरात में इसी प्रकार प्रचार किया। इसे बोहरे लोग अपना पहला प्रचारक मानते हैं। १२वीं सदी के शुरू में खोजों के प्रचारक नूर सतागर ईरानी ने इसी प्रकार गुजरात की नीच जातियों को मुसलमान बनाया। तेरहवीं सदी में सैयद जलालउद्दीन बुखारी और सैयद अहमद कबीर इत्यादि ने सिंध में उच के पास बहुतों को मुसलमान बनाया। इन सब में प्रसिद्ध ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती थे जो तेरहवीं सदी के आरम्भ में सीस्तान से आकर अजमेर में बसे थे। कहा जाता है कि अजमेर जाते समय देहली में उन्होंने ७०० मनुष्यों को मुसलमान बनाया। सन् १२३६ में अजमेर में उनकी मृत्यु हुई। उनकी क़ब्र को आज तक लाखों मुसलमान पूजते हैं और बहुत पवित्र मानते हैं। इसी प्रकार १४वीं सदी के शुरू में पानीपत में बूअली क़लन्दर ने प्रचार किया। ये प्रचारक मुसलमान विजेताओं के साथ आगे बढ़ते जाते थे। इन दो सदियों में ये प्रचारक पंजाब, काश्मीर, दक्षिण, बंगाल आदि देशों के कोने कोने में फैल गये थे। चिश्ती के शिष्य भी बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भी धर्म-प्रचार का बहुत कार्य किया। उनके शिष्य-परम्परा में, उनके शिष्य शेख फ़रीदउद्दीन गंजशकर, इनके शिष्य, ख्वाजा। निज़ामुद्दीन औलिया (१३वीं व १४वीं सदी) ख्वाजा कुतुबउद्दीन काकी (१३वीं सदी), शेख अलाउद्दीन अली अहमद साबिर पीरान कालेरवाले बहुत प्रसिद्ध हैं। १६वीं सदी में इन लोगों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचार मुग़लों की सहिष्णुता की नीति के कारण कुछ हलका पड़ गया। तेरहवीं और चौदहवीं सदी में इन लोगों की सफलता के कई कारण थे; हिन्दुओं की अत्यन्त संकीर्ण प्रथाओं के कारण बहुत से लोग, जो किसी कारण से जाति से निकाल दिये जाते थे, मुसलमान बन जाते थे। छोटी जातियों के लोग हिन्दुओं का तिरस्कार सहन न कर सकने के कारण इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेते थे। यदि कोई मुसलमान औरत या मर्द हिन्दू मर्द या औरत से ब्याह कर लेता था तो उसे भी मुसलमान होना पड़ता था। बंगाल में वे नीच जातियाँ, जिनमें धार्मिक संघटन का अभाव था, जैसे मछेरे, शिकारी, चिड़ीमार, लुटेरे इत्यादि, आसानी से मुसलमान हो गये। इस प्रकार इस्लाम का प्रचार केवल तलवार के बल पर ही नहीं, प्रत्युत् शान्तिमय उपायों से भी हुआ। इसके साथ ही धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में मुसलमान शासकों और विजेताओं की जो नीति रही, उसका वर्णन उनके प्रकरण में किया जायगा। इस्लाम के बलात् और शान्ति-पूर्वक धर्म-प्रचार का यह प्रयास अधिक सफल न हुआ। एशिया के अन्य देशों, ईरान और मध्य एशिया, की भाँति यहाँ मुसलमान समस्त जनता को मुसलमान बनाने में कृतकार्य न हो सके। इसका कारण यही था कि यहाँ की संस्कृति, साहित्य और सामाजिक संघटन इस प्रकार का था जिस पर किसी मत का प्रभाव नहीं पड़ सकता था। अन्य आक्रान्ताओं की भाँति मुसलमान भी यहाँ आकर श्रान्त हो गये और धीरे धीरे उन पर उलटे यहीं के दर्शन, विज्ञान और संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। इस कारण भारत में या तो नीच जातियाँ मुसलमान हुईं या वे लोग जो हिन्दुओं के संकीर्ण व्यवहार से दुःखी हो जाते थे अथवा वे जो बलात् मुसलमान बना लिये जाते थे। ऐसे लोगों की संख्या अत्यन्त न्यून है जो हार्दिक विश्वास और श्रद्धा-पूर्वक मुसलमान हुए हों।

हमारे इतिहास की एक बड़ी विकट समस्या है जिसका कतिपय निर्देश करना यहाँ पर आवश्यक है। प्रायः सर्वमान्य विश्वास है कि जितनी बाहरी जातियाँ हमारे देश में आईं वे सब आर्य (हिन्दू) धर्म की अनुयायी बन गईं और हिन्दू जाति में समाकर एक हो गईं। उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं सभ्यता का नाम-निशान तक बाकी न रहा। किन्तु केवल मुसलमान जाति ही ऐसी है जो अपने धर्म एवं संस्कृति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र एवं पृथक् रख पाई है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि केवल इस्लाम धर्म ही हिन्दु धर्म और सभ्यता से इतना भिन्न एवं विपरीत तथा इतना सुदृढ़ और परिपक्व था कि वह हिन्दू धर्म के सागर में समा नहीं सकता था।

इस विषय के सम्बन्ध में यह धारणा इतनी सर्वमान्य सी हो गई है कि इसके ऊपर फिर से विचार करना भी व्यर्थ सा ही समझा जाता है। परन्तु भारतीय संस्कृति के इतिहास को निष्पक्ष एवं गहरी दृष्टि से अध्ययन करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि हमारी उपर्युक्त धारणा भी उतनी ही निर्मूल है जितने हमारे अन्य अनेक अंधविश्वास। इस समस्या की सविस्तार व्याख्या करने के लिये तो इस छोटे से ग्रन्थ में अवकाश नहीं है परन्तु उसके मुख्य मुख्य अंगों का निर्देश किया जा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सकता है। वास्तविक बात यह है कि जिस घड़ी मुसलमान विजेताओं का प्रवेश हमारे देश में हुआ था, उस समय हमारी जाति व धर्म एवं संस्कृति की रूप-रेखा एवं उसकी आत्मा बिलकुल परिवर्त्तित हो चुकी थी। इस परिवर्त्तन का सबसे प्रत्यक्ष प्रमाण यह था और है कि उस समय इस जाति और धर्म के अन्दर से जीवन, शक्ति, एवं विवेक सर्वथा नष्ट हो चुके थे। वही जाति और धर्म जीवित, जाग्रत एवं शक्ति-सम्पन्न कहला सकता है जिसमें दूसरों को निगलने, हज़म करने और अपने रक्त, मांस, मज्जा में मिश्रित करके अपने शरीर को पुष्ट करने की शक्ति और क्षमता हो। यह गुण जो प्रायः गुप्त काल तक हमारी जाति के अन्दर था, नवीन ब्राह्मण धर्म के अन्ध-विश्वासों के प्रचार के कारण सर्वथा नष्ट हो गया। परिणाम यह हुआ कि वे राजपूत जिनके पूर्वज बाहरी जातियों को एक एक पीढ़ी के अन्दर हज़म करके अपना बना लेते थे, और हर प्रकार से उनको भारतीय सभ्यता का एक अंग बना लेते थे—वे ही राजपूत अब बाहरी लोगों के स्पर्श मात्र से घबराते थे और अटक (सिंधु नदी के किनारे पर) के पार जाने में उनका धर्म नष्ट हो जाता था।

केवल इतना ही नहीं, ये लोग ऊँच और नीच के नित नये भेद बना बनाकर द्विजेतर जातियों के साथ अमानुषिक व्यवहार कर रहे थे जिसका आतंक बढ़ता ही जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जो मुट्ठी भर मुसलमान बाहर से यहाँ आकर बसे थे उनको अपने अन्दर जज्ब कर लेना तो दूर, हिन्दू जाति के वे त्रस्त और पददलित अंग जिनको ब्राह्मण और उनके चेले राजपूत नीच मान कर उनका तिरस्कार करते थे, उस नये धर्म के अनुयायी बन गये जिसमें उनको सामाजिक क्षेत्र में पूरी समानता का स्थान मिलने की आशा एवं आश्वासन मिला और बहुत हद तक वास्तविक समानता प्राप्त हो कर अपने कुलीन द्विज हिन्दू शक्तिपतियों से छुटकारा मिला।

यहाँ पर यह याद रखना चाहिये कि जो मुसलमान बाहर से आकर बसे उनकी तादाद तो इतनी कम थी जैसे समुद्र में एक बूँद। ९० फ़ी सदी मुसलमान तो प्राचीन भारतीय हिन्दुओं में से ही थे। इन लोगों ने, प्रलोभन, भय या अपने ही भाइयों के अत्याचार के कारण धर्म भले ही बदल लिया हो, परन्तु उनका रहन-सहन, देवी-देवता में विश्वास, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक जीवन न तो बदल सकता था और न उन्होंने उसको बदलने का प्रयास किया। वे तो अपने मन, वचन, कर्म से भारतीय थे और ग्रामों में जहाँ फिरकेबन्दी की बृटिशकालीन बीमारी नहीं पहुँची है, अब तक भी वैसे ही हैं। वहाँ हिन्दू मुसलमान में कोई भेद नहीं है। यहाँ तक कि मुसलमानों के विवाह आदि पंडित से तिथि सुझवा कर होते हैं और मौलवी और पंडित दोनों विवाह कराते हैं।

जो थोड़े से मुसलमान बाहर से आये थे वे कोई सौ बरस के अन्दर इतने घुल मिल गये कि जब १६वीं सदी में मुग़लों के हमले हुए तो पठान और हिन्दुओं ने मिलकर उनका विरोध किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धार्मिक विश्वासों की बात यह है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों में एकेश्वरवाद है। परन्तु दोनों के ही सामान्य अनुयायी, मूर्त्तिपूजक हैं। कितने मुसलमान हैं जो शेख, सैय्यद, पीर, पैग़म्बर के मज़ारों को नहीं पूजते हैं। इस बात में हिन्दू मुसलमानों में कोई विशेष भेद नहीं रह गया था, यहाँ तक कि अनेक पीर पैग़म्बर तो ऐसे हैं जिन्हें हिन्दू मुसलमान दोनों ही पूजते हैं। हमारे इतिहास का तो यह निचोड़ है कि यदि नवीन ब्राह्मण धर्म की संकीर्ण नीति के गर्त्त में हिन्दू जाति न पड़ गई होती तो हिन्दू-मुस्लिम समस्या उपस्थित ही न होती।

चौथा अध्याय

इस्लाम का बलपूर्वक प्रवेश

सिंध में अरबी शासन

भारत में प्रवेश करने के मुख्य द्वार—भारतवर्ष या भरतखण्ड की सीमाओं को प्रकृति ने चारों ओर से सुरक्षित सा कर रखा है। उनकी आधी सीमा तो समुद्र ने घेर रखी है और बाकी आधी हिमालय पर्वत और उसकी शाखाओं से घिरी है। परन्तु इतना होते हुए भी बाहर के देशों और जातियों के साथ सदा से भारतवर्ष का सम्बन्ध रहा है। जो जातियाँ समुद्र-यात्रा में दक्ष थीं, वे भारत में समुद्र के मार्ग से आती थीं। इसके अतिरिक्त तीन स्थल मार्ग हैं जिनसे बाहरी जातियाँ यहाँ आती थीं। पहला रास्ता सिंध की तरफ़ से है जिधर से पश्चिम-एशियाई देशों के लोग मकरान होते हुए यहाँ आते थे। परन्तु यह रास्ता बहुत खुश्क और रेगिस्तानी है, इसलिये इसका प्रयोग भी बहुत कम होता था। सब से अधिक प्रयोग जिस मार्ग का होता था, वह देश के पश्चिमोत्तर में खैबर की घाटी है। प्राचीन काल से ही इस मार्ग के द्वारा बार बार मध्य एशियाई जातियाँ देश में आती और बसती रहीं; और अन्त में भारतीय जनता और सभ्यता के साथ इस प्रकार मिल गईं जैसे दूध में पानी। इसी द्वार से मुसलमान सैनिकों ने बार बार भारत पर हमले किये और अन्त में उसे जीत कर यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। तीसरा स्थल मार्ग बोलन की घाटी से होकर है।

अरबी आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर सीमा की राजनीतिक अवस्था—जिस समय उत्तरी भारत में महाराज हर्ष के पूर्वज अपना राज्य-विस्तार कर रहे थे, उस समय अरब में मुहम्मद नामक नेता उत्पन्न हुआ जिसने अरबी जाति की हीनावस्था को देख कर उसका उद्धार करने का संकल्प किया। अरबों के पारस्परिक घरेलू कलह और अनेक जातीय त्रुटियों को दूर करके उसने उन्हें एकता और एकेश्वरवाद का पाठ पढ़ा कर एक राष्ट्रीय सूत्र में बाँध दिया। सन् ६३२ ई० (वि० सं० ६८९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में हज़रत मुहम्मद का स्वर्गवास हुआ। इससे एक शताब्दी के अन्दर इसलाम मत यूरोप में फ्रांस तक और इधर तुर्की तक, और एशिया में भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा तक पहुँच गया और अनेक देशों पर मुस्लिम ख़लीफ़ा का राज्य क़ायम हो गया। मुहम्मद साहब की मृत्यु के आठ वर्ष के अन्दर समस्त फ़ारस और हिन्दूकुश और आक्सस (वक्षु) नदी के बीच के सब देश अरबी साम्राज्य के अधीन हो गये। इस प्रकार अरबी सेना भारत की सीमा से टकराने लगी।

परन्तु जान पड़ता है कि अरबों की इस अद्भुत विजय का भारत पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसके पश्चिम में जो राज्य थे, उनका ठीक-ठीक ब्योरा मिलना कठिन है। परन्तु हुएन्त्संग ने, जो उस समय भारतवर्ष की यात्रा कर रहा था, उन सीमास्थ राज्यों का जो उल्लेख किया है, वह विश्वसनीय जान पड़ता है। आश्चर्य की बात यह है कि हुएन्त्संग ने प्राचीन भारत का तो वर्णन किया है, परन्तु अरबी विजय या इस्लाम धर्म के विस्तार का कोई जिक्र नहीं किया*।

हुएन्त्संग के वर्णन से जान पड़ता है कि उस समय पश्चिमी सीमा पर तीन हिन्दू राज्य क़ायम थे। उत्तर में कपिशा या काबुल, दक्षिण में सिंध या सिंधु, और इन दोनों के बीच में साओ कूटा या 'साओ ली' (Tsaokuta or Tsaoli)।

कपिशा राज्य अनुमान से पश्चिम में हिन्दूकुश पहाड़ और बामियान से लेकर पूरब में बन्नू और सिंधु नदी तक फैला हुआ था; और उस के अधीन कई छोटे-छोटे राज्य थे। चीन राज्य से भी कपिशा का बहुत घनिष्ट संबंध था। अलबेरूनी के अनुसार यहाँ उस समय शाहिया वंश राज्य कर रहा था। इन लोगों ने चीन से सम्बन्ध शायद अरबों के भय से ही जोड़ा था।

सिंध-राज्य—मुलतान से नीचे सिंधु नदी की घाटी के दक्षिणार्ध में फैला हुआ था। इसके पश्चिम में किरमान और मकरान के देश थे। चचनामे से ज्ञात होता है कि किरमान, मकरान, मुलतान इत्यादि सब सिंध राज्य के अधीन थे।

तीसरा राज्य—साओली का था। हुएन्त्संग के अनुसार इसके दक्षिण में सिंध, दक्षिण-पूर्व में बन्नू और किक्वाना और उत्तर में कपीशी था। यह वही देश है जिसे अरबी भूगोलवेत्ता ज़ाबुल या ज़ाबुलिस्तान कहते हैं और जो हेलमण्ड नदी की ऊपरी घाटी में फैला हुआ था। मुद्राशास्त्र और अन्य आधारों से ऐसा जान पड़ता है कि इस देश पर भी शाही वंश के लोग ही राज्य करते थे। खुरासान के लिये इनका फ़ारस से बराबर झगड़ा चला आता था। यह राज्य फ़ारस और भारतवर्ष के बीच में एक संघर्ष बचानेवाले या बफ़र राज्य (Buffer state) के समान था†।

इन देशों की सभ्यता—हुएन्त्संग ने इन देशों की सभ्यता का भी अच्छा वर्णन किया है। कपिशा का राजा भारतीय क्षत्रिय जाति का था, परन्तु वहाँ की भाषा तुर्की

---

* हुएन्त्संग को मुसलमानों के विस्तार का पता था या नहीं, इस सम्बन्ध मे देखो जर्नल आफ़ इण्डियन हिस्टरी, जि० १०, भाग १, डाका यूनी० सप्लिमेंट पृ० ३।

† ज० इ० हि०, जि० १०, भा० १, डा० यू० स०, पृ० ४ से ८ तक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा से मिलती-जुलती थी। लमग़ान, उद्यान, गांधार और बन्नू में भारतीय भाषा, साहित्य और धर्म ही प्रचलित थे। ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों के अनुयायी वर्त्तमान थे। ज़ाबुल की भाषा में कुछ अन्तर था; और वहाँ के लोगों का धर्म्म बौद्ध, ब्राह्मण और अध्यात्मवाद (Animism) का सम्मिश्रण सा था।

ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय तक पश्चिम और पश्चिमोत्तर सीमा के देश, कन्धार, काबुल इत्यादि भी राजनीतिक दृष्टि से भारतवर्ष के ही अन्तर्गत थे। परन्तु जनता में तुर्कों का भी यथेष्ट भाग सम्मिलित था। लोगों का विश्वास था कि शाही राजा कुशान राजा कनिष्क के वंशज हैं। अलबेरूनी उनको क्षत्रिय बतलाता है। यदि यह ठीक हो तो इससे हमें पता चलता है कि किस प्रकार बाहरी जातियाँ भारतीय जनता में मिल कर एक हो जाती थीं। पहाड़ी इलाके की जातियाँ उस समय भी वैसी ही थीं जैसी अब हैं। उनकी सभ्यता का भी वही हाल था जो आज है। भेद केवल इतना है कि अब वे बौद्ध धर्म की जगह इस्लाम की अनुयायी हैं। वे लोग उस समय भी बहुत भयानक थे और क़त्ल करना अपना पेशा समझते थे। उनमें सामाजिक ऊँच-नीच का कोई विचार नहीं था और न कोई स्थिर शासन ही था। चौपाए पालना उनकी जीविका थी। वे सिर मुँड़ाते और भिक्खुओं के वेष में रहते थे और अपने मत के बहुत कट्टर माननेवाले थे।

अरबी आक्रमणों का आरम्भ—सीमावर्ती तीनों ही राज्यों पर अरबों के आक्रमण सातवीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हो गये थे। इस समय उन्होंने काबुल और ज़ाबुल को विजय करने का प्रयत्न किया। पहले सात वर्षों में (अर्थात् सन् ६४९ से ६५६ तक) उनको विशेष सफलता न हुई। फिर अगले पन्द्रह वर्षों में अली और मुआविया के समय में सिजिस्तान के हाकिम अब्दुर्रहमान की चतुराई और बहादुरी से काबुल और ज़ाबुल दोनों पर मुसलमानों की विजय हुई। परन्तु सन् ६७० से अब्दुर्रहमान के बाद उनकी बराबर हार होती रही और सन् ७०० तक युद्ध करने के बाद मुसलमानों को पूरा विश्वास हो गया कि इन देशों को जीतना हमारी शक्ति के बाहर है। इसलिए लगभग १५० वर्ष बाद तक ये देश स्वतन्त्र रहे। कभी कभी अब्बासी ख़लीफा उनसे कर वसूल कर लेते थे। परन्तु सन् ८७० ई० तक प्रायः इन देशों को स्वतंत्र ही छोड़ दिया गया।

सिंध पर मुसलमानी आक्रमण और विजय—सीमावर्ती तीन राज्यों में से सिंध पर मुसलमानी आक्रमण सब से अधिक प्रबल और देर तक हुआ। सातवीं शताब्दी के आरम्भ में सहसीराय का बेटा राजा साहिरास राज्य कर रहा था। राज्य के बीच का हिस्सा तो स्वयं राजा के शासन में था और बाकी देश चार सूबों में बँटा हुआ था। राजधानी आलोर नगर में थी। हर सूबे पर एक सूबेदार शासन करता था। साहिरास फारस के एक सूबे नीमरोज़ के शासक के साथ युद्ध में मारा गया और उसका बेटा राय सहसी दूसरा गद्दी पर बैठा। इसके राज्य में चच नामी एक ब्राह्मण राज-कर्म्मचारी ने बहुत उन्नति की और थोड़े ही समय में उसने राज-मन्त्री का पद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राप्त किया। फिर उसने अपनी शक्ति को इतना प्रबल कर लिया कि राजा के मरने पर वह स्वयं गद्दी पर बैठ गया और सहसी की विधवा से उसने विवाह भी कर लिया। इस रानी से उसके दो बेटे और एक बेटी पैदा हुई। एक बेटे का नाम दाहरसिय और दूसरे का दाहर था और बेटी का नाम बाई था। सूबेदारों ने पहले चच का शासन मानने से इन्कार कर दिया, इसलिये चच को उनसे लड़कर उन्हें अपना प्रभुत्व स्वीकृत कराना पड़ा। उसने इस प्रकार एक नये ब्राह्मण राज-वंश की स्थापना की और बहुत योग्यता से ४० वर्ष राज्य करके अपनी राजधानी आलोर में ही स्वर्गवास किया। इसी का पुत्र दाहिर अन्त को ४० वर्ष बाद इसका उत्तराधिकारी हुआ।

सिंध राज्य की वास्तविक आन्तरिक अवस्था—चचनामे के पढ़ने से ज्ञात होता है कि सिंध राज्य बहुत शक्तिशाली और सुसंघटित था। उसके विस्तार से भी भी इस बात की पुष्टि होती है। परन्तु उसकी असली अवस्था ऐसी नहीं थी। कई कारणों से उसके संघटन में अनेक निर्बलताएँ आ गई थीं। इन त्रुटियों को भली भाँति जान लेने पर हम समझ सकेंगे कि सिंध में मुसलमानों की जीत होने के क्या कारण थे।

सिंध की हार का सब से बड़ा और मुख्य कारण वही जान पड़ता है जिससे संसार के इतिहास में अनेक जातियाँ दूसरी जातियों के अधीन हो जाती हैं। यह कारण था आपस की फूट, राष्ट्रीयता का अभाव और राजविद्रोह। भारतवर्ष का समस्त इतिहास इसी एक नियम का साक्षी है। इसकी पराधीनता का कारण यह नहीं था कि यह दुर्बल था और बाहरी विजेताओं ने इसे अपने बल से जीता था। इसका वास्तविक कारण यह था कि घर के लोगों ने ही अपनी अदूरदर्शिता और मूर्खता से इसे दुश्मनों के हाथ में सौंप दिया था।

जिस समय मुसलमान लोग सिंध की सीमा पर थे, उस समय वहाँ ब्राह्मण और बौद्ध दोनों मत प्रचलित थे। चच से पहले साहिरास के वंशज बौद्ध थे और चच ब्राह्मण मत का अनुयायी था। परन्तु उसके समय में बौद्ध बहुत बलशाली थे और उनमें बहुत से प्रान्तों के शासक भी थे जिनका जनता पर बहुत प्रभाव था। बौद्धों और ब्राह्मणों की धार्मिक प्रथाओं में तो इस समय बहुत कम भेद रह गये थे, किन्तु दोनों मतों के अनुयायियों में गहरा वैमनस्य रहता था। चच ने इन सब को अपनी शक्ति से पराजित किया और उन पर अपना प्रभुत्व जमाया। ब्रह्मनाबाद का शासक, जिसे चच को चढ़ाई करके दबाना पड़ा, स्वयं बौद्ध था। इस वैमनस्य का फल यह हुआ कि बौद्धों ने मुसलमानों से मेल कर लिया और इराक़ के बादशाह हज्जाज के पास दूत भेज कर उससे अभयदान ले लिया*। सिंध में मुसलमानों ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, उन सब में उनकी जीत का मुख्य कारण था सिन्धी बौद्धों का राजद्रोह करके मुसलमानों से मिल जाना और उनको हर प्रकार की खुली सहायता पहुँचाना।

---

* अरब और भारत के सम्बन्ध, हिन्दुस्तानी एकाडेमी से प्रकाशित। पृ० १६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंध की निर्बलता का दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि अपने निकटस्थ राज्यों, जैसे काश्मीर, कन्नौज इत्यादि से उसका बराबर झगड़ा रहता था। मुसलमानी आक्रमण के समय भी दाहर रमल के राजा से लड़ रहा था।

एक और बड़ा कारण यह था कि चच ने जो धोखे से पुराने वंश को नष्ट करके उसका राज्य छीन लिया था, उससे बहुत से शासक और पदाधिकारी उसके विरोधी हो गये थे। इसके अतिरिक्त उसके भाई चन्द्र की मृत्यु के बाद जो ३० वर्ष तक राज्य दो भागों में बँटा रहा, उससे भी अवश्य उसके संघटन की शक्ति पर बहुत बुरा असर पड़ा होगा।

इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिंध की स्थिति वास्तव में अच्छी नहीं थी और उसमें यह शक्ति नहीं थी कि बाहरी आक्रमणकारियों का बहुत काल तक सफलतापूर्वक सामना कर सकता।

भारतवर्ष पर चढ़ाई करने में मुसलमानों का उद्देश—भारत या अन्य देशों पर मुसलमानों के चढ़ाई करने का अभिप्राय जानने के लिये यह आवश्यक है कि इस्लाम धर्म के उन नियमों को याद रखा जाय जो अन्य धर्मावलम्बी जातियों के लिये बनाये गये थे। उनके जहाद का उद्देश्य यह था कि समस्त संसार को मुसलमान बना लिया जाय; और यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो काफ़िर देशों पर हर वर्ष चढ़ाई की जाय। उन्हें मूर्त्तिपूजकों और देवी-देवताओं के अनुयायियों से बड़ी घृणा थी। साथ ही जब दूर-दूर के देशों पर उनकी विजय होती गई तो मुसलमानों में लूट के माल-मता और दासों का लालच भी बढ़ता गया और उनके नेताओं की राज्य स्थापित करने की इच्छा भी प्रबल होती गई। यही सब कारण शुरू से ही अरब-वासियों के हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के भी थे। मुसलमानों के विस्तार के प्रारम्भ से ही खलीफ़ाओं की आँख भारतवर्ष पर भी लगी हुई थी। खलीफ़ा उमर जल-मार्ग से बहुत डरता था, इस कारण उसने इस देश पर चढ़ाई न की। पहले-पहल खलीफ़ा उसमान ने भारत पर चढ़ाई करने की तैयारी की। उसने यहाँ की अवस्था का पूरा ब्योरा जानने के लिए एक दूत भेजा। उसकी सूचना कुछ आशाजनक न थी, इसलिये उमर ने चढ़ाई का विचार त्याग दिया। इसके बाद खलीफ़ा वलीद के काल में सिंध के विजेता मुहम्मद बिन क़ासिम और उसके स्वामी इराक़ के शासक हज्जाज में परस्पर जो पत्र-व्यवहार हुआ, उससे स्पष्ट हो जाता है कि चढ़ाई का पहला उद्देश्य मूर्त्ति-पूजा का अन्त करके इस्लाम की स्थापना करना था*।

सिंध पर चढ़ाई और विजय—सबसे पहले समुद्र के किनारों पर अरबी आक्रमण हुए थे। सन् ६३७ ई० में थाना पर हमला करने के लिये एक सेना भेजी गई और उसके पीछे भड़ौच (भृगुकच्छ) और देबुल इत्यादि कई और नगरों पर। ये सब हमले सन् ६३४ ४३ तक खलीफ़ा उमर के समय में हुए। इन सब में

* ईलियट—जि० १, पृ० १६४ और १७३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुसलमानों की हार हुई। इसके बाद आठवीं सदी के शुरू तक कोई विशेष उल्लेख योग्य आक्रमण नहीं हुआ।

परन्तु जब अलहज्जाज इराक़ का शासक नियुक्त हुआ, तब फिर से चढ़ाइयाँ शुरू हुईं। इस समय तक इस्लाम की शक्ति का बहुत अधिक विस्तार हो चुका था। पश्चिम में मिस्र, सीरिया, कारथेज इत्यादि मुसलमान बनाये जा चुके थे और स्पेन पर भी अरबी राज्य क़ायम हो गया था। इधर फ़ारस उनके हाथ में आ चुका था। हज्जाज बहुत प्रतापी और बलशाली शासक था और बड़ा साम्राज्यवादी था। उसके समय में समरक़न्द और फ़रग़ाना तक के देश मुसलमानों ने जीत लिये। संयोग से इसी बीच में लंका के राजा ने कुछ अनाथ मुसलमान औरतों को हज्जाज के पास वापस भेजा। देबुल के पास समुद्री डाकुओं ने उनको लूट लिया। हज्जाज ने दाहर को लिखा कि उन औरतों को छोड़ दो। परन्तु दाहर ने उत्तर दिया कि समुद्री डाकू मेरे वश में नहीं हैं। इस पर हज्जाज क्रुद्ध हो गया और उसने युद्ध छेड़ दिया। ख़लीफ़ा वलीद से बड़ी कठिनाई से आज्ञा लेकर उसने दो बार देबुल पर चढ़ाइयाँ कीं, परन्तु दोनों में उसकी फ़ौज हारी और सेनापति मारे गये।

मुहम्मद बिन क़ासिम—इसके बाद हज्जाज ने ख़लीफ़ा से विशेष आज्ञा माँग कर सिंध पर आक्रमण करने के लिये बहुत तैयारी की और अपने भतीजे तथा दामाद मुहम्मद बिन क़ासिम को ६००० फ़ौज़, ६००० ऊँट-सवार और घेरे आदि का बहुत सा सामान देकर रवाना किया। मुहम्मद बहुत योग्य, शूर-वीर और बुद्धिमान् युवक था। वह शीराज़ के रास्ते से मकरान होता हुआ, और बीच के नगरों को जीतता हुआ सन् ७१२ ई० में देबुल पहुँचा और उस पर घेरा डाल दिया। शहर में एक मन्दिर था जिसके गुम्बद पर एक बहुत ऊँचा झण्डा लगा हुआ था। चचनामे में लिखा है कि एक ब्राह्मण ने आकर मुहम्मद को बतलाया कि ज्योतिष से मुझे मालूम हुआ है कि जब तक इस झण्डे को तुम न गिराओगे, तब तक तुम्हारी जीत न होगी। मुहम्मद ने तुरन्त उस झण्डे पर निशाने लगवा कर उसे गिरवा दिया जिससे नगर-निवासी भयभीत हो गये और मुसलमानों ने धावा बोलकर नगर ले लिया। तीन दिन तक क़त्लेआम जारी रहा। शहर में मस्जिद बनाई गई और शहर की रक्षा के लिये चार हज़ार सेना एक स्थान पर रखी गई।

इसके बाद मुहम्मद नीरून (आधुनिक हैदराबाद) पहुँचा। वहाँ के बौद्ध पुजारी पहले ही से राजद्रोही बन कर हज्जाज से मिल चुके थे। उन्होंने मुहम्मद का स्वागत किया और उसे रसद पहुँचाई। फिर मुहम्मद कई और शहरों को इसी प्रकार जीतता हुआ सिविस्तान (वर्त्तमान सेहवान) पहुँचा। वहाँ उसका सामना किया गया, परन्तु वहाँ भी बौद्ध लोग शत्रु से जा मिले और अपने शासक के विरोधी हो गये। बौद्ध लोगों की धर्म्म-पुस्तकों में यह भविष्यद्वाणी पाई जाती थी कि भारतवर्ष को मुसलमान विजय करेंगे। शायद मुसलमानों का साथ देने में वे इस कारण से भी प्रेरित हुए हों। सिविस्तान को जीतने के बाद मुहम्मद ने आस-पास के सरदारों को रिश्वतें दे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देकर अपनी तरफ़ मिला लिया और उन्होंने उसे सिन्धु पार करने के लिये नावें इत्यादि देने का वादा किया। अब मुहम्मद सिन्धु के पश्चिमी किनारे पर आकर ठहर गया। यह देखकर दाहर ने भी तैयारी की और सामनेवाले किनारे पर आकर अपनी सेना जमा दी। दो महीने पड़े रहने के बाद मुहम्मद ऊपर की ओर बढ़ा और नदी को पार करके बेट के क़िले को लेता हुआ राउर के प्रान्त में एक झील के किनारे जा ठहरा, और दाहर के लड़के जयसिंह की सेना को मार भगाया। बेट के क़िलेदार दो भाइयों ने अपने स्वामी दाहर का विरोध कर मुहम्मद को सहायता दी। उनकी सलाह से वह उस झील के पार हुआ और दाहर को अपनी सेना हटाकर राउर के क़िले में जाना पड़ा। यहाँ दोनों में बड़ा घमासान युद्ध हुआ। इतना धोखा और विद्रोह होते हुए भी दाहर बहुत वीरता से लड़ा। अरब सेना में भगदड़ मच गई। यह हाल देखकर मुहम्मद ने उनसे ईश्वर के नाम पर प्रार्थना की और सिन्ध के विद्रोही सरदार उसकी सहायता को पहुँच गये। दुर्भाग्यवश दाहर की अम्बारी पर एक तीर लगा और उसमें आग लग गई जिसके कारण उसका हाथी पानी में कूद पड़ा। दाहर बचकर किनारे पर तो आ गया, पर अब चारों ओर से उसी पर वार होने लगे। एक तीर उसकी छाती में लगा। तब दाहर धीरे-धीरे हाथी से नीचे उतर आया और एक मुसलमान ने उसका सिर काट डाला। राजा के मरते ही सेना में भगदड़ मच गई। जयसिंह भागकर ब्रह्मनाबाद के क़िले में जा छिपा और अपनी विधवा माता को राउर में छोड़ गया। वह वीर स्त्री पहले तो बहुत बहादुरी से लड़ती रही। परन्तु जब देखा कि बचना कठिन है, तब यवनों के अपवित्र हाथों से अपनी रक्षा करने के लिये क़िले के अन्दर की सब राजपूत देवियों को एकत्र करके सब के साथ अग्नि में भस्म हो गई। मुहम्मद ने क़िले के ६००० निवासियों को क़त्ल किया और दाहर का सारा माल-मता ले लिया। अब मुहम्मद रास्ते के क़िलों को लेता हुआ ब्रह्मनाबाद पहुँचा। जयसिंह ने आलोर और ब्रह्मनाबाद में बड़ी तैयारी की, परन्तु उसका मन्त्री मुहम्मद क़ासिम से जा मिला जिसके कारण उसे भारी क्षति पहुँची। तब भी ब्रह्मनाबाद के क़िले पर छः महीने तक मुसलमानों ने घेरा डाले रखा और रोज़ दोनों दलों में लड़ाई होती रही। यहाँ तक कि मुहम्मद क़ासिम का दिल टूट गया और उसे क़िला जीतने की कोई आशा न रही। पर यहाँ भी राजविद्रोह और छल ने अपना काम किया। शहर के कुछ बड़े-बड़े लोग दुश्मन से जा मिले और क़िला धोखे से उसे सौंप दिया। इसके बाद मुहम्मद आलोर पहुँचा। वहाँ दाहर का छोटा लड़का शासक था। वहाँ भी नगर-निवासियों के विद्रोह के कारण उसे भागना पड़ा और आलोर मुहम्मद के हाथ में आ गया।

अन्त में मुहम्मद अन्य छोटे छोटे क़िले लेता हुआ मुलतान पहुँचा और दो महीने तक व्यर्थ लड़ता रहा। यहाँ भी एक देशद्रोही ने मुहम्मद को नगर में पानी पहुँचने का स्थान बतला दिया। उसने तुरन्त पानी रोक दिया और उन लोगों को विवश होकर क़िला छोड़ देना पड़ा। क़िले की फ़ौज का क़त्ले आम हुआ और मुलतान के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरदारों और सैनिकों के सम्बन्धियों को ग़ुलाम बनाया गया। मुलतान की जनता, व्यापारी, दस्तकार, जाट इत्यादि मुहम्मद का स्वागत करने के लिये गये। मुसलमानी शासन तुरन्त स्थापित हो गया। जो लोग मुसलमान नहीं हुए, उन पर जज़िया लगाया गया। यहाँ मुहम्मद ने मन्दिर नहीं तोड़े और यहाँ का शासन स्थानीय लोगों की सहायता से चलता था।

मुलतान की जीत मुहम्मद की अन्तिम जीत थी। इसके बाद उसने सिर्फ़ दो चार छोटे छोटे स्थान लिये और तब कन्नौज पर चढ़ाई करने को एक सेना भेजी। परन्तु इसी समय हज्जाज की सन् ७१४ ई० में और खलीफ़ा वलीद की सन् ७१५ ई० में मृत्यु हो जाने से खलीफ़ा सुलेमान ने, जो उसका दुश्मन था, उसे तुरन्त वापस बुलवा कर बड़ी यातना पहुँचाकर मरवा डाला *।

उमैय्या वंश के पतन-काल में सिंध लगभग स्वतन्त्र सा ही रहा। आठवीं शताब्दी के मध्य में अब्बासी वंश के खलीफ़ा ने फिर से सिंध को जीतने का यत्न किया। सिंध के मुसलमान सूबेदार ने काश्मीर पर भी चढ़ाई की, परन्तु वहाँ के प्रतापी राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ (सन् ७३३–७६९) ने उसे मार भगाया †। इसके बाद और भी कई बार इसी प्रकार के यत्न किये गये, परन्तु सब निष्फल रहे।

अब्बासी वंश के पतन काल में सिंध का मुस्लिम शासक बिलकुल स्वतन्त्र होकर राज्य करने लगा और अन्त में दो स्वतन्त्र मुस्लिम अमीर, एक ब्रह्मनाबाद में और दूसरा मुलतान में, राज्य करने लगे।

सिंध के हिन्दुओं की हार के कारण—हम ऊपर कह आये हैं कि भारत में आने के लिये पश्चिम की ओर चार द्वार हैं। इनमें से तीन के द्वारा मुसलमानों ने आने का यत्न किया, परन्तु काबुल और ज़ाबुल के राज्यों ने और बोलन के पास कीकान के जाटों ने उन्हें देश में आने न दिया। ये जातियाँ दो सौ वर्ष तक बराबर बड़ी वीरता से इस्लाम की बढ़ती हुई बाढ़ को रोकती रहीं। जल-मार्ग से अरब लोग

---

* चचनामे में लिखा है कि क़ासिम ने राजा दाहर की दो कन्याओं को दासी बना कर उपहार के रूप में खलीफा वलीद के पास भेजा था। उन कन्याओं ने खलीफ़ा क़ासिम से अपने पिता का बदला लेने के लिये वलीद से शिकायत की कि क़ासिम ने पहले ही हमारा कुमारित्व नष्ट कर दिया है। इस पर वलीद को इतना क्रोध आया कि उसने क़ासिम को कच्ची खाल में जिन्दा सिलवा कर मँगवा लिया जिससे रास्ते में ही उसके प्राण निकल गये। फिर उन कन्याओं ने अपने पिता के शत्रु का बदला चुक जाने पर सन्तोष प्रकट किया और कहा कि खलीफ़ा को बिना जाँचे किसी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इस पर खलीफ़ा ने उन दोनों को घोड़ों की दुमों से बँधवा कर घसिटवा कर मार डाला। इस घटना का ज़िक्र बिलाजुरी ने अपने "फ़तूहुल बुल्दान" में नहीं किया है। दूसरे उस समय खलीफ़ा वलीद सुलेमान नहीं था जिसने दुश्मनी के कारण क़ासिम को मरवाया था। इसलिये इसके सत्य होने में सन्देह है।

† देखो ज० ई० हि० जि० १०, भाग० १ डा० यू० स० पृ० ४२–४४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसलिये न आ सके कि वे जलयुद्ध में सर्वथा अयोग्य थे। इन सब मार्गों में विफल रहने पर उन्होंने सिंध और मकरान का बीहड़ मार्ग टटोला। इस मार्ग से आने में उन्हें कई कारणों से सफलता प्राप्त हुई सबसे मुख्य कारण तो यह प्रतीत होता है कि दाहर बहुत वीर, बलवान और योद्धा तो था, परन्तु विचारशील और दूरदर्शी नीतिज्ञ न था। उसे उचित था कि जब अरब लोगों ने जल-मार्ग से आना शुरू कर दिया था और उनका घेरों का भारी-भारी सामान केवल जल-मार्ग से ही लाया जा सकता था, तो वह जल-सेना को सुसंघटित करके वहीं पर उनका सामान रोक देता और नष्ट कर देता। पर उसने कभी इस बात का विचार ही नहीं किया। जब तक दुश्मन उसके दरवाजे पर न आ धमका, तब तक वह सोया रहा। मुहम्मद कासिम को उसने बिना रोक-टोक सिंधु पार कर लेने दिया। इससे अधिक अंधापन कोई राजा नहीं दिखला सकता। दूसरे उसे ऐसे समय में बौद्ध पुजारियों, श्रमणों और सूबेदारों एवं अमीरों को मिलाये रखना चाहिए था। उनका बार बार दुशमनों से जा मिलना स्पष्ट बतलाता है कि दाहर में उनको मित्र बनाये रखने की बुद्धि न थी। उसके राज्य में इतना बड़ा समुद्री किनारा था, तो भी उसके पास कोई जल-सेना नहीं थी। यह भी उसकी कमज़ोरी का एक बड़ा भारी कारण था। इसके सिवा बौद्ध लोगों का विद्रोह और धोखा उसकी हार का एक बड़ा भारी कारण हुआ। एक और कारण यह भी मालूम होता है कि उस समय के ब्राह्मण और बौद्ध ज्योतिषियों ने यह भविष्यद्वाणी की थी कि इस देश पर मुसलमान अवश्य विजय प्राप्त करेंगे। फिर राजा को एक ओर अपने पड़ोसियों से लड़ाई करनी पड़ी थी; और दूसरी ओर हज्जाज की बड़ी भारी तैयारी थी; और मुहम्मद बिन क़ासिम की योग्यता, सच्ची स्वामि-भक्ति और कार्यपरायणता भी मुसलमानों की सफलता के बड़े कारणों में से थी।

सिंध से आगे मुसलमान भारतवर्ष में इसलिये न घुस सके कि एक तो देश के अन्य राजा और शासकगण इससे पूरी तरह से सचेत हो गये थे; और दूसरे उधर खिलाफ़त में झगड़े पड़ने के कारण अरब लोगों की शक्ति का स्रोत ही निर्बल हो गया था।

सिंध पर अरबी शासन—सिंध के अरब विजेताओं ने जल्दी ही इस बात का अनुभव कर लिया कि ठेठ मुसलमानी सिद्धान्तों और पद्धतियों के अनुसार शासन करना असम्भव होगा। इसलिये विवश होकर उन्हें अपने नियमों की कड़ाई को शनैः शनैः बहुत कम करना पड़ा। यह देख कर कि देश के पुराने शासकों की सहायता के बिना कार्य करना असम्भव होगा, उन्होंने शासन का सारा काम, विशेषतया कर वसूल करने का काम ब्राह्मणों के हाथ ही में रखा। प्रत्येक प्रान्त के लिये एक सूबेदार या अमीर और प्रत्येक क़िले के लिये एक क़िलेदार नियत कर दिया गया और रक्षा के लिये उन्हें काफी सेना दे दी गई जिससे वे बलवे दबा सकें।

सरकार की आमदानी के मुख्य स्रोत तीन थे। इनमें से पहला था, लड़ाई की लूट। इसका पाँचवाँ हिस्सा तो ख़लीफ़ा को भेजा जाता था और शेष फ़ौज में बाँट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया जाता था। दूसरा भूमि-कर। यदि सरकारी नहरों से खेत सींचा जाता था तो पैदावार का ४० फ़ी सदी लगान लिया जाता था, अन्यथा २५ फी सदी। फलों पर पैदावार का ⅓ भाग कर रूप में लिया जाता था और अन्य वस्तुओं पर ⅙ कर जिन्स या नक़द दोनों रूपों में दिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे कर भी लिये जाते थे जिनका ठेका नीलाम कर दिया. जाता था। आय का तीसरा स्रोत जज़िया था। जो लोग मुसलमान धर्म ग्रहण नहीं करते थे, उनसे ज़ज़िया उनकी हैसियत के अनुसार, बड़ी कड़ाई से वसूल किया जाता था। चुंगी इत्यादि हिन्दुओं को मुसलमानों से दूनी देनी पड़ती थी।

न्याय का काम क़ाज़ी लोग करते थे। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच न्याय करने का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं था। क़ाज़ी लोग कुरान के विधान के अनुसार न्याय करते थे। अमीरों और सरदारों को अपने अपने प्रान्त में अपराधियों को प्राण-दण्ड तक देने का अधिकार था। राजनीतिक और सामाजिक अपराधों के लिये तो कुरान का क़ानून ही प्रयुक्त होता था, परन्तु व्यक्तिगत झगड़ों जैसे सम्पत्ति, उत्तराधिकार, दुराचार इत्यादि का हिन्दू लोगों की अपनी पंचायतें फैसला करती थीं। इन पंचायतों का कार्य बहुत अच्छा होता था। परन्तु मुसलमानी सरकार की कचहरियों में हिन्दुओं के साथ बहुत अत्याचार होता था, जिसमें तंग आकर वे मुसलमान हो जायँ। राजा और प्रजा में परस्पर स्नेह और विश्वास का सर्वथा अभाव था।

अरब सैनिक देश में कई स्थानों पर बस गये और हिन्दुस्तानी औरतों से विवाह करके उन्होंने अपने उपनिवेश बना लिये। मनसूरा, मुलतान इत्यादि नगर इसी प्रकार बसे थे। परिणाम यह हुआ कि सुख-सम्पत्ति और विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने से अरबों की सैनिक शक्ति निर्बल हो गई। साथ ही उनको रोजगार का लालच हो गया था। फल यह हुआ कि उनकी शक्ति इतनी घटी कि आवश्यकता पड़ने पर बाहर से वैतनिक सेना भरती करनी पड़ती थी।

पहले तो अरब लोगों ने हिन्दुओं के साथ बहुत असहिष्णुता का व्यवहार किया। देबल, नीरूँ, आलोर इत्यादि नगरों में मन्दिर तोड़े और जनता को मुसलमान बनाया। क़त्ले आम किये और लाखों मर्दों, औरतों और बच्चों को दास बनाकर बेचा। परन्तु जब उन्होंने देखा कि समस्त हिन्दू जनता को मुसलमान बनाना असम्भव है, तब उनके साथ कुछ नरमी का बर्ताव किया; अर्थात् उनको वे ही हक दे दिये जो "अहलुल किताब" या "पवित्र पुस्तक में उल्लिखित" जातियों, जैसे—ईसाई, यहूदी इत्यादि को दिये थे। प्रायः मन्दिर आदि तोड़ना बन्द कर दिया और खलीफ़ा की अनुमति से जज़िया देनेवालों को यह आज्ञा दे दी गई कि वे अपने मन्दिरों इत्यादि में पूजा कर सकें और अन्य प्रकार से अपना धर्म पालन कर सकें। परन्तु फिर भी प्रजा को अनेक प्रकार के अपमान और अत्याचार सहने पड़ते थे; जैसे प्रत्येक मुसलमान पथिक को तीन दिन तक ठहराना और भोजन देना, इत्यादि। किसानों की अवस्था दासों से कुछ भी अच्छी न थी। कुछ प्रान्तों के जाटों को जरायम-पेशा समझा जाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। हिन्दू राज्यों में भी उनके साथ पशुओं का सा व्यवहार किया जाता था। वे शहर के बाहर रहते थे। यदि कोई चोरी या हत्या हो जाती तो उसके लिये वही ज़िम्मेदार ठहराये जाते थे। मार्गों की रक्षा का भार भी उन्हीं के ऊपर था। इनके लिये चोरी का दण्ड इतना कठोर था कि चोर के समस्त कुटुम्ब को जीवित जला दिया जाता था। मुहम्मद बिन क़ासिम ने इन नियमों में कोई परिवर्त्तन नहीं किया।

व्यापारोन्नति—अरब शासन में सिंध व्यापार का एक बड़ा केन्द्र बन गया। समस्त मुसलमानी देशों से जल और स्थल मार्गों के द्वारा सिंध का व्यापार होने लगा। लंका, मलाबार और अन्य दक्षिणी प्रदेशों का व्यापार खुरासान और तुर्किस्तान इत्यादि देशों से सिंध के मार्ग से ही होता था। अरब से घोड़े और शस्त्र यहाँ आते थे। सिन्ध के किनारे पर बहुत से अरब उपनिवेश बस गये थे।

अरब शासन अस्थायी था—भारत में अरब शासन स्थायी नहीं हो सकता था। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि ये लोग हिन्दू प्रजा को सन्तुष्ट न कर सके। दूसरे जब उनका जोश ठण्ढा पड़ा और वे देश में स्वयं बस गये, तब उनके घरेलू झगड़े फिर शुरू हो गये और उनके अमीर और सरदार स्वतन्त्र होने का यत्न करने लगे। तीसरे सिंध देश ऐसा था जिसकी उपज इत्यादि से इतनी आमदनी न हो सकती थी जिससे वहाँ के शासन का व्यय भी निकल सकता। चौथे उस तरफ़ से देश में आगे बढ़ना असम्भव था। राजपूत लोग उनको अन्दर घुसने से रोकने के लिये यथेष्ट शक्तिशाली थे। अन्त में मुहम्मद बिन क़ासिम के बाद कोई योग्य शासक वहाँ न आया और ख़िलाफ़त स्वयं अपने निजी झगड़ों से निर्बल हो गई।

अरब-विजय का संस्कृति पर प्रभाव—हिंदुओं की सभ्यता, आचार-विचार, साहित्य, अध्यात्म विद्या इत्यादि पर अरब लोगों का कोई प्रभाव न पड़ा। हिन्दुओं का आन्तरिक जीवन पहले के समान बना रहा। परन्तु इसके विरुद्ध अरब की सभ्यता पर भारतीय साहित्य और संस्कृति का बहुत भारी प्रभाव पड़ा। हेवेल का मत है कि इसलाम के यौवन काल में भारतवर्ष उसका गुरु था जिसने उसे अनेक विद्याएँ सिखलाईं, और उसके साहित्य, कला इत्यादि को एक विशेष रूप दिया, न कि यूनान ने*। अब्बासी खलीफ़ाओं के समय में और विशेष कर हारूनुर्रशीद के समय में (सन् ७८६–८०६ ई०) सैकड़ों विद्वान् भारत की विद्याएँ और कलाएँ सीखने के लिये यहाँ भेजे गये। चिकित्सा, शल्य, गणित (इल्मे हिन्दसा†), ज्योतिष (नजूम), रसायन (कीमिया), भूगर्भ, भूगोल और अध्यात्म विद्या इत्यादि अनेक विद्याएँ इन्होंने यहाँ आकर सीखीं। भिन्न भिन्न विषयों के हज़ारों संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद अरबी में किये गये। वहाँ अनुवाद का एक स्वतन्त्र विभाग ही स्थापित कर दिया गया था जिसमें

---

* हेवेल का "आर्यन रूल इन इण्डिया" पृ० २५६।

† अरब लोग अंक को "हिंदसा" इसी लिये कहते थे कि यह विद्या उन्होंने "हिन्द" या भारत से सीखी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत से बड़े बड़े विद्वानों को बुलाकर रखा जाता था। अरब के द्वारा भारत की यह विद्याएँ यूरोप में भी पहुँचीं और इटली इत्यादि सभ्यता के केन्द्रों पर उनका बड़ा भारी और स्थायी प्रभाव पड़ा।

साहित्य सम्बन्धी इस काम का श्रेय बरामका वंश को है जिसने अब्बासी खिलाफ़त के प्रारम्भ से बहुत ही चतुराई, सुव्यवस्था, उदारता और दानशीलता से ५० वर्ष (सन् ७३६–७८६ ई०) तक मन्त्री के कर्तव्यों का पालन किया। ये लोग पहले फ़ारस में बल्ख के रहनेवाले और अग्नि के उपासक थे। मुसल्मान हो जाने पर भी इनकी भक्ति और प्रेम अपने प्राचीन आर्य साहित्य और धर्म में ही बनी रही। इन्हीं के प्रोत्साहन से खलीफ़ा मन्सूर के समय (सन् ७७१ ई०) में गणित का एक बहुत बड़ा पण्डित अपने कई साथियों को लेकर बग़दाद पहुँचा और उसने अपनी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया। इसके बाद वहाँ भारत से अनेक विद्वान् बुलाये गये और वहाँ भारतीय सभ्यता तथा साहित्य का सिक्का बैठ गया, और उसकी उज्ज्वल कीर्त्ति दूर दूर तक फैल गई*।

पाँचवाँ अध्याय

राज्य-स्थापना का आरम्भ

यामिनी वंश का प्रयास

यामिनी या ग़ज़नवी वंश का अभ्युदय और १० वीं शताब्दी में मुस्लिम जगत—अरबवाले इस्लाम की पताका सिन्धु के पश्चिमी किनारे से आगे न बढ़ा सके। केवल मुलतान और मनसूरा इन दो स्थानों पर इस्लामी राज्य कायम हुए। परन्तु इनसे शेष भारत पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ सका और १०वीं शताब्दी के अन्त तक यह देश इस्लाम के आक्रमणों से रक्षित रहा। ई० दसवीं शताब्दी तक मुस्लिम जगत में बड़ा भारी परिवर्तन हो चुका था। उसके कारण एक ही शताब्दी के अन्दर इस्लाम का जो अद्भुत विस्तार और उन्नति हुई, वही उसके ह्रास का भी एक बड़ा कारण बन गई। खिलाफ़त की भूमि का इतना विस्तार हो गया था कि उसका एक केन्द्र से शासित होना अत्यन्त दुष्कर था। यद्यपि नाम मात्र को खलीफा इस्लामी जगत् का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता था, पर वस्तुतः भिन्न भिन्न स्थानों पर शासक-गण स्वतन्त्र हो बैठे थे। दूसरे, जब से आठवीं शताब्दी में उम्मैया वंश का अस्त हुआ और अब्बासी वंश खिलाफ़त का अधिकारी हुआ, तब से मुसल्मानों का वह पुराना

---

* इस विषय का विस्तृत विवरण जानने के लिये देखो अलबैरूनी की "किताबुल हिन्द" और मौ० नदवी की हि० ए० द्वारा प्रकाशित—"अरब और भारत के सम्बन्ध" नामक पुस्तक।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोश और इस्लाम को सारे संसार में फैलाने का एक मात्र उद्देश्य तथा आकांक्षा ठण्डी पड़ गई। इस काल में कोई नया देश नहीं जीता गया। ख़िलाफ़त की राजनीतिक उन्नति रुक सी गई। परन्तु अब्बासी वंश ने, जो फ़ारस की सहायता पर निर्भर था, साहित्य और कलाओं की विशेष उन्नति की। फल यह हुआ कि ख़िलाफ़त में अरब के स्थान पर फ़ारस और उसके विचारों का प्राधान्य हो गया। परन्तु ख़िलाफ़त का साम्राज्य छिन्न भिन्न होकर छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गया। फ़ारस और तुर्किस्तान इत्यादि स्थानों में नये राज्य स्थापित हो गये। इन्हीं नये राज्यों में सब से प्रसिद्ध राज्य समनी वंश का था जिसे समन निवासी अमीर इस्माईल ने सन् ९११ ई० में बुख़ारा में स्थापित किया था। समनी वंश का राज्य फ़ारस के पश्चिमी भाग में, जो मावरा उन्नहर * कहलाता था और खुरासान पर था। परन्तु इस वंश की स्थिति आरम्भ से ही बहुत अस्थिर थी। इसके उत्तर-पश्चिम में तुर्क और तातारी सरदार बड़े भयानक थे जो अभी तक मुसलमान नहीं हुए थे। पूर्वी फ़ारस में एक और बड़ा बलशाली वंश राज्य कर रहा था जिसने अपना अधिकार शनैः शनैः इराक़ तक फैला लिया। यहाँ तक कि बग़दाद भी उसके नियन्त्रण में आ गया। इस अवनति के काल में समनी अमीरों ने राज्य की रक्षा के लिये तुर्क सरदारों को नियत करना आरम्भ कर दिया था। तुर्क लोग ही प्रायः सेना में भरती किये जाते थे और वे ही अमीरों के चोबदार, अंगरक्षक तथा सीमा प्रान्तों के रक्षक भी होते थे। दसवीं शताब्दी के मध्य तक तुर्कों ने लगभग सारे विभागों से फ़ारसवालों को निकाल कर अपना पैर जमा लिया था। केवल आन्तरिक शासन और साहित्य एवं कला में तुर्कों का हस्तक्षेप नहीं था। परन्तु सैनिक बल उन्हीं के हाथ में था जिससे उनका प्राबल्य बहुत बढ़ गया था। दसवीं सदी के बाद पूरब के देशों में इस्लाम की पताका ले जानेवाले यही तुर्क थे। इनके आचार-विचार तथा साम्राज्य के आदर्श किन प्रवृत्तियों के योग से बने थे, इसका संक्षिप्त वर्णन हम दूसरे अध्याय में कर आये हैं।

महमूद ग़ज़नवी का पिता अमीर सुबुक्तगीन खुरासान के सरहदी तुर्क सरदार का गुलाम था। वह सन् ९७७ में ग़ज़नी पर अधिकार करके स्वतन्त्र हो गया और अपना साम्राज्य पूरब तथा पच्छिम में फैलाने लगा। पीछे के मुसलमान लेखकों ने उसके हमलों इत्यादि को जहाद बतलाया है और उसकी बड़ी प्रशंसा की है कि उसने इस्लाम धर्म का विस्तार करने के अभिप्राय से हिन्दुओं पर चढ़ाइयाँ कीं और मूर्ति-पूजकों का संहार किया। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता†। सुबुक्तगीन का उद्देश्य प्रायः राजनीतिक प्रतीत होता है, क्योंकि उसने अपने राज्य का विस्तार

---

* इस शब्द का अर्थ है 'दो नहरों या नदियों के बीच का स्थान'। इसी से मध्य एशिया के ओस्थान सर और अमू नाम की नदियों के बीच में है, उसे भी इसी नाम से पुकारते हैं।

† इस प्रश्न पर कर्नेल हेग की राय से लेखक सहमत है। देखो के० हि० इ०, जि० ३, पृ० १२ तक (१९२८ का संस्करण)।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

करने में मुसलमानी राज्यों को भी नहीं छोड़ा। पहले तो उसने अपने शासन की त्रुटियों को सुधारा और शान्ति तथा न्याय की स्थापना की। फिर भारतीय सीमा के कुछ नगरों को ले लिया। इससे भारतीय राजाओं से उसकी मुठभेड़ हो गई। उस समय अफ़गानिस्तान राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से भारत में ही सम्मिलित था और ओहिन्द के हिन्दू शाही राजा जयपाल का एक प्रान्त था। जब मुसलमान धीरे धीरे बढ़ते हुए लमग़ान* तक पहुँच गये और वहाँ की बौद्ध जनता उनसे बहुत दुःखी हुई, तो जयपाल को बहुत बुरा लगा और उसने सुबुक्तगीन को पीछे हटाने की ठानी। अतएव वह सेना लेकर लमग़ान पहुँचा। दोनों दलों में कई दिनों तक बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अन्त में बरफ़ का तूफान आ जाने के कारण हिन्दुओं की हिम्मत टूट गई और जयपाल को सन्धि करनी पड़ी। उसने दस लाख दिरहम और पचास हाथी विजेता को देना स्वीकार किया।

परन्तु जब लाहौर जाकर जयपाल ने अपना वादा पूरा न किया, तब सुबुक्तगीन ने लमग़ान में फिर लूट-मार शुरू कर दी। जयपाल ने अन्य देशी राजाओं से सहायता माँगी और कालिंजर, कन्नौज, अजमेर आदि के राजाओं ने उसके सहायतार्थ सेना और रुपया भेजा। तब जयपाल एक बहुत बड़ी सेना लेकर फिर लड़ने पहुँचा। परन्तु फिर उसकी हार हुई, क्योंकि उसकी सेना बड़ी तो बहुत थी, परन्तु भानमती के कुनबे की भाँति बहुविध और अव्यवस्थित थी। इस लड़ाई का फल यह हुआ कि लमग़ान और पेशावर तक का देश ग़ज़नी के राज्य में चला गया। सुबुक्तगीन ने उस प्रान्त पर अपने कर वसूल करनेवाले नियत कर दिये और पेशावर की रक्षा के लिये २००० सेना रख दी। थोड़े दिन बाद घरेलू कलह के कारण ख़ुरासान भी ग़ज़नी के साम्राज्य में मिल गया।

महमूद—सन् ६६७ में सुबुक्तगीन की मृत्यु हुई और थोड़े झगड़े के बाद उसका बेटा महमूद ग़ज़नी का अमीर हुआ। महमूद अपने समय का सब से योग्य सैनिक था। युद्ध-विद्या में वह आरम्भ से ही प्रवीण था। यद्यपि सूरत उसकी बहुत भद्दी थी, तथापि उसकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि उसके सब साथियों को उसके सामने सिर झुकाना पड़ता था। इसी कारण जिस तुर्की सलतनत की बुनियाद उसके पूर्वजों ने डाली थी, उसका विस्तार करना उसी का काम था।

सुलतान की गद्दी पर बैठते ही महमूद को एक अवसर मिला। समनी वंश में फिर उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध हुआ। इससे लाभ उठाकर काशग़ार के अमीर ईलाक़ खाँ और महमूद ने बुखारा का राज्य आधा आधा बाँट लिया। अमू नदी दोनों के बीच की सीमा निश्चित हुई।

सन् ९९९ ई० के अन्त में महमूद ने सुलतान की उपाधि धारण की; और ख़लीफ़ा ने उसे "अमीन-उल् मिल्लत" और "यमीनुद्दौला" के ख़िताब प्रदान किये†।

---

* लमगान काबुल नदी के दक्षिणी प्रान्त का नाम है।

† तभी से गजनवी वंश "यामिनी वंश" कहलाने लगा था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अब वह समनी अमीरों का स्थानापन्न हो गया। इसी समय उसने यह प्रण किया कि हर वर्ष हिन्दुओं के विरुद्ध "धर्म्म-युद्ध" के लिए चढ़ाई अथवा जहाद किया करूँगा। यह प्रण उसने यथासम्भव मरण पर्यन्त निभाया।

महमूद ने सन् १००० से १०२६ ई० तक भारतवर्ष पर सत्रह हमले किये। (१) सन् १००० में उसने सीमा के कुछ शहरों और क़िलों को लूटा और अपने अधिकार में करके उन पर अपने शासक नियत कर दिये। (२) अगले वर्ष (सन् १००१–१००२) वह फिर सेना लेकर पेशावर पर चढ़ आया। भटिण्डा के राजा जयपाल ने बड़ी तैयारी के साथ उसका मुक़ाबला किया। परन्तु उसकी हार हुई और वह सुल्तान के हाथ बन्दी हो गया। बहुत से रुपये लेकर सुलतान ने उसे छोड़ दिया, परन्तु उसने राज्य अपने बेटे को सौंप कर अग्नि से जलकर प्राण त्याग दिये। इसके बाद दो वर्ष तक महमूद सीस्तान आदि को जीतने में लगा रहा। (३) सन् १००३ में पहले-पहल सिंधु नदी को पार कर वह भेरा पर, जो झेलम नदी के किनारे है, चढ़ आया। यह एक बड़े शक्तिशाली स्वतन्त्र राज्य का केन्द्र था। भेरा के राय ने महमूद का चार दिन तक सामना किया और मुसलमानों के पैर उखड़ने लगे। परन्तु अन्त में महमूद के स्वयं एक ज़ोरदार हमले ने उसकी सेना को दबा लिया। राय आत्महत्या करके मुसलमानों के हाथ में पड़ने से बच गया और भेरा ग़ज़नवी राज्य में मिला लिया गया। (४) सन् १००५-६ में महमूद ने सिंधु के मुसलमान शासक को, जो शरीयत से मुनकिर हो गया था, अर्थात् इस्लाम धर्म के नियमों का पालन करने से इनकार करने लगा था, दबाया। (५) भेरा में महमूद ने आनन्दपाल के एक बेटे सुखपाल (नवासा शाह) को मुसलमान करके शासक बना दिया था। वह फिर से इस्लाम धर्म को त्याग कर स्वतन्त्र हो गया। महमूद ने उसे कैद में डाल दिया और भेरा को गज़नी के राज्य में मिला लिया।

(६) भेरा का क़िला सैनिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का था। वह झेलम के किनारे ऐसे स्थान पर बना था जहाँ से उधर तो मुसलमानों पर हमला हो सकता था और इधर देश के अन्दर घुसने का द्वार था। साथ ही महमूद यह भी समझता था कि बिना आनन्दपाल का अन्त किये देश में घुसना असम्भव है। जब तक महमूद सिंधु नदी के उस पार रहा, तब तक देशी राजाओं ने कोई परवा न की। परन्तु जब उसने भेरा ले लिया और १००८ में आनन्दपाल पर चढ़ाई की, तब इस घटना का महत्त्व और भावी आशंका उनको कुछ कुछ दिखाई देने लगी। इसीलिये जब आनन्दपाल ने उनसे सहायता के लिये अनुरोध किया तो ग्वालियर, कालिंजर, क़न्नौज, अजमेर और उज्जैन के राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाएँ उसकी सहायता के लिये भेजीं। मुलतान के खोखर लोगों की भी एक बड़ी सेना आ गई। सारे देश ने बड़े जोश के साथ देश-रक्षा के इस कार्य में सहायता दी*। राजा और प्रजा में देश और धर्म के

* मुसलमान लेखकों ने यह भी लिखा है कि हिन्दू स्त्रियों ने अपने जेवर बेच कर रुपयों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम की कमी नहीं थी। कमी थी संघटन की, विनय की, और उस जातीयता के भाव की जो व्यक्तिगत झगड़ों और स्वार्थ के ऊपर उठ कर सर्वोपरि देश और जाति के लाभ और हानि की चिन्ता करता है। पारस्परिक कलह और जात-पाँत अथवा वंश के मिथ्या गौरव ने उनके दिलों से उच्च राष्ट्रीयता का मंत्र भुला दिया था। वे देश और धर्म की रक्षा तो करना चाहते थे, पर यह नहीं जानते थे कि इस कार्य में सफल होने का मूल मन्त्र क्या है। वे किसी एक सरदार या राय को अपना सर्वोच्च नेता या अधिकारी बना कर नहीं लड़ सकते थे। उनकी आपा-धापी ने पारस्परिक द्वेष और अविश्वास को खूब हराभरा रखा और इस फूट की अग्नि में सब भस्म हो गये। हम ऊपर शासन प्रबन्ध के प्रसंग में बतला आये हैं कि राजपूत काल का राजनीतिक और सामाजिक संघटन ही इस प्रकार का था जिसमें राजनीतिक ऐक्य की आवश्यकता का वे अनुभव ही नहीं कर सकते थे। इसके प्रतिकूल मुसलमानों में विनय (discipline), उद्देश्य की एकता, परस्पर भेदभाव का अभाव और एक नेता का नेतृत्त्व आदि सभी आवश्यक गुण उपस्थित थे। ४० दिन तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने पड़ी रहीं। लड़ाई झेलम के किनारे उन्द नाम के स्थान पर हुई। आरंभ में हिन्दू इतनी वीरता से लड़े कि दम के दम में तीन चार हज़ार मुसलमानों को तलवार के घाट उतार दिया। महमूद के भी होश गुम हो गये। परन्तु भाग्य भी हिन्दुओं से रूठ गया था। इसी समय आनन्दपाल का हाथी बारूद की आग से भड़क कर भाग निकला। अविश्वासी राजाओं ने समझा कि वह हमें धोखा देकर भाग रहा है। बस सारी सेना में भगदड़ मच गई। दो दिन तक ग़ज़नी की सेना उनका पीछा और लूट-मार करती रही। हिन्दुस्तानी फ़ौज के आदमी तो केवल ८००० के करीब ही मरे, परन्तु उनके इस प्रकार भाग निकलने ने स्पष्ट दिखला दिया कि उनमें ऐक्य का कितना अभाव था। भारतीय राष्ट्र की सारी शक्ति इस समय महमूद के सामने पराजित हुई। फल यह हुआ कि फिर वे कभी अपनी रक्षा के लिये इकट्ठे न हो सके और महमूद ने एक-एक करके सब का दमन किया।

इस अवसर से लाभ उठाकर महमूद ने तुरन्त ही सुविख्यात नगरकोट (काँगड़ा) के मन्दिर पर भी धावा बोल दिया। वहाँ से ७००,००० सोने के दीनार, ७०० मन सोने और चाँदी के बर्तन, २०० मन सोना, २००० मन कच्ची चाँदी और २० मन बहुमूल्य जवाहिरात उसके हाथ आये।

(७) सातवाँ हमला उसने गुजरात पर किया। आनन्दपाल ने हिन्दू राजाओं की

सहायता की थी। पर यह बात निराधार जान पड़ती है, क्योंकि उस देश में, जहाँ इतना विपुल धन था कि उसकी खबर सुनकर महमूद उसे लूटने आया, पहली ही लड़ाई में यह नौबत आ गई हो, यह असम्भव है। दूसरे यह भी निश्चय नहीं कि कितने राजाओं ने आनन्दपाल का साथ दिया था। जान पड़ता है कि महमूद की शक्ति की अधिक प्रशंसा करने के लिये ही यह अतिशयोक्ति की गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दशा से हताश होकर उससे संधि कर ली। फिर (८) आठवें हमले में उसने मुलतान ले लिया (१०१०)।

(९) नवें हमले में सुलतान ने थानेश्वर के सैकड़ों मन्दिर तोड़े और लूट-मार की। राय नगर छोड़ कर भागा (१०११–१२)। चलते समय लाखों मरदों और औरतों को गुलाम बनाकर ले गया। उनमें से बहुतों को अपनी सेना में भी भरती किया।

सन् १०१२–१३ में महमूद ने खलीफ़ा से खुरासान के प्रान्त माँग लिये और समरक़न्द पर बिना उसकी अनुमति के ही अपना अधिकार जमा लिया।

(१०) आनन्दपाल के मरने पर उसका बेटा त्रिलोचनपाल गद्दी पर बैठा। वह कायर था। उसका बेटा भीमपाल ('निडर भीम') बड़ा वीर था। उसने अपने दादा (पितामह) की नीति को उलट कर सुलतान से फिर लड़ाई ठान ली। अतएव महमूद को लाहौर के राजा से एक बार फिर लड़ना पड़ा जिसमें हिन्दुस्तान में घुसने का मार्ग खुल जाय। वह सन् १०१३ में चढ़ आया। निडर भीम बड़े भीषण युद्ध के बाद हारा और काश्मीर भाग गया और महमूद ने सारा पंजाब ग़ज़नी की सलतनत में मिला लिया।

(११) अगले वर्ष सुलतान काश्मीर की घाटी में भीम को पकड़ने के लिये घुसना चाहता था, परन्तु लोहकोट के क़िले पर उसे रुकना पड़ा और हार कर लौटना पड़ा। यह पहला अवसर था जब कि महमूद को हार मान कर एक भारतीय क़िले पर से लौटना पड़ा था।

ग़ज़नी लौट कर उसने ख्वारिज़्म को भी अपनी सलतनत में मिला लिया। वहाँ उसका बहनोई शासक था। उसे विद्रोहियों ने मार डाला। महमूद ने उनको निकाल कर ख्वारिज़्म पर क़ब्ज़ा कर लिया।

(१२) सन् १०१४ में उसे भारत के भीतरी भागों पर चढ़ाई करने का अवसर मिला, जिसके लिये वह इतने दिनों से कोशिश कर रहा था। उसके साथ एक लाख फ़ौज तो अपनी थी और बीस हज़ार खुरासान और तुर्किस्तान से आई हुई थी। अब उसके मार्ग में कोई रुकावट न थी। वह यमुना पार करके बरन (बुलन्दशहर) पहुँचा। मुस्लिम लेखकों के अनुसार वहाँ का राजा हरदत्त डर के मारे तुरन्त अपनी दस हज़ार प्रजा के साथ मुसलमान हो गया। वहाँ से महमूद यमुना के किनारे किनारे मलबन पहुँचा। वहाँ के राजा कुलचन्द्र ने युद्ध किया, पर वह पराजित हुआ और उसने अपने परिवार सहित आत्महत्या कर ली।

यमुना की दूसरी ओर भारत का पवित्र तीर्थ, प्राचीन मथुरा नगरी थी। इसकी चहार-दीवारी लाल पत्थर की बनी थी। दो बड़े बड़े द्वार नदी की ओर खुलते थे। सारे मकान पक्के और पत्थरों के बने थे। प्रत्येक में एक एक मन्दिर था। शहर के मध्य में सब से बड़ा मन्दिर था—"जिसकी शोभा वर्णनातीत है।" एक तत्कालीन लेखक का कथन है कि जन-संख्या और विशाल भवनों के विचार से मथुरा नगरी अद्वितीय है। उसका वर्णन मनुष्य की शक्ति से बाहर है। यद्यपि स्वयं सुलतान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महमूद और उसके साथी इस नगर की शोभा और विशालता को देख कर चकित हो गये, तो भी वह उसे तोड़ने से बाज न आया। मन्दिरों को तोड़ कर गिरा देने की आज्ञा दी गई। लूट में सोने की मूर्तियों से ९८३०० मिश्काल* सोना, चाँदी की मूर्तियाँ जो तौली नहीं जा सकीं, दो लाल जिनका मूल्य ५००० दीनार था, एक नीलम जिसका वजन ४५० मिश्काल था; तथा बहुत सा माल और मिला। फिर वृन्दावन के क़िलों को भी उसने लूटा। इसके बाद महमूद अपने सर्वोत्तम सैनिकों को साथ लेकर कन्नौज पहुँचा। यह महाराज हर्षवर्धन की नगरी थी। सात दीवारें इसके चारों ओर थीं और दस हज़ार मन्दिर इसके अन्दर थे। कहा जाता है कि यहाँ का राय राज्यपाल तथा नगर-निवासी भाग गये और सुलतान ने एक दिन में नगर पर अधिकार कर लिया। तब महमूद ने निकट के कई और किले लिये और बहुत सा लूट का माल और हाथी लेकर सत्रह दिन में लौट आया। लूट के कुल माल का मूल्य लगभग ३०००००० दिरहम था। क़ैदियों और दासों की संख्या इतनी थी कि ग़ज़नी के बाज़ार में दो या तीन दिरहम फी आदमी बिका।

महमूद के इन कारनामों पर मुस्लिम जगत ने बड़ी खुशियाँ मनाईं। खलीफ़ा ने उसकी विजय-घोषणा और स्वागत करने के लिये एक विशेष दरबार किया। परन्तु वास्तव में इन कार्रवाइयों से इस्लाम की जीत न हुई, प्रत्युत् उसकी हानि ही हुई। जिन लोगों के धर्म-स्थान नष्ट किये गये थे और जो दास बना बनाकर दूर देशों में पशुवत् बेचे गये थे, वे कभी उस धर्म्म से प्रभावित न हो सके थे जिसके नाम पर यह सब काम किये गये थे†। महमूद जैसे धर्म-प्रचारकों के जीवन-चरित्र इस बात के प्रमाण हैं कि किसी धर्म के अनुयायी ही उसके साथ सबसे अधिक अन्याय करते हैं।

(१३) तेरहवाँ हमला सुलतान ने सन् १०१९ में कालिंजर पर किया। वहाँ के राय नन्द की सेना से महमूद भयभीत हो गया। परन्तु नन्द की सेना स्वयं डर कर रात में भाग खड़ी हुई। महमूद लूट-मार करके जल्दी ही लौट गया।

(१४) अब महमूद ने अनुभव किया कि देश में इतनी दूर दूर तक घुसने के लिये आवश्यक है कि मैं अपना केन्द्र पञ्जाब में बनाऊँ। इस अभिप्राय से वह सन् १०२१ में ग़ज़नी से चला। पहले तो उसने स्वात, बाजोर और काफ़िरिस्तान के लोगों को, जो बौद्ध थे, मुसलमान बनाया। फिर एक बार लोहकोट को लेने का दोबारा प्रयत्न किया; परन्तु विफल रहा। तब उसने लूट-मार छोड़ कर पंजाब में नियमबद्ध शासन स्थापित किया, मुख्य स्थानों पर सेनाएँ रखीं और प्रान्तीय अधिकारी नियत किये। इस प्रकार वहाँ के वीर पुरुषों के वंश का अन्त हुआ।

(१५) सन् १०२२–२३ में सुलतान ने फिर गवालियर और कालिंजर पर

---

* मिश्काल एक तौल है जो १ तोले से कुछ कम होती है।

† देखो, प्रो० हबीब कृत "सुलतान महमूद आफ़ ग़ज़नी" पृ० ४१.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चढ़ाई की। परन्तु दोनों रायों ने बहुत से हाथी देकर सन्धि कर ली और सुलतान वापस लौट गया।

(१६) महमूद का सब से बड़ा आक्रमण सौराष्ट्र के जगद्-विख्यात मन्दिर सोमनाथ पर हुआ। सम-सामयिक लेखकों ने उस मन्दिर का जो वर्णन किया है, उससे पता चलता है कि उस समय वास्तविक धर्म्म का कितना पतन हो चुका था। यह मन्दिर काठियावाड़ में सरस्वती नदी के मुहाने के पास अरब सागर के तट पर था। चन्द्र और सूर्य ग्रहण के अवसर पर यहाँ लाखों यात्री इकट्ठे होते थे। १००० ब्राह्मण प्रति दिन पूजा करते थे। ५०० नर्तकियाँ और २०० गायक सदैव भक्तों का मनोरञ्जन करते थे। ३०० नाई यात्रियों के मुण्डन के लिये रहते थे। बहुत से हिन्दू राजा अपनी कन्याओं को मन्दिर में अर्पण कर देते थे। मन्दिर का व्यय १०००० गाँवों की आमदनी से चलता था। पुजारियों की अकर्मण्यता और अन्ध-विश्वास की यह दशा थी कि जब महमूद की सेना को उन्होंने आते देखा, तब अपने घरों की छत पर से वे उस पर हँसे और कहने लगे कि देव सोमनाथ इन सब को एक पल में नष्ट कर देंगे। ऐसे लोग अवश्य ही विनाश के पात्र थे।

सोमनाथ की चढ़ाई में महमूद का एक प्रशंसनीय काम यह था कि उसने इतने दूरस्थ स्थान पर, जिसका मार्ग एक बीहड़, जल-शून्य रेगिस्तान से हो कर जाता था, बड़ी चतुराई के साथ तैयारी करके चढ़ाई की*। जब मुसलमान नगर में घुस गये, तब हिन्दु लोग प्रायः अपने देवता से प्रार्थना ही करते रहे कि इन यवनों को नष्ट कर दो। परन्तु वे नहीं समझते थे कि सोमनाथ भी अकर्मण्य जाति की सहायता नहीं करते। महमूद ने मन्दिर के अन्दर जाकर सब माल हस्तगत किया और शिवलिंग को रिश्वत लेकर छोड़ देने से साफ इन्कार कर दिया। फिर उसके कई टुकड़े किये गये और वे टुकड़े ग़ज़नी ले जाकर जामा मस्जिद की देहलीज़ में डाले गये। फिर वहाँ से बे-हिसाब लूट का माल लेकर और अनहिलवाड़ा के राय को पराजित करके महमूद वापस लौटा।

(१७) सोमनाथ से लौटते समय मुलतान के जाटों ने उसे तंग किया था। उनसे बदला लेने के लिये वह सन् १०२७ में मुलतान आया और १४०० नावों में अपनी सेना लेकर उसने जाटों के देश पर चढ़ाई की। बहुत से जाट नदी में डुबा दिये गये और उनके बाल-बच्चों को पकड़ लिया गया। यह सुलतान का भारत पर अन्तिम आक्रमण था।

इसके बाद वह दो वर्ष तक सलजूक लोगों को दबाने में लगा रहा और ३० अप्रैल सन् १०३० ई० को ग़ज़नी में मर गया। कहते हैं कि मरने से दो दिन पूर्व उसने अपना सारा असंख्य लूट का धन अपने सामने मँगवाया था; और यह देख कर कि मैं यह सब माल यहीं छोड़कर खाली हाथ जा रहा हूँ, वह अत्यन्त दुःखी

* लगभग सभी लेखकों ने यह माना है कि महमूद मार्ग में अजमेर और साँभर भी गया था। परन्तु यह भूल है। अजमेर उस समय विद्यमान ही न था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ और रोया। यह बात सच हो या नहीं, परन्तु यह ठीक जान पड़ता है कि मृत्यु का भयावह रूप देखकर वह अपनी इस अन्तिम यात्रा के लिये उस साहस के साथ न जा सका जिस साहस से वह भारतीय चढ़ाइयों पर जाता था*।

महमूद का चरित्र और कार्य—महमूद के चरित्र और कार्य के विषय में कई प्रश्न ऐसे हैं जिन पर विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। उसके भारतीय आक्रमणों का क्या उद्देश्य था? क्या वह एक बड़ा योद्धा ही था अथवा शासक और नीतिज्ञ भी था? उसके चरित्र को भली भाँति समझने के लिये हमें इन दो प्रश्नों का उत्तर देना होगा। पहले प्रश्न का उत्तर पाने के लिये उस काल की परिस्थिति समझ लेना आवश्यक है। ग्यारहवीं शताब्दी में अरबी खिलाफ़तों का अन्त हो चुका था। ईरानी सभ्यता का प्राबल्य था, किन्तु राजनीति की बागडोर तुर्कों के हाथ में जा चुकी थी, इसलिये जो उद्देश्य ईरानी राजा पूरा न कर सके, उसे उनके सीमावर्ती सरदारों ने पूरा किया। यह उद्देश्य था पहले तो मध्य एशिया के छोटे छोटे राज्यों को मिलाकर एक बड़े साम्राज्य की स्थापना करना। दूसरे एक सुव्यवस्थित, न्यायपूर्ण शासन और उसके द्वारा शान्ति की स्थापना करके साम्राज्य की समस्त प्रजा को एक सूत्र में बद्ध करना और सुखी बनाना। पहला काम सुबुक्तगीन ने शुरू किया और महमूद ने अपने योग्यतानुसार उसे पूरा किया। परन्तु दूसरा काम करने में वह विफल रहा। तुर्की-ईरानी साम्राज्य की स्थापना में उसने भारतवर्ष की सम्पत्ति को एक साधन बनाया। यद्यपि उसने अपने राजत्व काल के शुरू में ही यह प्रण किया था कि मैं भारत की भूमि में प्रति वर्ष जहाद करूँगा, तथापि उसके परवर्त्ती जीवन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह केवल धर्म प्रचार के उद्देश्य से ही प्रेरित नहीं हुआ था। उसने इस देश पर १७ हमले किये; और यद्यपि इन सब में उसका मुख्य उद्देश्य धन लूटना ही था, पर वह धर्मान्धता के जोश में हज़ारों हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने से भी न चूकता था और मुस्लिम जगत से सराहना प्राप्त करने के लिये उसने यह दिखलाया कि मेरा एकमात्र उद्देश्य अपने धर्म्म का विस्तार करना है। परन्तु हम जानते हैं कि उसकी सेना में हिन्दू, अफ़ग़ान, तुर्क इत्यादि सभी भरती किये जाते थे और किसी को अपना धर्म पालन करने में कोई रुकावट नहीं थी।

पर चाहे महमूद ने जहाद के भाव से प्रेरित होकर कोई चढ़ाई नहीं की, तथापि हिन्दू देवस्थानों और मन्दिरों की इससे कोई रक्षा न हुई। परिणाम यह हुआ कि भारत-वासियों के हृदय में इस्लाम धर्म के प्रति बड़े भय और घृणा के भाव उत्पन्न हो गये।

व्यक्तिगत रूप से भी उसका विश्वास अपने समय के अनुसार ही था। वह एकेश्वर-वादी तो पक्का था, परन्तु जान पड़ता है कि वह युक्तिवादियों (Rationalists) के विरुद्ध न था। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह तत्कालीन अन्य राजाओं के समान

* देखो प्रो० हबीब कृत "सुल्तान महमूद आफ़ गज़नी" पृ० ५७.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ही था। उसकी धार्मिक भावनाएँ उसे मदिरा और भोग-विलास से न बचा सकती थीं। इसके अतिरिक्त वह लालची भी बहुत था। फिरदौसी को शाहनामे की ६०००० पंक्तियाँ लिखने पर सोने के बजाय चाँदी के सिक्के देने में कोई असत्यता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि ऐसा न होता तो वह सुलतान के विरुद्ध अपने अन्तिम पद न लिखता*। उसके साथियों में जो उसका इतना विस्तृत प्रभाव और मान था, वह उसके आचार की उच्चता या धार्मिक गुणों के कारण नहीं था, प्रत्युत् उसकी बुद्धि और मस्तिष्क के गुणों के कारण था। महमूद सुशिक्षित था और साहित्य तथा कला का गुणग्राही भी था, परन्तु उसका सर्वोच्च गुण था युद्ध-कौशल और सेना के नेतृत्व की योग्यता। इसमें उसके समान उसका कोई समकालीन नहीं था। ग़ज़नी एक छोटा सा राज्य था। महमूद ने इसफ़ाहान से बुन्देलखण्ड तक और समरकन्द से गुजरात तक समस्त देशों को जीत डाला। भारत के राजपूत वीरता में उससे कम न थे, परन्तु महमूद का महत्व उसके युद्ध-कौशल में था। एक बड़े सैनिक के सभी गुण उसमें मौजूद थे। भिन्न भिन्न जातियों के मेल से बनी हुई सेना को ऐसे नियन्त्रण और संघटन में ढालना कि वे एक नेता की आज्ञा मानें, बहुत तेज़ी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना, सब स्थानों और क्षेत्रों का चित्र मन में रख कर यह निर्णय करना कि किस जगह चढ़ाई करना सब से अधिक सुगम होगा, इत्यादि गुण उसमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। आलस्य उसके पास न फटकता था। सन् १००४ में उसने एक ही वर्ष के अन्दर मुलतान पर चढ़ाई की और तुरन्त ही बल्ख जाकर इलाक़ खाँ को भगाया और फिर भेरा के शासक सुखपाल को झेलम पर आ पकड़ा। अपनी सेना में वह अच्छे अच्छे योद्धा, चाहे वह हिन्दू हों या बौद्ध, जहाँ से मिलते थे, भरती कर लेता था। इन गुणों के होते हुए भी वह कभी अंधा होकर काम नहीं करता था। वह निर्भयता से, पर खूब देख-भाल कर, काम करता था। कालिंजर की चढ़ाई में अपनी स्थिति सन्तोषप्रद न देखकर वह जल्दी ही लौट गया। सोमनाथ की चढ़ाई से पहले उसने हर प्रकार की पूरी पूरी तैयारी की थी। जब भारत के अन्दर दूर तक घुसने की नौबत आई, तब उसने अपना केन्द्र लाहौर में बना लिया था।

परन्तु संघटन और राज्य-प्रबन्ध के काम की ओर उसकी रुचि न थी। यह काम उसने अपने अन्य कर्मचारियों पर छोड़ दिया था। वे बड़ी मेहनत और ईमानदारी से काम करते थे। परन्तु उनमें राजनीतिज्ञों की दूरदर्शिता और तीक्ष्ण बुद्धि न थी। इसीलिये वे एक स्थिर और उदार संघटन स्थापित न कर सके।

महमूद या उसके वज़ीरों ने शासन में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति नहीं की। जो कुछ पहले था; वही चलता रहा। केवल कर वसूल करने में अवश्य बहुत

---

* इस सम्बन्ध में देखो 'हिस्ट्री आफ़ पर्शियन लिटरेचर', प्रो० ब्राउन रचित, पृ० ११८-११६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कड़ाई हो गई। सुलतान देश-प्रदेश जीतता तो चला जाता था, पर उनमें शान्ति और सुप्रबन्ध स्थापित करने पर ध्यान नहीं देता था। स्वयं वह चाहे कितना ही न्याय-प्रिय क्यों न रहा हो, परन्तु उसके किसी एक दो अवसर पर न्याय-प्रियता दिखलाने पर समस्त साम्राज्य में न्याय विभाग बन जाय और ठीक काम करने लगे, यह असम्भव है। पुलिस का कोई प्रबन्ध उसके राज्य में न था और न डाकुओं आदि को दमन करने का कभी कोई यत्न किया गया। कारखानों की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध न था। प्रजा-रक्षण का जो काम पहले छोटी छोटी रियासतें स्थानीय रूप से कर सकती थीं, महमूद वह भी न कर सका। उसने साम्राज्य के लिये किसी प्रकार के नियम नहीं बनाये। उसके बड़े साम्राज्य में भिन्न भिन्न जातियाँ सुसंघटन से नहीं किन्तु केवल उसके सैनिक बल से बँधी थीं। उनमें वास्तविक ऐक्य का सर्वथा अभाव था। कारण इसका यह था कि सुलतान साम्राज्य का असली उद्देश्य और मूल मन्त्र समझता ही न था। उसका काम उस बलवान पुरुष के समान था जो एक विशाल भवन निर्माण करने के लिये ईंट, पत्थर, चूना, लकड़ी सब सामग्री एकत्र करके उसका ढेर लगा दे, पर यह न जानता हो कि भवन किस प्रकार का और किस तरह से बनाया जाता है। इसीलिये महमूद का यह सब प्रयास निरुद्देश्य एवं निष्फल रहा। तथापि उसको इस बात का श्रेय अवश्य प्राप्त है कि उसने मुसलमानों को स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना सिखलाया। वह पहला मुसलमान था जिसने "सुलतान" की उपाधि धारण की थी।

हिन्दुओं की हार का रहस्य—हिन्दुओं की हार के कारणों का ठीक ठीक अनुमान करना भी एक गहन समस्या है। विद्वानों ने इस प्रश्न पर भी भिन्न भिन्न मत प्रकट किये हैं। परन्तु ध्यानपूर्वक अनुशीलन करने से स्पष्ट कारण समझ में आ सकते हैं।

हिन्दुओं में वीरता, शारीरिक शक्ति, आत्म-त्याग, कष्ट-सहन इत्यादि गुण मुसलमानों से किसी प्रकार कम न थे। वे उस समय भी वीरों की भाँति मरना जानते थे। हिन्दुओं का युद्ध-कौशल भी किसी प्रकार मुसलमानों के युद्ध-कौशल से कम न था। हिन्दुओं के शस्त्र तो शायद मुसलमानों से कहीं बढ़ कर रहे होंगे, क्योंकि सब से बढ़िया फ़ौलाद के बरछे और तलवारें इत्यादि भारत में ही बनते थे। कोई ऐसा नया अस्त्र-शस्त्र मुसलमानों के पास न था जो हिन्दुओं के पास न हो। उनमें स्वदेश और स्वधर्म्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम की भी कमी न थी। वे भय के सामने एक में मिल कर अपनी रक्षा करने को भी उद्यत हो जाते थे। परन्तु उनमें नितान्त अभाव था एक मौलिक गुण का जिसके कारण उनके अन्य सब गुण निरर्थक हो गये। उनमें अभाव था उस विवेक और दूरदर्शिता का जिसके बिना वे राजनीतिक राष्ट्रीय ऐक्य का मौलिक सिद्धान्त भूल गये थे। प्राचीन क्षत्रियों का धर्म था युद्ध करना और और अपने धर्म्म तथा राज्य की रक्षा और विस्तार करना। इस धर्म्म का पालन उन्होंने इस हद तक किया कि वे आपस ही में लड़ने लगे। फल यह हुआ कि जब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समस्त देश और धर्म्म की रक्षा की आवश्यकता पड़ी, तब वे किसी एक को अपना नेता न मान सके। जहाँ सभी नेता हों, उस सेना का ईश्वर ही रक्षक है। दूसरे, महमूद के समान चतुर और युद्ध-कला-निपुण नेता भी उनमें कोई न था। यह बात भी स्पष्ट ही है कि यदि महमूद जैसा वीर पुरुष तुर्क, अफ़ग़ान, ईरानी इत्यादि मुसल-मानों का नेतृत्व करने को न होता तो वे एक अव्यवस्थित जन-समूह की भाँति कुछ भी न कर सकते। महमूद के सैनिक गुण हम ऊपर बतला चुके हैं। हिन्दू सैनिकों में इन गुणों की कमी थी।

राजपूतों की हार का सब से मुख्य कारण यह था कि उस समय के नवीन ब्राह्मण धर्म्म ने उस जाति के समस्त जीवन एवं विचारों को इतना शिथिल तथा पार्थिव बना दिया था कि जातीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका नाशकारी प्रभाव पड़ा। राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रभाव यह पड़ा कि ये लोग देश की सीमा से बाहर जाने से धर्म और जाति के नष्ट होने वाले सिद्धान्त को मानने लगे। फल यह हुआ कि इनकी राजनैतिक एवं सामरिक बुद्धि बिलकुल नष्ट हो गई और सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी ये लोग सर्वथा शिथिल एवं गतिहीन हो गये। बौद्धों से चिढ़ कर उनके प्रति हिंसा और ईर्षा के कारण ब्राह्मणों ने हिन्दुओं का उन अन्तरदेशीय प्रान्तों तक में जाना धर्म के नाम पर वर्जित कर दिया जहाँ बौद्धों या जैनों का सम्पर्क होने का भय था *। आर्य जाति इन स्वार्थी ब्राह्मणों की मानसिक दासता की बेड़ियों में जकड़ गई। इसी का फलस्वरूप वह विचित्र दृश्य है जिसको हम राजपूतों के सामरिक जीवन में देखते हैं। इसी मानसिक दासता के कारण राजपूत राजा यह विचार तो अपने दिमाग़ में एक पल के लिये भी ला ही न सकते थे कि यदि कोई सीमान्त प्रदेश का आक्रमक उन पर बार-बार चढ़ाई करने लगे तो देश की रक्षा के लिये यह आवश्यक नीति है कि सीमा प्रदेश की रक्षा का पूरा और सुदृढ़ प्रबन्ध किया जाय, और शत्रु को अपने घर में घुसने से पहले न केवल रोका ही जाय प्रत्युत उसके घर में जाकर धावा मारा जाय, जिससे उसकी बार २ आने की हिम्मत ही न हो। पर राजपूतों की इस व्यवहारिक बुद्धि को तो उनके गुरुजनों और उनके मस्तिष्क के स्वामियों ने अपने नवीन धर्म के आवरण से ऐसा आच्छादित कर दिया था कि उनको सच्चा और उपयोगी मार्ग दीखना ही बन्द हो गया था। सीमा तक पहुँचने या किसी यवन से छू जाने से उनका धर्म नष्ट हो जाता था। इहलोक की अपेक्षा उनको अपना परलोक बनाने की अधिक फ़िक्र थी। फल वही हुआ जिसके दाग़ से भारतीय इतिहास का पन्ना कभी धुल न पावेगा। संसार भर के इतिहास में यह श्रेय केवल राजपूत जाति

* अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

यानि बिहार, बंगाल, उड़ीसा, सौराष्ट्र आदि प्रान्तों में भी यदि कोई हिन्दू बिना तीर्थयात्रा के अन्य किसी प्रयोजन से चला जाय तो उसका प्रायश्चित होना आवश्यक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ही प्राप्त है कि जब बाहरी आक्रमक घर में घुस आया तब इनकी नींद खुली। वह लूटमार करके लौट गया। कुछ भूमि भी उसने छीन ली। पर यह चुपचाप बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे कि दुबारा हमला हो तो फिर उठ खड़े हों। इस प्रकार हर साल, लगातार दर्जनों हमले होते रहे और यह लोग लम्बी तान कर सोते रहे। यह जानते हुए कि ग़ोरी या ग़ज़नवी सुलतान फिर हमला करेंगे इन्हें एक बार भी, एक क्षण भर को भी, यह न सूझी कि इस आये दिन की आफ़त से अपनी और देश की रक्षा करने का एकमात्र उपाय यह था कि ऐसे आततताइयों को उनके अड्डे पर जाकर ही समूल नष्ट करना चाहिये और अपनी सीमा को इतना सुदृढ़ बनाना चाहिये कि कोई आक्रमक देश में घुस ही न पाये। सैकड़ों बरसों तक इस प्रकार लगातार हमलों के होते हुए भी देश के शासकों और विधाताओं के इस प्रकार स्तब्ध और हतबुद्धि होकर बैठे रहने की मिसाल संसार भर की अन्य किसी जाति के इतिहास में नहीं मिलेगी। इसलिये राजपूतों की हार का मुख्य कारण था उनका विनाशकारी धर्म जिसने जाति के जीवन-तत्त्वों को नष्ट करके उसे उस मुरदे के समान बना दिया था जिसमें न यह समझने की शक्ति हो कि शत्रु उसके शरीर को खाये जा रहा है और न अपनी रक्षा करने की बुद्धि।

इस मौलिक त्रुटि के अतिरिक्त अन्य कारण भी थे। उदाहरण के लिये हिन्दुओं के जाति-भेद और अन्ध विश्वासों ने भी उन्हें काफ़ी कमज़ोर बना दिया था। वे स्वयं अकर्मण्य और प्रमादी बन कर यह आशा करते रहते थे कि हमारे देवता यवनों को नष्ट कर देंगे। चौथे, प्राचीन काल में समस्त जाति का राज्य होता था और राजा सब लोगों की अनुमति से काम करता था। इसीलिये सारी जाति अपनी रक्षा के लिये भी उद्यत रहती थी। परन्तु राजपूत काल में यह काम केवल राजपूतों का ही रह गया था। धर्म्म व्यक्तिगत हो गया था। राज्य के बदल जाने से उस पर कुछ असर नहीं पड़ता था। इसी कारण जनता प्रायः उदासीन थी। फिर राजपूत लोग कोई स्थायी सेना न रखते थे। उनका धन सेना की योग्यता बढ़ाने में कम लगता था और मन्दिरों तथा देव-स्थानों के बनाने में अधिक। युद्ध में भी राजपूत रूढ़ि धर्म्म को न त्याग सकते थे, क्योंकि वे इहलोक से परलोक का अधिक ध्यान रखते थे। चाहे उनका पराजय हो जाय, देश नष्ट हो जाय, परन्तु परलोक हाथ से न जाय। इसके प्रतिकूल मुसलमान हर प्रकार से विजय करना ही अपना जीवनोद्देश्य समझते थे। दोनों के साथ न्याय हुआ। राजपूतों को परलोक प्राप्त हुआ और मुसलमानों को इहलोक।

महमूद के संसर्ग का साहित्यिक प्रभाव; अल बैरूनी—महमूद स्वयं बहुत सुशिक्षित और गुणग्राही था। कहा जाता है कि उसके दरबार में दूर दूर के देशों से आये हुए ३०० कवि रहते थे जिनमें अनसरी, फिरदौसी, असदी, तूसी इत्यादि बहुत विख्यात हैं। फिरदौसी (जो उनमें सर्वोच्च माना जाता था) का शाहनामा संसार के साहित्य में एक ऊँचा स्थान रखता है। इसी प्रकार बड़े बड़े इतिहास-लेखक,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैज्ञानिक, तत्त्ववेत्ता, ज्योतिषी और गणितज्ञ तथा दूसरे अनेक कलाविद् भी उसके दरबार में मौजूद थे। परन्तु उस समय के सब से बड़े तत्त्ववेत्ता, वैद्य और जन्तु-शास्त्रज्ञ ईरानी शेख बूअली सेना ने उसके दरबार में आना कभी स्वीकार न किया और भाग कर राय के शासक के यहाँ शरण ली। पर बूअली सेना के मित्र तत्त्ववेत्ता अबूरैहान को सुलतान ने उसके वतन ख्वारिज्म से पकड़ बुलवाया और निर्वासित करके भारत भेज दिया। यहाँ आकर इस प्रतिभाशाली अद्वितीय विद्वान् ने भारतीय संस्कृति और साहित्य से प्रभावित होकर यहाँ की भाषा (संस्कृत) और अनेक विद्याओं का अध्ययन किया और इस देश के इतिहास तथा सभ्यता पर एक अमर ग्रन्थ 'किताबुल हिन्द' की रचना की। इस ग्रन्थ में भारत के धर्म्म, अध्यात्म विद्या, तर्क, साहित्य, भूगोल, ज्योतिष, इतिहास, रीति-रवाज, सामाजिक अवस्था इत्यादि विषयों का वर्णन बड़ी योग्यता के साथ किया गया है। भारतीय इतिहास की सामग्री में इस पुस्तक का स्थान बहुत ऊँचा है। इसके अतिरिक्त कई अन्य मुसलमान लेखकों (जैसे उतबी, बैहाक़ी इत्यादि) ने भी इतिहास लिखे, जिनमें भारतीय इतिहास की बहुत कुछ सामग्री है।

ग़ज़नवी वंश का पतन—महमूद के मरने पर उसके वंश में गद्दी के लिये झगड़े शुरू हुए। अन्त में बड़ा बेटा गद्दी पर बैठा। यह स्वयं बड़ा बलवान, पर डरपोक तथा विलासी था। इसने ग़ज़नी को छोड़ कर बल्ख को राजधानी बनाया और लाहौर के प्रान्त पर कई शासक नियत किये। इनमें से अहमद नियाल्तगीन ने बनारस पर धावा किया और फिर स्वतन्त्र होना चाहा। तब उसके पिता के विश्वासपात्र सच्चे स्वामिभक्त तिलक ने नियाल्तगीन को हरा कर नष्ट किया। तिलक एक नाई वंश का भारतीय था। उसके रूप तथा अन्य गुणों के कारण महमूद ने उसे उच्च पद पर नियुक्त किया था। सन् १०४० के लगभग मसऊद सलजूक़ों के डर से भाग कर लाहौर आ रहा था, पर रास्ते में मारा गया। सन् १०४२ में उसका लड़का मादूद लाहौर का शासक हुआ। इस समय अवसर पाकर दिल्ली के राजा महिपाल ने हाँसी, थानेश्वर और काँगड़ा फिर से जीत लिया; और लाहौर पर भी चढ़ाई की, परन्तु विफल रहा। मादूद के समय (१०४६) में ग़ौर के अमीर से फिर झगड़ा शुरू हो गया। पंजाब के सूबे को लाहौर और पेशावर के दो भागों में अपने दो बेटों को बाँट कर वह सन् १०४६ में मर गया। मादूद के बाद फिर कई वर्ष तक झगड़े होते रहे और ग़ज़नी की गद्दी पर कोई स्थिरता से न बैठ सका। अन्त को मसऊद का लड़का फ़र्रुखज़ाद गद्दीनशीन हुआ और उसने सन् १०५९ तक राज्य किया। उसके लड़के इब्राहीम ने सन् १०९९ तक (४० वर्ष) बड़ी शान्ति से राज्य किया। इसने फिर से भारत पर कई चढ़ाइयाँ कीं और शायद पारसी बस्ती नवशारी तक भी यह पहुँचा था।

उसके बाद उसका २३वाँ लड़का मसऊद तीसरा अमीर हुआ। इसने सलजूक़ अमीर अर्सलान की पोती से शादी की थी। इसने १७ वर्ष तक शान्तिपूर्वक राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया। इस अवसर में लाहौर के शासक ने फिर एक हमला गंगा के पार तक किया और साम के पुत्र हुसेन को गौर का शासक नियुक्त किया। इसके बाद राजगद्दी के लिये भाइयों में झगड़े हुए और अन्त में बहराम, जिसकी माता सलजूक़ वंश की थी, अमीर हुआ। थोड़े ही दिन बाद उसे लाहौर के शासक बहलीम को दो बार दमन करना पड़ा। बहलीम ने छोटे छोटे हिन्दू राजाओं को पराजित करके पहले-पहल नागोर में मुस्लिम राज्य जमाया। बहराम के पिछले दिनों में गौर से फिर झगड़ा शुरू हो गया। गौर का कुतुबुद्दीन मुहम्मद अपने भाई से लड़ कर ग़ज़नी चला आया और उसने इब्राहीम की लड़की से शादी कर ली। परन्तु उसके चरित्र पर सन्देह होने के कारण इब्राहीम ने उसे ज़हर दिलवा दिया। इसका बदला लेने के लिये उसके भाई सैफ़उद्दीन ने इब्राहीम को निकाल कर ग़ज़नी में अपने भाई बहाउद्दीन साम को शासक बना दिया। परन्तु सन् ११४९ में इब्राहीम ने लौट कर सैफ़उद्दीन को धोखे से मार डाला और उसका भाई उसके शोक में मर गया। तब इनके एक और भाई अलाउद्दीन हुसेन ने इब्राहीम को पराजित करके ग़ज़नी से बड़ा कड़ा बदला चुकाया। उसने सारे नगर को जलवा डाला, वहाँ की क़बरों को खुदवा कर फेंकवा दिया और मकानों तथा क़िलों को ढा दिया। सैयदों को पकड़ कर वध करने के लिए वह गौर ले गया। परन्तु थोड़े दिन बाद वह सुलतान संजार सलजूक़ से हार कर क़ैद हो गया। यह अवसर पाकर इब्राहीम, जो भाग कर भारत में चला आया था, फिर लौट गया। परन्तु थोड़े दिन बाद ही वह मर गया। वह विद्वानों का बड़ा पोषक था। उसके दरबार में विख्यात कवि सनाई रहता था। उसने संस्कृत के पंच तंत्र का अनुवाद अरबी भाषा में कराया था जो "कलेला व दमना" के नाम से विख्यात है। इसी ग्रन्थ का दूसरा अनुवाद "अनवार सुहेली" के नाम से बाद को मुल्ला हुसेन वाइज ने किया था।

बहराम के बाद उसका लड़का खुसरू शाह अमीर हुआ। उसे तुर्कों ने मार कर ग़ज़नी से भगा दिया। वह सन् ११६० में लाहौर में मर गया। अब महमूद के वंशजों के पास केवल पञ्जाब रह गया था। उसके बेटे खुसरू मलिक को मुईज़ुद्दीन मुहम्मद साम ने, जो अपने भाई की ओर से ग़ज़नी का शासक था, खुसरू और उसके बेटे को सन् ११८६ में लाहौर से क़ैद करके गौर भेज दिया। वहाँ वे सन् ११९२ में क़त्ल कर डाले गये। इस प्रकार यामिनी वंश का अंत हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठा अध्याय

सन् १००० से १२०० ई० तक की राजनीतिक स्थिति

पंजाब—महमूद ग़ज़नवी के बाद मुसलमान आक्रमणकारियों के आक्रमण यदा-कदा होते रहे, परन्तु उनमें से कोई पंजाब से आगे राज्य स्थापित न कर सका और राजपूत राजा उनको परास्त करके देश की रक्षा करते रहे। पंजाब में भी महमूद के थोड़े ही दिन बाद उसके वंश का पतन शुरू हो गया जिसका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं।

देहली और अजमेर—चौहान वंश साँभर में राज्य करता था (देखो पहला अध्याय)। ग्यारहवीं सदी के अन्त में पृथ्वीराज प्रथम का पुत्र अजयदेव बड़ा प्रतापी हुआ। उसने अजयमेरु (अजमेर) नगर तथा दुर्ग बनवाये और साँभर को छोड़ अजमेर को राजधानी बनाया। उसकी रानी सौमला देवी भी बहुत योग्य रही होगी, क्योंकि दोनों के नाम के सिक्के अब तक मिलते हैं। उसके बेटे अरणोराज (आणा या अनलदेव) ने अजमेर में आणा सागर झील और आणा बाँध बनवाया। यह अब तक विद्यमान है और इनका दृश्य अत्यन्त सुंदर है। सन् ११५० के लगभग आणा को उसके बड़े बेटे जगदेव ने मार डाला और उसका दूसरा बेटा बीसलदेव या विग्रहराज चतुर्थ राजा हुआ। यह बड़ा महत्त्वाकांक्षी राजा था। उसने अपना राज्य धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ाया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उस समय दिल्ली भारत का प्रधान नगर नहीं था। जो स्थान आज दिल्ली को प्राप्त है, वह उस समय कन्नौज को प्राप्त था। दिल्ली उस समय एक साधारण नगर था जहाँ तँवर वंश के राजपूत राज्य करते थे। विग्रहराज ने दिल्ली को विजय करके वहाँ की लोहे की लाट पर (जो कुतुब मीनार के पास अब तक विद्यमान है) अपनी विजय के स्मारक का एक लेख खुदवाया। बीसलदेव केवल योद्धा ही नहीं, प्रत्युत् बड़ा विद्वान् और विद्याप्रेमी भी था। उसने स्वयं हरिकेलि नाटक रचा और उसके राजकवि सोमदेव ने ललित विग्रहराज नाटक। ये दोनों नाटक अजमेर में बीसलदेव के संस्कृत विद्यालय में, जिसको अल्तमश ने तोड़ कर मस्जिद बना डाला था, मिले हैं। बीसल के बाद उसका छोटा भाई सोमेश्वर राजा हुआ। उसने थोड़े समय तक राज्य किया और सन् ११७५ के लगभग उसका बेटा पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा। उसने दिल्ली में अपना किला बनवाया। इसी समय से दिल्ली का महत्त्व बढ़ा। बीसलदेव के समय से ही चौहान वंश और दिल्ली का महत्त्व बढ़ना शुरू हो गया था; परन्तु पृथ्वीराज ने कन्नौज के गहड़वालों को नीचा दिखा कर भारतीय राजनीति का नेतृत्व उनके हाथ से छीन लिया।

कन्नौज—कन्नौज राजपूत काल में भारतवर्ष का प्रमुख नगर था। हम अभी (पहले अध्याय में) बतला चुके हैं कि सन् १०९० के लगभग गहड़वाल (गहरवार) वंशीय राजा चन्द्रदेव ने अन्तिम प्रतिहार को हटा कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया था। फिर उसने धीरे-धीरे काशी और उत्तर कोशल (अयोध्या) तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेश जीत लिया। उसका पौत्र गोविन्दचन्द्र इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने मगध को जीत कर अपना राज्य बंगाल तक बढ़ाया। वह भोज और बीसलदेव के समान स्वयं बड़ा विद्वान् तथा विद्वानों का पोषक था। उसके संधिविग्रहिक (War & Peace Minister) लक्ष्मीधर ने कानून का एक अत्युत्तम ग्रन्थ लिखा था। गोविन्दचन्द्र ने लगभग सन् १११४ से ११४५ तक राज्य किया। उसके बाद लगभग सन् ११७० में उसका पोता जयचन्द्र कन्नौज का राजा बना। इसी समय गोरी वंश के आक्रमण शुरू हुए।

बिहार—बिहार में इस समय सेनवंशीय लक्ष्मणसेन राज्य कर रहा था जिसका वर्णन हम प्रथम अध्याय में कर आये हैं।

बंगाल में महिपाल ने दसवीं सदी के अन्त से कोई ४५ वर्ष तक राज्य किया और पाल वंश का पुनरुत्थान करना शुरू किया। उसने अपने राज्य का आसाम और उड़ीसा तक विस्तार किया। बौद्ध प्रचारक धर्मपाल उसी के समय में मगध से तिब्बत गया था। उसके बेटे नयपाल ने सन् १०३८ में राज्य शुरू किया और विक्रमशिला से अतीत नामक बौद्ध पण्डित को तिब्बत भेजा। उसका पुत्र विग्रहपाल बड़ा बलवान हुआ। उसने चेदी के कर्ण को पराजित किया। पालवंशीय राजा बारहवीं सदी के अन्त तक सेनों की भाँति पश्चिमी बंगाल (मुँगेर) पर राज्य करते रहे; और ऐसा जान पड़ता है कि सेनों का अधिकार मगध तथा पूर्वी बंगाल पर था।

बुन्देलखण्ड—जान पड़ता है कि ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ से चन्देलों की राजधानी महोबा में थी। राजा गंड चन्देल के पुत्र विद्याधर ने सन् १०२५ से १०३० तक ही राज्य किया। विद्याधर से चौथा राजा कीतिवर्मन बड़ा प्रसिद्ध हुआ। उसने सन् १०६० से ११०० तक राज्य किया। चेदी के कर्ण ने उसे हरा कर कन्नौज से निकाल दिया था, परन्तु अपने सेनापति गोपाल की सहायता से उसने कर्ण को फिर हरा कर अपना राज्य वापस ले लिया। इसके बाद इस वंश में मदन वर्मा बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने सन् ११२५ से ११६५ तक राज्य किया। कहा जाता है कि उसने गुजरात के राजा सिद्धराज और मालवा तथा चेदी के राजाओं को हराया था। उसने महोबे में मदनसागर नाम का एक तालाब और उसके किनारे पर मन्दिर बनवाये थे। मदन वर्मा के बेटे उसके सामने ही मर चुके थे, इस कारण उसके बाद उसका पोता परमर्दि देव (परमाल) राजा हुआ। उसने सन् ११६५ से १२०३ तक राज्य किया। उसकी सेना में बनाफर वंश के दो वीर आल्हा और ऊदल थे जिनका वर्णन चंद बरदाई ने महोबा खण्ड में किया है। उनकी वीरता के कार्यों के कारण उनका और राजा परमाल का नाम बुँदेलखण्ड में आज तक घर-घर याद किया जाता है। परमर्दि को पृथ्वीराज ने पराजित करके उसकी शक्ति को बहुत धक्का पहुँचाया। परन्तु फिर भी महोबा का राज्य कायम रहा। सन् १२०३ में परमर्दि को कुतुबुद्दीन से लड़ना पड़ा। वह महोबा छोड़ कर कालिंजर के किले में चला गया और वहाँ उसकी मृत्यु हो गई। अन्त को उसके सेनाध्यक्ष अजयपाल को किला देने पर मजबूर होना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ा। इस प्रकार चन्देल शक्ति का ह्रास हुआ। परन्तु परमर्दि के पुत्र त्रैलोक्य वर्मा ने कालिजर फिर ले लिया। उसने प्रायः सन् १२०३ से १२४५ तक राज्य किया। उसके बेटे वीरवर्मा का राज्य भिलसा तक फैला हुआ था। इसके बाद सोलहवीं सदी तक चन्देल वंश का कुछ हाल मालूम नहीं। सन् १५४५ में कीर्तिवर्मा ने शेर शाह से युद्ध किया और सन् १४६५ में रानी दुर्गावती ने अकबर से। बंगाल में गिद्धौर रियासत के राजा चन्देलों के वंशज हैं।

चेदी—बुन्देलखण्ड के दक्षिण और मालवे के पूरब में चेदी के कलचुरी या हयहयवंशी राजपूतों का बड़ा भारी राज्य था। इनकी राजधानी त्रिपुरा थी। इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा अमर गांगेयदेव हुआ जिसने अनुमानतः सन् १०२० से राज्य किया और अपना अधिकार बनारस, कन्नौज और तिलंगाना तक जमाया। उसने सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के बनवाये जिनकी नक़ल मुहम्मद तुग़लक ने की। वह मालवापति महाराज भोज से लड़ा था, परन्तु हार गया। जान पड़ता है कि महमूद उसके राज्य तक न पहुँच सका था। उसका पुत्र कर्ण उससे भी अधिक शक्तिशाली हुआ। उसने उत्तर भारत में चम्पारण्य (चम्पारन) तक, अंग-वंग इत्यादि प्रदेशों को जीता। कहा जाता है कि दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राज्यों को भी उसने जीता था। कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों के वर्णन में हम बतला आये हैं कि उसने कन्नौज को भी जीत लिया था। कर्ण भी बड़ा विद्याप्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता था। सन् १०८० के लगभग उसका बेटा यशःकर्ण, जो उसकी हूण पत्नी अवेल्लादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, राजा हुआ और उसने सन् ११२४ तक राज्य किया। इसके बाद कलचुरी वंश के राजा लगभग सन् १२४१ तक राज्य करते रहे। इस वंश का अन्तिम राजा अजयसिंह था। शायद अलतमश के काल में यह राज्य मुसलमानों के अधिकार में आया।

धार—भोज की मृत्यु के बाद कर्ण कलचुरी ने मालवे को जीत लिया, परन्तु थोड़े दिन बाद ही भोज के पुत्र उदयादित्य ने अपना राज्य वापस कर लिया और परमार वंश की शक्ति को पुनः स्थापित किया। उदयादित्य भी अपने पूर्वजों की तरह बड़ा कलाविद् और विद्याप्रेमी था। उसका उदयपुर (मध्य प्रदेश) का शिव-मन्दिर वास्तु-कला का परम उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मन्दिर में उसके बहुत से लेख हैं। जान पड़ता है कि उदयादित्य ने सन् १०५६ से १०८१ तक राज्य किया था। उसका पुत्र लक्ष्मणदेव भी बड़ा विद्वान् तथा विजेता हुआ। उसका भाई नरवर्मदेव, जो उसके बाद राजा हुआ, कवि भी था। इसी प्रकार परमार वंश के अन्य सभी राजा बड़े ज्ञानी और विद्वान् हुए। नागपुर और उज्जैन के महाकाल के मन्दिर इत्यादि स्थानों में उनके बहुत से लेख मिलते हैं जो उनकी योग्यता के सूचक हैं। नरवर्म के पुत्र यशोवर्मा ने कोई सन् ११३३ से ११४३ तक राज्य किया। उसको गुजरात के राजा सिद्धराज ने हरा कर बन्दी कर लिया। इसी समय से मालवे का पतन शुरू हुआ। उसके बाद जयवर्मा के शासनकाल में मालवे का अधिक भाग गुजरात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राजा ने जीत लिया और पूर्वी मालवा पर उसका छोटा भाई लक्ष्मी वर्मन् राज्य करने लगा। इस वंश का अन्तिम स्वतन्त्र राजा देवपाल वर्मन् था। उसने अनुमानतः सन् १२१६-४० तक राज्य किया। उसी के समय में अल्तमश ने मालवे पर चढ़ाई की और उज्जैन के महाकाल मन्दिर को नष्ट किया। इसके बाद कई पीढ़ियों तक मालवे के राजा राज्य करते रहे। अन्त को सन् १३०६ के लगभग देहली के सुलतान ने उसे जीता और धार राज्य का अन्त हुआ। परमारों के वंशज आजकल नरसिंहगढ़, बिजोलिया, राजगढ़ इत्यादि के राजा हैं।

मेवाड़—मेवाड़ में १२वीं सदी के अन्त में सामन्त वंश राज्य करता था। इस वंश का पिछला इतिहास हम पहले अध्याय में दे आये हैं।

अन्हिलवाड़ा—अन्हिलवाड़े (गुजरात) के चालुक्य (सोलंकी) वंश की उत्पत्ति का विषय विवादग्रस्त है। ये लोग शैव थे, परन्तु अन्य मतों के साथ भी सद्व्यवहार करते थे। यहाँ तक कि वे जैन मुनियों तथा विद्वानों का भी बहुत आदर करते थे। इस वंश का संस्थापक मूलराज था। उसनें निज बल से अपना राज्य एवं शक्ति बढ़ाई थी। उसने वृद्ध होने पर पाटन में एक शिव मन्दिर बनवाया और देश के अन्य भागों से ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। कहते हैं कि इसी समय औदीच्य आदि बहुत से ब्राह्मण वंश गुजरात में जाकर बसे थे। सोलंकी राजा मालवे के परमारों से बराबर युद्ध करते रहे। मूलराज के वंशज भीम ने सन् १०२२ से १०६४ तक राज्य किया। इसी के समय में महमूद गज़नवी ने सोमनाथ को नष्ट किया था। भीम भी अपने समकालीन परमार भोज और कलचुरी कर्ण के समान बलशाली था। भीम के पुत्र कर्ण ने कर्णसर नामक तालाब बनवाया और उसके पास कर्णावती नामक नगरी बसाई जिसका नाम अहमद शाह ने अहमदाबाद कर दिया। कर्ण का पुत्र जयसिंह सिद्धराज इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने मालवे पर चढ़ाई करके उसे जीता। वह बड़ा धर्मात्मा भी था। उसने सैकड़ों तालाब और मन्दिर बनवाये। इसके बाद कुमारपाल भी ऐसा ही धर्मपरायण हुआ। उसकी अपने बहनोई बीसलदेव से लड़ाई हुई। वह जैन साधुओं का बड़ा भक्त था और उसने बहुत से जैन मन्दिर बनवाये थे। सन् १२५० के लगभग अन्तिम सोलंकी राजा की निर्बलता के कारण उसके सामन्त स्वतन्त्र होने लगे। बघेल वंश के एक सरदार लवणप्रसाद और उसके भाई वीरधवल ने राज्य पर अधिकार कर लिया। बघेल सोलंकी वंश की ही एक शाखा थी। इस वंश के चार राजाओं ने सन् १३०४ तक गुजरात पर राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा कर्ण (१२८६-१३०४) से अलाउद्दीन के सेनापति ने देश छीन कर मुसलमानी बादशाहत में मिलाया था।

सिंहावलोकन—उत्तर भारत के जिन राजपूत वंशों का वर्णन ऊपर दिया गया है, उनमें बारहवीं सदी के अन्त में चौहान वंशीय पृथ्वीराज सब से प्रसिद्ध, बलवान और प्रतापी था। उसकी राजधानी दिल्ली में होने के कारण उसके राज्य का राजनीतिक महत्त्व सर्वोपरि था जिसको अन्य राजपूतों की भाँति वह भी अनुभव करने में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असमर्थ था। पंजाब तो बाहरी विजेताओं के अधिकार में जा ही चुका था। अब भारत की देहली (चौखट) दिल्ली बाकी थी। बाहरी आक्रमण वहीं रोके जा सकते थे। यदि उस समय पृथ्वीराज एवं अन्य भारतीय राजा इस परिस्थिति के महत्त्व का अनुभव कर सकते तो शायद उनका विनाश इतनी जल्दी न होता। पृथ्वीराज ने अपने बल के अहंकार में महोबे और कन्नौज आदि के निकटवर्त्ती राजाओं पर केवल आक्रमण ही नहीं किये, प्रत्युत् उनको अपमानित भी किया। राजनीतिक ऐक्य के अंकुर का राजपूतों में पहले ही से अभाव था। जो कुछ भ्रातृत्वजनित सहानुभूति थी, उसे भी उसने अपने हाथों खो दिया।

सातवाँ अध्याय

मुहम्मद .ग़ूरी का प्रयास और सफलता

मुहम्मद ग़ूरी के आक्रमण और राज्य-स्थापन—हम पहले बतला आये हैं कि ग़ोरी वंश ने किस प्रकार धीरे-धीरे उन्नति करके अपनी शक्ति बढ़ाई और अन्त में ग़ज़नी से महमूद के वंशजों को निकाल कर स्वयं उस पर अधिकार जमा लिया। ये लोग पूर्वी फ़ारस के निवासी थे। सन् ११६३ में ग़ज़नी को ध्वस्त करनेवाले अलाउद्दीन (जहाँसोज़) का भतीजा, बहाउद्दीन साम का लड़का गयासुद्दीन मुहम्मद बिन साम गद्दी पर बैठा। सन् ११७३ में उसने तुर्कों को ग़ज़नी से मार भगाया और अपने भाई शहाबुद्दीन मुहम्मद साम को उस प्रान्त का शासक नियत किया। इसी का नाम बाद में मुईनुद्दीन या मुहम्मद ग़ोरी हुआ। इन दोनों भाइयों में आजीवन परस्पर बड़ा प्रेम और विश्वास बना रहा। मुस्लिम इतिहास में प्रायः भाई भाई में बड़ा द्वेष-भाव और वैर ही देखा जाता है, एक दूसरे का जानी दुश्मन होता है। परन्तु ये दोनों भाई इस नियम के अपवाद हैं।

सन् ११७५ में मुहम्मद ने मुलतान और उच्च ले लिया और मुलतान के इस्माइलियों को निकाल कर वहाँ एक कट्टर मुसलमान शासक नियुक्त किया।

सन् ११७८ में मुहम्मद ने मुलतान के रास्ते से नहरवाला या अनहिलवाड़ा के राजा मूलराज* पर चढ़ाई की, परन्तु उससे हार कर भागा। ग़ज़नी पहुँचते पहुँचते उसकी फ़ौज के बहुत से आदमी मर गये। यह पहला अवसर था, जब कि उसकी बुरी तरह हार हुई। पर सन् ११७९ में उसने पेशावर ले लिया और सन् ११८१ में लाहौर पर चढ़ाई की। उस समय जम्मू में राजा चन्द्रदेव राज्य करता था। लाहौर के ग़ज़नवी अमीर ख़ुसरू मलिक से उसकी नहीं बनती थी, इस कारण खुसरो ने खोखर लोगों

---

* 'तबक़ात' में भूल से राजा का नाम भीम दिया है। इसी से अन्य लेखकों ने भी वही लिखा है। भीम राजा का छोटा भाई था। देखो वैद्य कृत हि० मि० इ०, जि० ३, पृ० ३ (संस्करण १९२६)।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

मैत्री कर ली और उसकी सहायता से खोखरों ने चक्रदेव को कर देना बन्द कर दिया। इनको दण्ड देने के लिये चक्रदेव ने मुहम्मद ग़ोरी को बुला भेजा*। सन् ११८६ में जब मुहम्मद ने फिर पंजाब पर चढ़ाई की, तब चक्रदेव के लड़के विजयदेव ने उसकी सहायता की। खुसरो मलिक हारा और कैद हुआ और पंजाब पर मुहम्मद का क़ब्ज़ा हो गया। अब मुहम्मद ने देश को जीतने के लिये चढ़ाइयाँ शुरू कर दीं।

मुहम्मद ने पंजाब तो जीत लिया, परन्तु इसका कारण यह था कि इस प्रान्त के शासक ग़ज़नवी वंश के अधःपतित अमीर थे। इसके बाद उसे राजपूतों से काम पड़ा। ये लोग बहुत शूर-वीर, देश-भक्त, धर्म्मनिष्ठ और योद्धा होते थे। लड़ना इनका पेशा ही था। परन्तु इनकी सामाजिक त्रुटियों के कारण इनकी सामूहिक शक्ति अत्यन्त निर्बल थी। इसी कारण राजपूत लोग इतने वीर और निर्भय योद्धा होते हुए भी मुसलमानों से अपने धर्म्म तथा देश की रक्षा न कर सके।

सन् ११९०–९१ में मुहम्मद ने एक बड़ी सेना लेकर फिर चढ़ाई की और सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। सरहिन्द पृथ्वीराज के राज्य की सीमा पर एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। पृथ्वीराज इसकी सूचना पाते ही एक बड़ी सेना लेकर उस तरफ चला। थानेश्वर से बाहर मील और तरावड़ी गाँव से तीन मील के फासले पर नरदिना नामक गाँव के निकट दोनों दलों में युद्ध हुआ†। राजपूतों ने दाहिने और बाएँ पार्श्वों को मार कर पीछे हटा दिया। बीच में मुहम्मद था। उसका सामना पृथ्वीराज के भाई गोविन्दराय से हुआ। मुहम्मद ने अपना बरछा गोविन्द के मुँह पर ऐसे ज़ोर से मारा कि उसके दाँत टूट गये; परन्तु इस वीर ने अपना भाला मुहम्मद की बाँह में मारा और वह घायल होकर भागा। कहते हैं कि सुलतान इस समय पकड़ा गया और उसने ३० हाथी और ५०० घोड़े देकर छुटकारा पाया। पृथ्वीराज रासो में भी ऐसा ही लिखा है। यद्यपि रासो में वर्णित प्रायः सभी घटनाएँ विश्वसनीय नहीं, तथापि संभव है कि यह प्रवाद ठीक हो‡। इसके बाद पृथ्वीराज ने सरहिन्द के क़िले पर घेरा डाला और तेरह महीने के बाद उस पर अधिकार कर लिया।

ग़ोर लौट कर सुलतान ने उन सब सैनिकों को, जो युद्धक्षेत्र से भाग गये थे, बहुत कड़ा दण्ड दिया और बहुत अपमानित किया। तुरन्त ही उसने फिर एक बड़ी सेना तैयार करना शुरू किया और सन् ११९२ में १२०००० सैनिक लेकर वह फिर से भारतवर्ष पर चढ़ आया। इधर पृथ्वीराज ने पूरी तैयारी की और सब राजपूत राजाओं को देश और धर्म्म की रक्षा के लिये मिलकर यत्न करने के लिये बुला भेजा$।

---

* के० हि० इ०, ३. पृ० ३१।

† मे० हि० इ०, (वैद्य कृत) भाग ३. पृ० ३३३, (१९२६ का संस्करण)।

‡ उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० ३३३।

$ चन्द बरदाई ने रासो में लिखा है कि कन्नौज के राजा जयचन्द ने मुहम्मद को बुलाया था। इसी से टाड और मेजर रेवर्टी ने भी यही मत ग्रहण किया है। परन्तु इसमें कुछ सार नहीं है;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहा जाता है कि कोई १५० छोटे बड़े राजपूत राजा इस समय इकट्ठे हुए थे। इस सेना में ३०००० हाथी, ३००००० अश्वारोही और बहुत से पदाति थे। दोनों दल फिर से तरावड़ी के क्षेत्र में आकर मिले। युद्ध छिड़ते ही राजपूतों ने मुसलमानी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। तब सुलतान ने अपनी सेना को पाँच हिस्सों में बाँटा। इनमें से चार को आज्ञा हुई कि शत्रुओं को दाहिने, बाएँ, आगे और पीछे चारों ओर से हमले करके खूब तंग करें और बारी बारी से इस प्रकार पीछे हट जायँ, मानो डर कर भाग रहे हैं। जब फिर से राजपूत सेना इकट्ठी हो जाय, तब फिर सब एकदम हमला बोल दें। पाँचवाँ हिस्सा इस काम के लिये था कि जब राजपूत खूब परेशान हो चुकें, तब एकाएक उनके केन्द्र पर धावा बोला जाय। इसी प्रकार की युद्ध-चातुरी से महमूद ने भी काम लिया था। परन्तु राजपूतों ने पुराने अनुभव से कुछ भी नहीं सीखा था। इस चतुराई के सामने उनकी वीरता और शौर्य सब व्यर्थ रहे। उनकी हार हुई। पृथ्वीराज बंदी हुआ और मार डाला गया। इस हार का इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि फिर किसी राजपूत राजा का साहस न हुआ कि सब राजाओं को एक झण्डे के नीचे इकट्ठा करके बैरी को रोकने का यत्न करता। राजपूतों की हिम्मत टूट सी गई।

युद्ध के बाद सिरसुती, समाना और हाँसी आदि के क़िले मुसलमानों ने बिना रोक-टोक अधिकृत कर लिये और तब सुलतान अजमेर पहुँचा और उसने जी भर कर नगर को लूटा एवं सहस्रों निरपराधों का वध किया। इसके अतिरिक्त उसने बहुत से मन्दिरों और देवस्थानों को भी तोड़कर उनके सामान से मस्जिदें बनवाईं। यह देख कर कि इतने दूरस्थ नगर में किसी मुसलमान शासक का रहना सुरक्षित न होगा, उसने पृथ्वीराज के एक लड़के को अजमेर का शासक नियत कर दिया। इसने सुल-तान को वार्षिक कर देने का वादा किया।

कुतुबुद्दीन ऐबक और उसका काम—ग़ज़नी लौटते समय सुलतान ने अपने सब से प्रिय दास कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय प्रान्तों का शासक नियत किया। वास्तव में इसी कुतुबुद्दीन को भारत में मुस्लिम राज्य की नींव डालने का श्रेय प्राप्त हुआ। बचपन में इसे नीशापुर के शासक ने मोल लिया था। फिर वह मुहम्मद के पास आ गया। उसकी उदारता और चतुराई के कारण मुहम्मद इससे बहुत प्रभावित हुआ और उस पर अपने भाई के समान विश्वास करने लगा।

सब से पहले (सन् ११९२) ऐबक ने हाँसी के मुसलमान किलेदार को जाट से बचाया। वहाँ से लौटते ही उसने मेरठ पर चढ़ाई की और वहाँ के हिन्दू राजा से किला छीन लिया। फिर उसने दिल्ली ले ली (सन् ११९२ के अन्त में) जो अब तक राजपूतों के हाथ में थी और जिसको लिये बिना मुसलमान आगे न बढ़ सकते थे। सन् ११९३ में उसने दिल्ली को शासन का केन्द्र और राजधानी बनाया। इस समय सुलतान का एक और सैनिक पूरब की ओर बंगाल तक पहुँच गया था (इत

क्योंकि यदि ऐसा होता तो समसामयिक मुसलमान लेखक भी इसका उल्लेख अवश्य करते। जान पड़ता है कि चन्द ने पृथ्वीराज के दुश्मन को बदनाम करने के लिए ऐसा लिखा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाल पीछे दिया जायगा)। इसके साथ ऐबक ने दोआब में घुस कर कोइल (वर्तमान अलीगढ़) तक की भूमि हस्तगत कर ली। इतने ही में मुहम्मद कन्नौज पर चढ़ाई करने के लिये फिर आ पहुँचा था। कुतुबुद्दीन ५०००० घुड़सवारों को लेकर उससे जा मिला।

कन्नौज की चढ़ाई—सन् ११९३ में कन्नौज का गहड़वाल राजा जयचन्द अपनी सेना लेकर आगे बढ़ा और चँदवर (वर्त्तमान फीरोजाबाद) के पास यमुना के किनारे दोनों दलों का सामना हुआ। मुसलमानों की हार में कुछ देर न थी; पर दुर्भाग्य से जयचन्द की आँख में एक तीर लगा और वह तुरन्त मर कर अपने हाथी से नीचे गिर पड़ा। बस, उसकी सेना भाग खड़ी हुई। फिर तो मुसलमानों ने उनका खूब पीछा किया और हजारों को तलवार के घाट उतारा। जयचन्द का कोष लूटा; और तब बनारस पहुँच कर हजारों मन्दिरों को तोड़ कर मसजिदें बनाईं और उनका मालमता लूटा।

अजमेर में मुहम्मद के नियुक्त किये हुए शासक को निकाल कर पृथ्वीराज का बेटा हेमराज शासक बन गया था। ऐबक ने उसे हराकर अजमेर में एक मुसलमान शासक नियुक्त किया (सन् ११९४)।

गुजरात, कालिंजर आदि की विजय—सन् ११९५ में ऐबक ने गुजरात (नहरवाला) के राजा पर चढ़ाई कर दी और उसे हरा कर उससे अपने स्वामी मुहम्मद की पहली हार का पूरा-पूरा बदला चुकाया। इसी समय ग्वालियर, बयाना इत्यादि स्थानों को उसने अपने शासन में कर लिया। इस विजय की सूचना पाकर सुल्तान ऐबक से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे ग़जनी बुलवा कर उसका विशेष आदर किया और उसे अपने भारतीय राज्य का शासक नियुक्त किया। वह सन् ११९६ में दिल्ली को लौटा। मुहम्मद ने इस वर्ष फिर से हाँसी और बयाना पर हमला किया और उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। ग्वालियर का किला वह न ले सका। परन्तु राजा ने वार्षिक कर देने का वादा करके छुटकारा पाया।

हिन्दू प्रतिरोध--हिन्दू लोग देश के किसी कोने में अपने मुसलमान विजेताओं से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका सदैव यह प्रयत्न रहता था कि किसी प्रकार अपनी खोई हुई स्वाधीनता फिर से प्राप्त करें। इसलिये हम देखेंगे कि देश के भिन्न-भिन्न स्थानों में जहाँ किसी को तनिक सा भी अवसर मिला, तुरन्त उसने पराधीनता का जूआ फेंकने का यत्न किया। सुलतानी शासन के ३०० वर्ष इसी प्रकार के छोटे-बड़े विद्रोहों की कहानियों से भरे हुए हैं। अपने इस राजनीतिक पतन के काल में हिन्दू लोग अपनी स्वाधीनता को एक क्षण के लिये भी न भूले और उसकी प्राप्ति के लिये लगातार प्रयास करते रहे। अपने धर्म और पवित्र स्थानों का अपमान देख कर वे सुख-शान्ति से न रह सकते थे। उनके मन में बड़ा क्षोभ होता था। परन्तु वे बराबर अपने प्रयास में विफल होते थे। इसका कारण यह था कि वे एकता, सामूहिक शक्ति, सहयोग और संघटन का महत्व भूल गये थे। सामाजिक और नैतिक जीवन के इन परमावश्यक तत्वों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को वे समझ ही न पाये। सैकड़ों सरदारों और राजपूत वीरों ने पृथक् पृथक् स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया और वीरता, कष्टसहन, निर्भीकता एवं आत्म-त्याग से शत्रु दल को भी चकित कर दिया और वे अपना नाम अमर कर गये। बलबन इत्यादि मुसलमान शासकों ने अनेक बार विद्रोहियों को ऐसे दण्ड दिये जिनकी मिसाल इतिहास के पन्नों में कठिनाई से मिलेगी। बच्चों, बूढ़ों, स्त्रियों, सब को काट डाला, हजारों की जीते जी खाल खिंचवाई, या उन्हें सूलियों पर टँगवा दिया, उनके गाँवों को जला डाला, परन्तु सब व्यर्थ। ये स्वाधीनता के पुजारी इतनी भीषण यातनाओं से भी तनिक भयभीत न हुए, और स्वाधीनता के लिये सतत प्रयास करते रहे *।

मेढ़ जाति का विद्रोह (११९७)—हिन्दुओं का यह सतत प्रयास हमें इस युग में बराबर दिखाई पड़ता है। सन् ११९२ के मध्य में जाटों ने हाँसी को वहाँ के मुसलमान शासक से छीन ही लिया था। अब सन् ११९७ में अजमेर प्रान्त के मेढ़ों ने बलवा कर दिया और गुजरात के राजा भीम को बुलवाया कि दोनों मिल कर मुसलमानों को अपने देश से निकाल दें। उस समय ऐबक अजमेर ही में था। उसने तुरन्त उन पर आक्रमण किया। राजा भीम अभी पहुँच भी नहीं पाया था, तो भी मेढ़ लोग बड़ी वीरता से दिन भर लड़ते रहे। अगले दिन भीम की सेना आ पहुँची। मुसलमानों को पीछे हट कर शहर में घुसना पड़ा। हिन्दुओं ने शहर पर घेरा डाल दिया। परन्तु थोड़े दिन बाद जब यह खबर आई कि ऐबक की सहायता के लिये सुलतान एक बड़ी सेना लेकर ग़ज़नी से आ रहा है, तब वे घेरा उठा कर लौट गये।

अन्हिलवाड़ा की चढ़ाई और लूट—जब सुलतान की सेना अजमेर पहुँची, तब ऐबक ने राजा भीम से बदला लेने के लिये अन्हिलवाड़ा पर चढ़ाई कर दी और आबू की तलहटी में दोनों दलों की मुठभेड़ हुई। ऐबक हमला करने से डरा। इतने में हिन्दू पहाड़ की तलहटी से हट कर आगे बढ़ आये। अब उसे अवसर मिल गया और

---

* लेखक का यह विचार है कि समस्त सुलतानी शासन-काल में इन विदेशी शासकों के विरुद्ध एक हिन्दू प्रतिरोध जारी रहा। जिन पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास का पहले-पहल अध्ययन किया, उनको हिन्दुओं की सारी स्वाधीनता की लड़ाई एक अनुचित और तिरस्कार[illegible] राजविद्रोह के रूप में दिखाई पड़ी। वे यह बात भूल गये कि हिन्दू किसी वैध और स्वदेशी रा[illegible] या शासक के विरुद्ध नहीं लड़ रहे थे। राजपूत राजाओं के समय में इन्हीं लोगों ने, जिन्हें यूरो[illegible] इतिहासकार केवल डाकू और लुटेरों के गरोह बतलाते हैं, इस प्रकार का कोई विद्रोह या लूट-[illegible] नहीं की। परन्तु खेद यह है कि हाल के हिन्दुस्तानी इतिहासकारों ने भी अपने पाश्चात्य गुरुओं [illegible] निश्चयों को बिना विचारे मान लिया और बराबर उन्हें उसी प्रकार दुहराते चले आते हैं। लेखक [illegible] सम्मति यह है कि ये सैकड़ों हिन्दू सरदार अपनी स्वाधीनता एवं अपने देश पर विदेशियों से अधि[illegible] छीनने के लिये लड़ते थे, न कि इसलिये कि लूट-मार करना इनका पेशा था। यदि उनमें पू[illegible] संघटन और नये युग के साथ-साथ अपनी युद्ध-कला में भी संशोधन और परिवर्तन करने [illegible] क्षमता होती, और वे अपने प्रयास में सफल हो गये होते तो उनको लुटेरा न कह कर वीर [illegible] की पदवी दी गई होती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने धावा बोल दिया। दिन भर खूब घमासान युद्ध हुआ। अन्त में हिन्दुओं की हार हुई। कहते हैं कि इस युद्ध में १५००० हिन्दू काम आये और २०००० पकड़े गये। ऐबक ने अन्हिलवाड़ा को खूब लूटा और बहुत-सा माल लेकर वापस लौटा।

इसके बाद सुलतान मुहम्मद पाँच वर्ष तक भारत में न आ सका और फलतः उत्तरी भारत में शान्ति रही। परन्तु बंगाल में इख्तियार उद्दीन इस समय भी बराबर चढ़ाई करता रहा।

सन् १२०२ में ऐबक ने विजय-कार्य फिर आरम्भ किया। पहले तो चन्देल राजा के मन्त्री और स्थानापन्न अजयदेव से कालिंजर छीना और नगर में लूट-मार करके ५०००० औरतों और मरदों को कैद किया। मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदें बनाईं। फिर महोबे को अधिकृत किया।

हिन्दू विद्रोह और मुहम्मद की मौत—सन् १२०५ में ख्वारिज्म शाह ने मुहम्मद को बुरी तरह से हराया जिससे उसकी कीर्ति को बड़ा धक्का पहुँचा। यहाँ तक कि यह खबर फैल गई कि मुहम्मद मारा गया। इस समय खोखर और आस-पास की अन्य कई जातियों ने बलवा करके मुलतान और लाहौर छीन लिये। मुहम्मद ने अवकाशाभाव के कारण ऐबक को आज्ञा दी कि इस उपद्रव को शान्त करो। इससे विद्रोही और भी उत्तेजित हो गये। तब उसे स्वयं आना पड़ा। झेलम और चुनाब के बीच में खोखरों से (सन् १२०५ के अक्तूबर मास में) बड़ी भारी लड़ाई हुई। जब शाम को ऐबक भी सुलतान की सहायता के लिये आ पहुँचा, तब खोखरों ने हार मानी। खोखरों को बड़ी निर्दयता से मारा-काटा गया। हजारों खोखर गुलाम बनाये गये और ग़ज़नी के बाज़ार में पाँच-पाँच खोखर एक-एक दीनार को बेचे गये।

सन् १२०६ में ग़ज़नी लौटते समय सिन्धु नदी के किनारे मुहम्मद को शायद इस्माइली फ़िरके के लोगों ने मार डाला। इसके बाद ग़ोरी वंश के सुलतान साम्राज्य को न सँभाल सके और उनके भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शासकों ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

बंगाल का मुसलमानी राज्य में मिलना—सन् ११९३ में, जब कि ऐबक ने दिल्ली में अपना आसन जमाया, दो और मुसलमान सैनिक बदायूँ और अवध को जीत चुके थे। इसी समय अवध के आगे एक तीसरे सैनिक इखतियार उद्दीन बिन बख़तियार ख़िल्जी ने बिहार राज्य के मुख्य नगर उदन्त को लूटा, वहाँ के बौद्ध महन्तों का वध किया और उनका पुस्तकालय तथा और बहुत सी चीजें लेकर दिल्ली वापस आया। ऐबक ने उसका स्वागत किया और उसे बिहार का जागीरदार बना कर लौटा दिया। अब उसने समस्त बंगाल को जीतने की योजना की। सन् १२०२ में सेनवंशी राजा लक्ष्मणसेन पर धोखे से हमला किया*। लक्ष्मणसेन उस समय नवद्वीप (नदिया) में था। इख्तियार उद्दीन वहाँ खूब लूट-मार करके लखनावती (गौड़)

* तबक़ाते नासिरी के लेखक ने लक्ष्मणसेन के भाग जाने की जो बात लिखी है, उसमें बहुत अत्युक्ति है। पाश्चात्य लेखकों ने इसी कथन के आधार पर उसको भीरु लिखा है। यदि यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को लौट आया और उसे राजधानी बना कर बंगाल प्रान्त का शासन करने लगा। वहाँ उसने मस्जिदें, विद्यालय, सराएँ इत्यादि सार्वजनिक भवन बनवाये।

मुहम्मद ग़ोरी का चरित्र और सफलता—तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने मुहम्मद ग़ोरी की उदारता की बहुत प्रशंसा की है। वे कहते हैं कि उसके दरबार में विद्वानों और गुणवानों को आश्रय मिलता था। मुहम्मद कोई बड़ा योद्धा अथवा सैनिक नहीं था। हाँ, उसमें भी नये-नये देश जीतने और लूट-मार करने की वही आकांक्षा थी जो महमूद ग़ज़नवी के मन में थी। परन्तु उसमें एक यह विशेषता थी कि वह केवल लूट-मार से ही सन्तुष्ट न रह कर स्थायी राज्य भी स्थापित करना चाहता था। इसका फल यह हुआ कि भारत में उसने मुसलमानी राज्य की नींव डाली और इस प्रकार उसे इस्लाम की शक्ति को विस्तृत करने का अच्छा अवसर मिला। चाहे उसका उद्देश्य केवल धार्मिक ही न था, परन्तु अन्य मुसलमानों की भाँति उसने भी हिन्दू देवस्थानों को तोड़ने और उनका धर्म नष्ट करने में कसर न की। इसी नीति का यथा-सम्भव उसके उत्तराधिकारी पालन करते रहे; इसी कारण वे बहुत दिनों तक भारतीय जनता के साथ न मिल सके। मुहम्मद ने पहले-पहल इस देश में एक स्थायी मुसलमानी साम्राज्य की नींव डाली। इस बात में वह महमूद ग़ज़नवी से अधिक सफल हुआ। इसके अन्य कई कारणों में से एक कारण यह भी जान पड़ता है कि महमूद की सेना में कोई नैसर्गिक साम्य और एकता नहीं थी। तातार, तुर्क, मुग़ल, अफ़ग़ान, ईरानी, अरबी, हिन्दू, सभी जातियों के लोग उसमें शामिल थे और वे अपने भेद-भावों को अभी अच्छी तरह न भूल पाये थे। परन्तु इस्लाम धर्म्म के नाम पर लड़ने का मन्त्र उनके कान में फूँक कर महमूद ने उस ऐक्य का बीज बो दिया था जो मुहम्मद ग़ोरी के काल तक पूरा फल लाया। इस १५० वर्ष के अवकाश में अफ़ग़ानिस्तान और निकटवर्ती देशों के लोग अपने प्राचीन जातीय भेद-भावों को भूल कर इस्लाम धर्म्म के एक सार्वजनिक मञ्च पर आकर समजातीय बन गये थे, जिस पर महमूद ने उनको पहले-पहल एकत्र किया था। इसका फल यह हुआ कि महमूद को कोई ऐसा योग्य उत्तराधिकारी न मिला जिसके कंधों पर वह अपने कार्य की पूर्ति का भार सौंप जाता। उसके निजी वंशजों का पतन तो पहली पीढ़ी में ही शुरू हो गया था। इसके प्रतिकूल मुहम्मद की सेना में अनेक ऐसे नेता और सरदार थे जो उसी के समान योग्य और जोशीले थे। अपने इन्हीं सच्चे सेवकों के कारण मुहम्मद को भारत में मुसलमानी साम्राज्य के प्रवर्त्तक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। यदि ऐबक, बख़तियार, कुबाचा इत्यादि मुहम्मद के कार्य को अपनी योग्यता और परिश्रम से पूरा न करते तो एक बार फिर मुसलमानी राज्य का वहीं अन्त हो गया होता।

बात सत्य भी हो कि लक्ष्मणसेन को भागना ही पड़ा, तो भी उसे भीरु नहीं कहा जा सकता। उस समय वह अपने विद्यापीठ की यात्रा करने गया हुआ था। उस समय उसके पास कोई सेना न थी; और जब वह भोजन करने को बैठा, तब धोखे से उस पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। ऐसी परिस्थिति में बड़े से बड़ा योद्धा भी सिवा भागने के और क्या कर सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुहम्मद ग़ोरी के उत्तराधिकारी और उनका काम—मुहम्मद का शव ग़ज़नी ले जा कर दफ़नाया गया। इसके बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारी ग़ोरी साम्राज्य पर अपना अधिकार न रख सके। उसके सब दूरस्थ प्रदेश स्वतन्त्र हो गये। उसके भारतीय प्रान्त का शासक कुतुबुद्दीन ऐबक था और ताज उद्दीन किरमान का। सुलतान के मरने पर कुतुबुद्दीन ने सुलतान की उपाधि धारण की और बंगाल तथा मुलतान के शासकों ने उसका प्रभुत्व मान लिया।

लखनौती में भली भाँति स्थित होने के बाद बख़तियार को समस्त पूर्वीय देशों के जीतने की सूझी। उसने एक मुस्लिम की सलाह से सन् १२०५ में १०००० घुड़सवारों की सेना तैयार की और कामरूप के राजा से सन्धि करके वह पहाड़ों में इतना आगे घुस गया कि वहाँ से उसकी सेना सही-सलामत वापस न आ सकी। इख़्तियार उद्दीन स्वयं बड़ी कठिनाई से कोई केवल १०० सवारों के साथ लखनावती पहुँचा और इसी हार के दुःख में उसका देहान्त हो गया। इसके बाद अलीमरदान खिलजी बंगाल का शासक बना।

ताज उद्दीन यल्दुज़ ग़ज़नी का सुलतान बन बैठा था। जब सिंध के शासक नासिर उद्दीन कुबाचा ने अपने श्वसुर ऐबक का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, तब यल्दुज़ ने, जो ग़ज़नी का सुलतान होने के कारण अपने आपको कुबाचा का स्वामी मानता था, उस पर हमला कर दिया। पर ऐबक ने सिंध जाकर यल्दुज़ को मार भगाया। फिर ग़ज़नी जाकर बहुत कठोर शासन किया जिसके कारण अवसर पाकर यल्दुज़ ने उसे फिर वहाँ से निकाल दिया। लाहौर लौट कर ऐबक चौगान खेलते समय घोड़े से गिर कर मर गया (सन् १२१० ई०)।

कुतुबुद्दीन का शासन—मुसलमान लेखकों के अनुसार ऐबक बड़ा उदार, दानी, बुद्धिमान और न्याय-प्रिय था। उसने देहली की शक्ति को स्वीकार कराने और सुसंघटित बनाने के लिये भिन्न भिन्न प्रदेशों के शासकों से सम्बन्ध जोड़े। उसे शासन को उन्नत करने का समय नहीं मिला। हिन्दुओं के साथ उसका वैसा ही बरताव रहा जैसा महमूद ग़ज़नवी या मुहम्मद ग़ोरी का था। उन हिन्दू सरदारों के साथ, जिन्होंने उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, उसने उदारता का व्यवहार किया, अर्थात् उनसे जज़िया और राज-कर लेना स्वीकार करके उन्हें मुसलमान बनने पर विवश न किया। परन्तु अजमेर, बनारस और देहली में उसने एक भी हिन्दू मन्दिर बाकी न छोड़ा *। इन मन्दिरों की सामग्री से उसने मस्जिदें बनवाईं जिनमें अजमेर और देहली की मस्जिदें प्रसिद्ध हैं।

उसके बाद कोई एक वर्ष तक उसके लड़के आराम शाह ने राज्य किया। परन्तु वह बड़ा अयोग्य था, इसलिये दरबारी लोग उसे पसन्द न करते थे। उन्होंने ऐबक के दामाद अल्तमश को बदायूँ से बुलवा भेजा। वह सन् १२११ के अन्तिम दिनों में देहली आया और आराम को हराकर स्वतंत्र रूप से गद्दी पर बैठ गया।

* ई० डि० २, पृ० २१७ और २२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा खण्ड

देहली की सल्तनत, उसका उत्थान और पतन

पहला अध्याय

सल्तनत की स्थापना और संघटन

दास वंश

अल्तमश वंश और राजगद्दी—अल्तमश और ऐबक दोनों अपनी योग्यता के कारण राज्य के मालिक बने थे। जिस प्रकार आराम को अमीरों ने ना-पसन्द करके अल्तमश को बुलाया था, उससे यह बात स्पष्ट है कि ये लोग अभी तक निर्वाचन के सिद्धान्त को अधिक मानते थे।

अल्तमश इल्बारी फ़िरक़े के एक उच्च वंश का तुर्क था। उसके भाइयों ने उसे बेच डाला था। अन्त में उसे ऐबक ने ख़रीद लिया था। वह ग्वालियर और फिर बरन और बदायूँ का शासक रहा था।

उत्तरी भारत की राजनीतिक परिस्थिति और अल्तमश की समस्याएँ—ऐबक ने मुसलमानी राज्य की स्थापना तो कर दी, पर जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, वह उसका संघटन न कर सका। इस समय तीन बड़ी समस्याएँ देहली के सुल्तान के सामने थीं जिनको हल किये बिना वह सल्तनत को सुदृढ़ नहीं बना सकता था। यही समस्याएँ अन्य सुल्तानों के सामने भी रहीं। इन्हीं का निराकरण करने में जितनी-जितनी सफलता सुलतानों को हुई, उसी के अनुपात से उनकी योग्यता का अनुमान किया जा सकेगा।

सब से बड़ी समस्या यह थी कि दास वंश के सुलतान मुहम्मद ग़ोरी के सैनिकों में से ही थे। वे किसी प्राचीन राजवंश के न थे जिसका प्रभुत्व सब को स्वीकृत होता। अन्य तुर्की सैनिक अपने को सुलतान के बराबर ही समझते थे। दूसरे, मुसलमानी राजनीतिक परिपाटी ने उन्हें यही सिखलाया था कि कोई वंश-विशेष राज्य का सदैव के लिये अधिकारी नहीं हो सकता। राजा का पद निर्वाचन पर निर्भर समझा जाता था। फलतः समस्त सैनिक नेता स्वतन्त्र राज्य-स्थापना एवं सल्तनत पर अधिकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने की चेष्टा करते रहते थे। साथ ही एक बड़ा प्रबल दल हिन्दुस्तानी मुसलमानों का उत्पन्न हो रहा था। इनके और बाहरी अमीरों के बीच सदा बड़ा द्वेष और वैमनस्य रहता था। ये लोग भी विद्रोह करने और अपना प्राधान्य स्थापित करने के अवसर की ताक में ही रहते थे। इन विद्रोही दलों को दबाए रखना सुलतान के लिये सब से प्रथम और आवश्यक कर्त्तव्य था।

दूसरी समस्या हिन्दू राजाओं और सैनिकों की थी। सुलतानों की शासन नीति कभी इतनी उदार, राष्ट्रीय अथवा प्रजा-हितकारी न हुई जिससे हिन्दू प्रजा अपनी पराधीनता को भूल कर अपने शासकों के प्रति प्रेम और आदर का भाव रख सकती। इस कारण सल्तनत के आदि से लेकर अन्त तक कोई समय ऐसा न था जिसमें हिन्दुओं के छोटे-बड़े सैनिकों और नेताओं ने जगह-जगह पर विद्रोह की पताका खड़ी न की हो। इस सतत विद्रोह का दमन करते रहना सुलतानों के लिये दूसरा आवश्यक कार्य था।

तीसरी समस्या थी पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा की, जिसने इस काल में बहुत भीषण रूप धारण कर लिया था। बात यह थी कि मध्य एशिया में तुर्क और मुग़ल जातियों के अनेक छोटे-छोटे राज्यों में उस समय बड़ी खलबली मची हुई थी जिसके कारण बहुत से मुग़ल सरदारों को अपना देश छोड़ कर भागना पड़ता था। इसके अतिरिक्त वे राज्य-विस्तार के विचार से भी दूसरे देशों पर चढ़ाई कर देते थे। अतएव चङ्गेज़ ख़ाँ के काल से पूरी दो शताब्दियों तक बराबर मुग़लों के आक्रमण होते रहे जिनसे सल्तनत को बड़ा भारी भय बना रहा और उसके संघटन एवं विस्तार पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

पश्चिमोत्तर की समस्या के इतना जटिल बन जाने का एक और भी कारण था। जेहलुम और सिन्धु के बीच के दोआब में (जो सिंध सागर दोआब कहलाता है) पुराने ज़माने से गक्खर नाम की एक जाति बसती थी। ये लोग पहले तो हिन्दू और मूर्त्ति पूजक थे परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि १२वीं शती से कुछ पहले ही इन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। जब ११वीं शती के शुरू में महमूद ग़ज़नवी ने हिन्दू शाही वंश के राजा आनन्दपाल पर हमला किया तो गक्खरों की एक बड़ी सेना ने उसकी सहायता की और इतनी वीरता से लड़े कि महमूद की सेना के कई हजार सैनिकों को मार काट कर पीछे हटाते चले गये। इतने में हिन्दू सेनापति का हाथी गोले बारूद के फटने की चमक से डर कर भागा तो सारी सेना भाग पड़ी और लड़ाई का तख़ता पलट गया। महमूद की हार होते होते अचानक जीत हो गई और हिन्दुओं की हार हुई। फिर इसी प्रकार गक्खर लोग लाहौर के अन्तिम ग़ज़नवी शासक, खुसरो मलिक की सहायता के लिये मुहम्मद गूरी से बड़े ज़ोर से लड़े। परन्तु जब अन्त में गूरी वंशीय गुलाम तुर्कों का राज्य हिन्दुस्तान पर क़ायम हो गया तब भी गक्खरों का तुर्क सुलतानों से मेल न हो सका, क्योंकि तुर्क सुलतान सिवा अपने फ़िरके के अन्य किसी को कोई पद या अधिकार देना ही नहीं चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि अन्य हिन्दुस्तानियों की तरह गक्खर भी उनके शासन से अत्यन्त असन्तुष्ट रहे और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बराबर उनसे लड़ते रहे। गक्खरों को इस प्रकार दुश्मन बनाये रखने की संकुचित नीति का परिणाम यह हुआ कि एक तो तुर्क सुलतानों का आधिपत्य लाहौर तक ही सीमित रहा, और उसके पच्छिम में गक्खरों का आतंक बना रहा। दूसरे ये गक्खर लोग मुग़लों तथा अन्य बाहरी हमले आवरों को केवल सहायता ही नहीं देते थे परन्तु उनको बुलाते और तुर्कों पर हमले करने के लिये प्रोत्साहित करते थे। परन्तु इन स्वार्थान्ध तुर्क सुलतानों ने कभी भी यह न समझा कि मुग़लों के हमलों से सल्तनत की रक्षा करने के लिये एक आवश्यक नीति यह थी कि गक्खरों से मेल कर लिया जाता।

एक समस्या और भी इन सुलतानों के सामने थी। अर्थात् देश में शान्ति स्थापित करके एक सुदृढ़ एवं योग्य शासन स्थापित करना। यह काम अत्यन्त कठिन था।

अल्तमश का राज्य—अल्तमश का राज्य प्रारम्भ में बहुत थोड़ा था। केवल देहली से बनारस तक के सूबे उसके क़ब्ज़े में थे और इनमें भी तुर्की अमीर और हिन्दू लोग सदैव विद्रोह पर उतारू रहते थे। बाक़ी के सब सूबे स्वतन्त्र हो बैठे थे।

सब से पहले उसने यल्दुज़ को (१२१६) और फिर नासिर उद्दीन कुबाचा को (१२१७) लाहौर से निकाला।

सन् १२२१ में मुग़ल आक्रमण शुरू हो गये। चंगेज़ ने ख्वारिजा पर चढ़ाई की। वहाँ का शाह जलाल उद्दीन भाग कर भारतीय सीमा पर आ गया और उसके बेटे ने लाहोर में शरण ली। वहाँ से उसने अल्तमश से प्रार्थना की कि मुझे देहली में आने दो। परन्तु मुग़लों के भय से सल्तनत को बचाने के लिये अल्तमश ने उसे यह कह कर रोक दिया कि भारत का जल-वायु तुम्हारे अनुकूल न होगा। सौभाग्य से चंगेज़ खाँ सिंधु नदी के इस पार न आकर वहीं से वापस लौट गया और देश एक बड़े भयानक हमले से बच गया।

इन कामों से छुट्टी पाकर अल्तमश ने बंगाल प्रान्त को फिर से अधिकृत करने का इरादा किया। सन् १२२५ में वह बिहार होता हुआ एक सेना लेकर बंगाल पर जा चढ़ा। उसके पहुँचते ही वहाँ के शासक ग़यासुद्दीन ने उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। उसी समय सुलतान ने अपने लड़के नासिरुद्दीन को अवध का सूबेदार बनाया और बिहार पर भी अधिकार स्थापित किया।

सन् १२२६ में उसने रणथंभोर का क़िला फिर से जीता और उसी साल बिजनौर ज़िले में मण्डावर का सुदृढ़ क़िला भी जीता। यह क़िला इस समय राहुप नामी एक अग्रवाल वैश्य के अधिकार में था जिसने पड़िहार राजाओं से उसे छीन लिया था।

अब हिन्दुस्तान पर तो उसका अधिकार जम गया, परन्तु सिंध में कुबाचा अब भी स्वतन्त्र था। सन् १२२७ में उसने कुबाचा पर चढ़ाई की और उसे हरा कर सिंध पर भी देहली का अधिकार जमा लिया। कहा जाता है कि कुबाचा सिंध में डूब गया और सूबा एक प्राचीन राजपूत वंश के शासन में छोड़ दिया गया, जो मुसलमान हो गये थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन् १२२९ के प्रारम्भ में बग़दाद के खलीफ़ा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके अपने एक घोषणापत्र द्वारा उसका सुलतान-ए-हिन्द का खिताब स्वीकार कर लिया और उसके लिये एक खिलअत भिजवाई जिससे उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

सन् १२२६ में बंगाल के शासक ने फिर विद्रोह किया और बिहार के शासक को मार भगाया। इस बार अवध से अल्तमश के लड़के महमूद ने विद्रोही को पराजित किया और बंगाल का शासन अपने हाथ में ले लिया। परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने पर उस प्रान्त में फिर से विद्रोह हो गया। तब सन् १२३० में सुलतान ने विद्रोह को फिर से दमन कर अलाउद्दीन जानी को वहाँ का शासक नियुक्त किया।

सन् १२३२ के आरम्भ में उसने गवालियर के क़िले पर घेरा डाला। ऐबक के बाद राजा मंगलदेव ने इस पर क़ब्ज़ा किया था। कोई दस महीने तक घेरा डाले रखने के बाद राजा रात को बचकर भाग गया और अल्तमश ने क़िले में घुसकर सात सौ निरपराध हिन्दुओं को मरवा डाला। वहाँ से लौट कर सन् १२३३ में उसने बलबन को मोल लिया, जो थोड़े ही दिन बाद सुलतान बना।

इतने दिनों तक प्रयत्न करने के बाद अल्तमश केवल उतने भाग पर अपना अधिकार जमा सका था जितने पर ऐबक का शासन था। अब इसका कुछ विस्तार करने के विचार से उसने सन् १२३४ में मालवे पर चढ़ाई की और भिलसा को लेता हुआ उज्जैन पर पहुँचा। उस नगर को उसने खूब लूटा और मन्दिरों को तोड़ा। वह महाकाल के विख्यात मन्दिर के लिंग, महाराज विक्रमादित्य की प्रतिमा तथा अन्य बहुत सी मूर्तियाँ देहली ले गया।

सन् १२३५ में ईस्लामी फ़िरके के लोगों ने एक षड्यन्त्र रचा और अल्तमश का वध करना चाहा, परन्तु वह बच गया और उस फ़िरके के सब लोगों को उसने मरवा डाला।

सन् १२३६ में वह खोखरों का विद्रोह दबाने के लिये रवाना हुआ, परन्तु मार्ग में बीमार पड़कर देहली लौट आया और थोड़े दिन बाद मर गया। मरते समय उसने अपने जीवित लड़कों में से किसी को भी योग्य न देखकर अपनी लड़की रज़िया को राजगद्दी पर बैठने के लिये नामाङ्कित किया।

अल्तमश का चरित्र और कार्य—अल्तमश दास वंशीय सुलतानों में सब से श्रेष्ठ और योग्य था। उसको सब से अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। ऐबक के जीते हुए लगभग सारे राज्य को उसे फिर से जीतना पड़ा और अनेक विद्रोहों का दमन करना पड़ा। अल्तमश की महत्ता इस बात में थी कि ऐबक को तो सदा ग़ोरी साम्राज्य से बड़ी सहायता मिलती रहती थी, परन्तु उसको अपने बूते पर ही सब काम करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त उसने मालवा और सिंध, ये दो प्रान्त और भी सल्तनत में मिलाये थे। उसने शासन में भी कुछ सुधार करने की चेष्टा की थी। तबक़ाते नासिरी के लेखक मिनहाजुस्सिराज ने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शासक एवं राजनीतिज्ञ के रूप में तो अल्तमश बड़ा चतुर और परिश्रमी था, और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामान्य रूप से कोई अत्याचार भी न करता था। परन्तु अवसर पाने पर मन्दिरों इत्यादि को मिस्मार करने में वह किसी से पीछे न था। धार्मिक संकीर्णता से बरी होना तो उस युग में मुसलमान सुलतानों के लिये बहुत ही कठिन था। परन्तु इस संकीर्णता ने उनकी अन्य प्रकार की योग्यताओं पर पानी नहीं फेर दिया था। अल्तमश इन सुलतानों में सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में अपना स्थान रखता है। तुर्की राज्य का वास्तविक संस्थापक अल्तमश ही था।

अल्तमश बड़ा विद्या तथा कला प्रेमी भी था। वह विद्वानों तथा सूफ़ी सन्तों का बड़ा आदर करता और उनकी संगति में काफ़ी समय बिताता था। इसी कारण वह अपने विचारों में इतना स्वाधीन हो गया था कि उसने अपनी लड़की रज़िया को तख्त पर बिठाये जाने की वसीयत कर दी।

ऐबक की बनवाई हुई जामा मस्जिद को १२३० में उसने दोनों ओर बढ़ा कर उसका आकार दुगने से भी ज्यादा कर दिया। इस मस्जिद के पीछे एक छोटी-सी बिना छत की परन्तु अत्यन्त अलंकृत कब्र है जो अल्तमश की है ऐसा जान पड़ता है। कुतुबमीनार के बारे में विद्वानों में भिन्न मत हैं। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि वह पहले कोई हिन्दुओं की बनाई हुई मीनार थी जिसको बाहरी कटाई-छटाई के द्वारा मुसलमानी रूप इस काल में दे दिया गया। जो हो इसमें सन्देह नहीं कि इस मीनार के पुनर्निमाण में भी अल्तमश ने काफ़ी हिस्सा लिया था। यह मीनार लगभग २२५ फुट ऊँची है।

केन्द्रीय शक्ति का ह्रास और पुनरुद्धार—रोम साम्राज्य के पतन के इतिहास में जगद्-विख्यात लेखक गिबन ने एक स्थान पर पूर्वी राजवंशों के विषय में लिखा है कि ये वंश पतन और उत्थान के एक अटल और अविच्छिन्न चक्र में बँधे हुए पाये जाते हैं। इस सिद्धान्त में चाहे जितनी कम या ज्यादा सचाई हो, पर कम से कम भारतीय तुर्क और अफ़ग़ान वंशों के विषय में तो यह बात बिलकुल ठीक है। एक महान् पुरुष अपने बल-वीर्य और पराक्रम से एक बड़े साम्राज्य की नींव डालता है, परन्तु तुरन्त ही उसके उत्तराधिकारी पतन को प्राप्त होते हैं। उनमें न वीर्य होता है, न पराक्रम; और वे अपने पूर्वज के उठाये हुए भवन को अपनी अयोग्यता के कारण फिर मिट्टी में मिला देते हैं। इसके बाद फिर कोई वीर उत्पन्न होता है और उसका पुनरुद्धार करता है। यह चक्र अन्त तक इसी प्रकार चलता रहता है। इसका कारण स्पष्ट है। जहाँ एक शक्तिशाली मनुष्य के हाथ में विपुल मात्रा में शक्ति और संपत्ति आ जाय और उसके जीवन का आदर्श अपनी मानसिक वासनाओं को पूरा करने के सिवा और कुछ न हो, न समाज-सेवा का कोई नैतिक आदर्श उसके जीवन को प्रेरित एवं उद्दीप्त करने के लिये वर्त्तमान हो, वहाँ ऐसी सुख-संपत्ति का अवश्यम्भावी फल पतन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? राजा के कर्त्तव्यों का कोई पारमार्थिक आदर्श इन सुलतानों के जीवन में विद्यमान नहीं था। यही कारण उनके पतन का होता था। महमूद ग़ज़नवी से लेकर तुर्क सल्तनत के अन्त तक के इतिहास में हमें लगातार यही दृश्य दिखाई पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रुक्नुद्दीन फ़ीरोज़ (अप्रैल—नवम्बर १२३६)—अल्तमश के मरने पर दरबारियों ने उसकी वसीयत के विरुद्ध उसके बेटे रुक्नुद्दीन फ़ीरोज़ को, जो बदायूँ का शासक था, गद्दी पर बैठा दिया और अपनी अपनी जागीरों को रवाना हो गये। उनके बिदा होते ही फ़ीरोज़ और उसकी माँ शाह तुर्कान ने, जो पहले एक बाँदी थी, इतना अत्याचार और अनर्थ करना शुरू किया कि साम्राज्य में चारों ओर खलबली मच गई और बंगाल, लाहौर, मुलतान इत्यादि सूबे स्वतन्त्र हो गये। जब वह पंजाब के विद्रोहियों का दमन करने चला, तब उसके साथी भी उसके दुश्मनों से जा मिले और देहली की जनता ने उसकी माँ के विरुद्ध बलवा करके रज़िया को गद्दी पर बैठा दिया। माँ-बेटे दोनों पकड़ कर मार डाले गये। इस प्रकार छः महीने के अन्दर एक अयोग्य व्यक्ति का अन्त हुआ।

सुलताना रज़िया या सुलतान रज़ियत उद्दीन—इस उथल-पुथल में रज़िया गद्दी पर तो बैठ गई, परन्तु उसको भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। देहली की जनता को छोड़ कर अन्य अमीर उसे सुलताना स्वीकार करने को तैयार ही न थे। सल्तनत का वज़ीर जुनैदी भी उसके विरुद्ध था। मुलतान, हाँसी, लाहौर और बदायूँ के शासक एक गुट बना कर देहली पर चढ़ आये, परन्तु रज़िया ने इस बार बड़ी चालाकी से उनमें परस्पर फूट डलवा दी और उन सब को एक दूसरे पर इतना संदेह हो गया कि मुख्य मुख्य विद्रोही भाग निकले और जुनैदी भी भाग कर सिरमूर की पहाड़ी में जा छिपा और वहीं मर गया। थोड़े समय के लिये रज़िया ने अपनी चतुराई से अपनी धाक जमा ली। उसने लाहौर और मुलतान के प्रान्तों में अपने विश्वसनीय शासक भेजे और सिंध तथा बंगाल के शासकों ने भी उसे सुलताना मान लिया। इसी समय उसने रणथम्भोर को फिर से लेने के लिये सेना भेजी, परन्तु वह विफल रही।

इस प्रकार अपना प्रभुत्व जमता देख रज़िया ने मरदाना लिबास पहनना और परदे को त्याग कर खुले मुँह दरबार में बैठना शुरू कर दिया। इस पर भी काफ़ी असन्तोष फैला। परन्तु जब उसने याकूत नामी एक हबशी को अमीर आखोर (अर्थात् अस्तबल का अफ़सर) बना दिया तो अन्य अमीर लोग बिगड़ गये। रज़िया का याकूत से कोई अनुचित सम्बन्ध रहा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता; परन्तु एक अफ्रीका-निवासी का वज़ीर बन जाना तुरकी अमीरों को किसी प्रकार सहनीय न था। इस असन्तोष की आग शीघ्र ही दूर तक फैल गई और प्रान्तों में फिर से बलवे हो गये। विवश होकर रज़िया को फिर से फ़ौज लेकर उन्हें दबाना पड़ा। तुर्की अमीरों ने भटिण्डा के शासक इखतियार उद्दीन अल्तूनिया को भड़का दिया। अन्त को रज़िया और याकूत हार गये। अमीरों ने याकूत को पकड़ कर मार डाला और सुलताना को बन्दी कर के अल्तूनिया की हिरासत में रख दिया। इधर देहली में अमीरों ने अल्तमश के तीसरे लड़के बहराम को गद्दी पर बैठा कर अपने नेता इखतियार उद्दीन एतिगीन को वज़ीर बनाया, परन्तु अल्तूनिया को कोई लाभ न हुआ। एतिगीन ने राज्य पर इतना अधिकार जमाया कि बहराम के लिए असह्य हो गया और उसने एतिगीन तथा वज़ीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निज़ामुलमुल्क को मरवाने का यत्न किया। एतिगीन तो मर गया पर वज़ीर सिर्फ़ ज़ख़मी हुआ। परन्तु उसकी शक्ति नष्ट हो गई। अल्तूनिया तो देहली के अमीरों से असन्तुष्ट था ही, उसने यह अवसर देखकर रज़िया से शादी कर ली और देहली को फिर जीतने के लिये चढ़ाई कर दी। परन्तु बहराम ने उनको हरा दिया और उनके हिन्दू साथियों ने ही दोनों को मार डाला।

चालीस शम्सी अमीरों का गुट—बहराम भी इस विद्रोह का दमन करने में असमर्थ रहा। कारण यह था कि दास वंशीय अमीर बहुत प्रबल हो गये थे और सुलतान का अधिकार मानने को तैयार नहीं थे। अल्तमश के समय में ४० मुख्य मुख्य अमीरों ने एक गुट बना लिया था। ये लोग बहुत शक्तिशाली थे। अल्तमश ने तो अपनी योग्यता से इन लोगों को क़ाबू में रखा था, परन्तु उसके बाद इन्हें कोई शान्त न रख सका। साथ ही उनमें आपस में भी इतनी ईर्ष्या थी कि किसी एक को सुलतान बनाने के लिये दूसरे तैयार न होते थे, तो भी अधिकार सारा अपने ही हाथ में रखना चाहते थे।

बहराम को गद्दी पर बैठते देर न हुई थी कि देहली में फिर से उपद्रव शुरू हो गये। उसके वज़ीर एतिगीन, निज़ामुलमुल्क इत्यादि आपस में भी परस्पर द्वेष रखते और किसी पर विश्वास नहीं करते थे। इधर मुग़लों ने मुलतान और लाहौर पर फिर हमला कर दिया। बहराम लाहौर के शासक को कोई सहायता न पहुँचा सका और लाहौर को मुग़लों ने बिलकुल मिस्मार कर दिया। बहराम ने अमीरों को आज्ञा दी कि लाहौर की रक्षा के लिये जाएँ। इसलिए उन्होंने बलवा कर दिया और बहराम को मार डाला।

इसके बाद उन्होंने मसूद (फ़ीरोज़ के बेटे) को सुलतान बनाया। इसके समय में कटेहर के जमींदारों ने बलवा शुरू किया और बिहार के हिन्दू शासक लोग भी स्वाधीन हो बैठे। बदायूँ के शासक ने कटेहर को तो शान्त कर लिया परन्तु बिहार और बंगाल स्वतन्त्र हो गये। इसी प्रकार मुलतान भी स्वतन्त्र हो गया। मसूद के राज्य काल में मुग़लों के दो आक्रमण हुए। पर उसके स्वयं मुलतान पहुँचने पर वे लोग वापस लौट गये (१२४५)। मुलतान का शासक अबुबक्र स्वतन्त्र हो बैठा।

मसूद ने काफ़ी योग्यता से राज शुरू किया था। यदि उसको अमीरों का सहयोग मिला होता तो उसका इस प्रकार अन्त न होता। उसने एक बड़ा सराहनीय काम यह किया कि अपने दो चाचाओं (अर्थात नासिरुद्दीन और जलालुद्दीन) को क़ैद से मुक्त करके पहले को बहराइच और दूसरे को कन्नौज का शासक बनाया। यद्यपि ये दोनों १६ या १७ बरस के नवयुवक थे तो भी इन्होंने अपने-अपने प्रान्त का शासन करने में बड़ी योग्यता दिखलाई। इनमें से पहला वही नासिरुद्दीन महमूद था जो मसूद के तख्त से उतारे जाने पर बादशाह बना। मसूद पिछले दिनों में कुछ सुस्त और विलासी हो गया होगा ऐसा जान पड़ता है। परन्तु उसके ह्रास का मुख्य कारण यह था कि उसने ४० अमीरों के गुट को नाराज़ कर लिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नासिरुद्दीन महमूद का राज्य और बलबन का शासन—नासिरुद्दीन महमूद अल्तमश का एक छोटा लड़का था। कहते हैं कि वह बड़ा दयालु और सच्चरित्र था, परन्तु मुसलमान लेखकों ने उसकी प्रशंसा में बहुत अत्युक्ति से काम लिया है। मिनहाज कहता है कि सुलतान के केवल एक पत्नी थी और वह अपना व्यय कुरान की नक़लें करके उसकी आमदनी से चलाता था। यह सब बातें विश्वसनीय नहीं हैं। उसके कई स्त्रियाँ थीं। उसकी मुख्य रानी बलबन की लड़की थी। एक बार उसने इतिहास लेखक मिनहाज उस्सिराज की बहन को ४० कनीज़ें उपहार में दी थीं। इन बातों से स्पष्ट पता लगता है कि नासिरुद्दीन के प्रासाद में इस प्रकार की सामग्री की कमी नहीं थी। जान पड़ता है कि वह एक सच्चरित्र और उदार पुरुष था और स्वयं अपने लिए बहुत अधिक व्यय नहीं करता था। वह ऐसा साधु अथवा त्यागी भी नहीं था कि राज्य करने की इच्छा ही उसे न हो। इतिहास लेखक मिनहाज ने उसको साधु और त्यागी बतलाने का प्रयत्न किया है। परन्तु सच्ची बात यह थी कि नासिरुद्दीन को बलबन ने अपना आधिपत्य जमाने की ग़रज़ से इतना दबाया था कि उसे किसी शासन के काम में हाथ लगाने ही न देता था। नासिरुद्दीन उम्र में बहुत छोटा था परन्तु यह खूब समझता था कि बलबन को नाराज़ कर देने से उसका वही हाल होगा जो बहराम और मसूद का हुआ था। इसलिये वह चुपके से बलबन की अनुचित काररवाई को सहता रहा और ज्योंही उसे अवसर मिला और उसने देखा कि बलबन ने अपने घमण्डी बर्त्ताव के कारण तुर्की दल को भी अपना दुश्मन बना लिया है और इधर हिन्दुस्तानी दल रैहान के नेतृत्व में उसका (सुलतान का) साथ देने को तैयार है, तैसे ही उसने बलबन को पद से हटा कर बाहर निकाल दिया। यदि नासिरुद्दीन साधू वृत्ति का होता तो तख्त पर बैठाये जाने का बुलावा पहुँचते ही स्त्री के वेष में छिप कर भागा हुआ न आता और न अपने भतीजे सुलतान मसूद का, जिसने क़ैद से निकाल कर उसे बहराइच का शासक बनाया था, वध कराके, सुलतान बनने को ही तैयार होता। परन्तु साम्राज्य और राज-सिंहासन के प्रलोभन के कारण वह इतना अंधा हो गया था कि अपने परम उपकारी भतीजे, जिसकी दया के कारण ही वह इस योग्य हुआ था, और जो यदि चाहता तो उसे क़ैद में ही मरवा डाल सकता था—उसको तख्त से हटवाने और मरवा डालने में उसको एक पल भर भी हिचक न हुई। इन बातों से स्पष्ट है कि नासिरुद्दीन महमूद भी अन्य सुलतानों के समान ही था, उसमें कोई विशेष त्याग-वृत्ति न थी। मिनहाज ने बलबन के अनुचित एवं अनधिकार उद्धत बर्त्ताव को छिपाने के हेतु, इन दोनों का झूठा चित्र खींचने की व्यर्थ चेष्टा की है, क्योंकि मिनहाज बलबन का सेवक एवं उपकृत था और उसके दल का एक सदस्य था।

बलबन—ग़यासुद्दीन बलबन एक ऊँचे तुर्क घराने का था। वह बचपन में मुग़लों के हाथों पड़कर बसरा में दास बनाकर बेचा गया और वहाँ से भारतवर्ष आया। यहाँ उसे अल्तमश ने खरीद लिया। अपनी असाधारण योग्यता के कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसने बहुत जल्दी उन्नति की। अल्तमश ने उसे ख़ासा-बरदार बनाया ; रज़िया ने अमीरे-शिकार और बहराम ने रिवाड़ी का शासक, जहाँ से उसने सन् १२४५ में मुग़लों की चढ़ाई रोकी और अन्त में नासिरुद्दीन महमूद ने उसे अपना वज़ीर बनाया।

महमूद के सुलतान बनते ही १२४६ में वही समस्याएँ उसके सामने भी आईं। अर्थात् हिन्दू और मुस्लिम सरदारों के विद्रोह और उत्तर-पश्चिमी सीमा पर बाहरी जातियों के आक्रमण होने लगे। बलबन को इसी वर्ष चुनाब के पार जाकर खोखर तथा अन्य हिन्दू जातियों का दमन करना पड़ा। इसी समय मुग़लों की एक सेना भी झेलम नदी के उस पार तक आई, परन्तु बलबन को युद्ध के लिये तैयार देखकर लौट गई।

अगले वर्ष उसे कई स्थानों पर हिन्दू सरदारों का दमन करना पड़ा। पहले तो दोआब में क़न्नौज का क़िला लिया और यमुना के किनारे पर मलकी के राना को परास्त करके स्त्री-बच्चों और अन्य बहुत से लोगों को क़ैद करके लौटा।

सन् १२४९ में बलबन ने बड़ी कठोरता से मेवात के उपद्रवी हिन्दुओं का दमन किया और फिर चौहान राजा नाहरदेव से रणथम्भोर लेने का यत्न किया, परन्तु विफल रहा और देहली लौट आया। सन् १२५० के आरम्भ में फिर दोआब में हिन्दू विद्रोह शुरू हो गये थे जिनको फिर से दबाना पड़ा।

इस समय उत्तरी सीमा के मुस्लिम सरदारों में आपस के झगड़े खड़े हो गये और कुछ लोगों ने विद्रोह भी किये जिनको शान्त करने में लगभग एक वर्ष बीत गया। सन् १२५२ में बलबन ने मालवे पर चढ़ाई की और चँदेरी तथा नरवर के राजा चाहड़देव से युद्ध किया, परन्तु इसका फल अनिश्चित रहा। केवल लूट-मार करके और कुछ लोगों को पकड़ कर बलबन देहली लौट आया।

बलबन और तुर्की दल का ह्रास—तत्कालीन लेखकों के विवरण ध्यान से पढ़ने से साफ़ पता चलता है कि उस समय देहली के दरबार में दो दल थे—एक तुर्कों का और दूसरा नव-मुस्लिमों का अर्थात् उनका जो हिन्दू से मुसलमान हो गये। इस दल का नेता अमीर ईमादुद्दीन रैहान था। यह भी सुलतान के बड़े अमीरों में से था और बड़ा चतुर एवं दूरदर्शी था। तुर्की अमीर नव-मुस्लिमों के साथ बराबर का बर्ताव नहीं करते थे, उनको घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनसे मेल-जोल न रखते थे। इस कारण ये लोग तुर्कों को नीचा दिखाना चाहते थे। बलबन ने शासन में इतनी मनमानी करनी शुरू की कि सुलतान को बिलकुल निरर्थक और निश्शक्त सा कर दिया। इसलिये जब सन् १२५२ में बलबन मालवे पर चढ़ाई करने गया, तब रैहान को अवसर मिल गया। उसने सुलतान को सुझाया कि बलबन का इतना प्राधान्य अनुचित है। सुलतान स्वयं भी उससे तंग था। वह तो ऐसे अवसर की ताक में ही था क्योंकि वह स्वयं शासन करना चाहता था और बलबन अपने स्वार्थ के कारण उसको एक कठपुतली के समान रखता था। उसने तुरन्त ही रैहान की सलाह मान ली। रैहान को इस कार्य में उन तुर्क अमीरों से भी सहायता मिली जो बलबन के अनुचित प्राबल्य के कारण उससे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिगड़ गये थे। रैहान का नीति-कौशल इसी से जान पड़ता है कि उसने तुर्क अमीरों में परस्पर फूट डलवा दी। बलबन को रैहान ने नागौर भिजवा दिया और अन्य तुर्की सरदारों को भी खूब नीचा दिखाया। ४० अमीरों में से एक भी ऊँचे पद पर न रह गया और हर जगह रैहान के आदमी नियत किये गये। यह देखकर तुर्क अमीरों की आँखें खुलीं। इधर बलबन ने उनसे अपील की कि उनकी परस्पर फूट के कारण उनकी यह दशा हुई है। तब वे रैहान का अधिकार नष्ट करने पर उतारू हो गये*। सब ने मिल-कर रैहान को निकलवाने और बलबन को बहाल कराने के लिये नासिरुद्दीन के विरुद्ध सेना इकट्ठी की तो रैहान ने ऐसी तय्यारी करके सुलतान के साथ उनका मुकाबला किया कि वे घबरा गये और अपने दो प्रतिनिधि भेजकर सुलतान से सुलह करने के लिये बातचीत शुरू की। ये वही तुर्की अमीर थे जिन्होंने पिछले तीन चार बादशाहों को तिनके की तरह निकाल कर फेंक दिया था। इन्हीं ने अब नासिरुद्दीन से कहा कि 'हम सब तो आपके सच्चे सेवक हैं। हम लड़ना कब चाहते हैं? हम तो केवल यह चाहते हैं कि आप तुर्की दल के शत्रु रैहान को मन्त्री-पद से अलग करके बलबन को फिर से नियुक्त कर दें। सुलतान को परिस्थिति के अनुसार कार्य करना पड़ा। रैहान बदायूँ भेज दिया गया। रैहान ने लगभग ढाई वर्ष शासन किया। इस अवकाश में कटेहर के हिन्दू सरदारों ने फिर बलवा किया और रैहान के सुयोग्य परामर्श से सुलतान ने स्वयं इस विद्रोह का दमन किया। फिर जब तुर्कों ने दिल्ली पर चढ़ाई की, तब सुलतान उनसे लड़ने के लिये सेना लेकर गया। इससे साफ़ साबित होता है कि नासिरुद्दीन इतना त्यागी नहीं था कि कुछ राज-काज करना ही न चाहता हो, परन्तु बलबन बड़ा दबंग आदमी था और उसे कुछ करने ही न देता था। यह कथन भी बिल्कुल निराधार है कि रैहान के काल में शासन अव्यवस्थित हो गया था। पर उसके विरोधी दल को अवश्य कष्ट उठाना पड़ा था।

वज़ीर के पद पर लौटते ही बलबन ने पहले तो उन सब लोगों को, जो उसके विरोधी दल में शामिल थे, निकलवाया। फिर पश्चिमोत्तर सीमा के पास कई विद्रोह दमन किये। सन् १२५७ ई० के दिसम्बर में मुग़लों की एक बड़ी सेना ने आकर मुलतान ले लिया और वे लूट-मार करके लौट गए। यदि वे आगे बढ़ कर देहली पर भी हमला करते तो उसकी रक्षा कठिन हो गई होती, क्योंकि उस समय चारों ओर उपद्रव हो रहे थे और सल्तनत की शक्ति अस्तव्यस्त हो रही थी। जब मुग़लों के डर से

* तबक़ात-ए-नासिरी का लेखक मिनहाज उस्सिराज स्वयं उन तुर्क अमीरों के दल में था जिनको रैहान ने पदच्युत कराया था। वह लिखता है—'उन तुर्क मलिकों के लिये, जिनको शासन करने, प्रभुत्व रखने और युद्ध करने की आदत पड़ी हुई थी, यह कैसे सम्भव था कि वे ऐसा निरादर सह सकते' (अर्थात एक हिन्दुस्तानी अमीर का शासन और प्राधान्य मान लेते)। देखो ईलियट, २, पृ० ३७१। कौन जाने, रैहान का यह प्रयास भी उसी हिन्दू प्रतिरोध का निदर्शन हो जिसकी आग समस्त हिन्दुस्तानी प्रजा के मन में अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध भड़क रही थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुलतान ने अपने जागीरदारों से सहायता माँगी, तब अवध और कड़ा के जागीरदारों ने आने से इनकार कर दिया। इधर दोआब के हिन्दू फिर से विद्रोह कर रहे थे। उधर मेवाती लोग बलबन की सेना के ऊँट तक छीन ले गये थे जिसके कारण सेना का आगे बढ़ना असम्भव था। पहले दोआब के हिन्दुओं को दमन करने में पूरे चार मास लगे, फिर विद्रोही जागीरदारों की बारी आई। अभी इनसे छुट्टी ही न पाई थी कि हिन्दुओं का फिर से बलवा हो गया। अब सन् १२६० में बलबन मेवों (मेवातियों) को दमन करने का काम प्रारम्भ कर सका। ये लोग इतने सशक्त हो गये थे कि देहली के चारों ओर सैकड़ों मील तक इन्होंने लूट-मार मचा रखी थी और गाँव के गाँव इनके डर से उजाड़ हो गये थे। यहाँ तक कि उन्होंने बलबन की सेना के बार-बरदारी के ऊँट भी लूट लिये थे। बलबन ने एक बड़ी सेना लेकर मेवों को अचानक जा घेरा और हज़ारों को तलवार के घाट उतारा और हज़ारों को क़ैद करके और उनका सब माल लूट कर वापस आया। देहली आकर उसने क़ैदियों को भी क़त्ल करवा डाला, परन्तु मेव फिर भी न डरे। जो जान बचा कर भाग गये थे, वे फिर से लौट आये और सड़कों पर लूट-मार करने लगे। बलबन ने उनके अड्डों का पता लगाकर फिर से उन पर हमला किया और १२००० मेव मर्दों, औरतों और बच्चों को देहली लाकर एकदम से क़त्ल करवा डाला। इतना भयानक दण्ड देने पर मेवों के बलवे थोड़े दिनों के लिये शान्त हो गये।

इसके पश्चात् छः वर्ष तक क्या हुआ, इसका कोई वर्णन नहीं मिलता। परन्तु यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि कोई नई कथनीय बात इस काल में नहीं हुई। वही एक ओर स्वाधीनता का युद्ध और दूसरी ओर पाशविक बल से दमन और दण्ड की कहानी जारी रही होगी। सन् १२६६ के फ़रवरी मास में महमूद की मृत्यु हो गई और बलबन बिना रोक-टोक सुलतान के सिंहासन पर बैठ गया। मृत्यु के समय नासि-रुद्दीन महमूद केवल ३६ बरस का था। मिनहाज ने तो इस घटना के कारण को छिपाने की कोशिश की है परन्तु वस्साफ़ और इब्न बतूता का यह कथन ठीक ही जान पड़ता है कि बलबन ने महमूद को मरवा डाला था क्योंकि एक बलबन जैसा मनुष्य अपने उस निरादर को कभी नहीं भूल सकता था जो सुलतान ने उसे मन्त्री पद से हटाकर किया था। दूसरे सुलतान अभी युवक था और बलबन बूढ़ा हो चुका था। यदि वह सुलतान को जीता रहने देता तो उसकी सारे जीवन की बादशाह बनने और बाद-शाहत को अपने वंशजों के लिये धरोहर छोड़ जाने की, जलती हुई वासना पूरी न होती। बलबन के इस दुष्ट इरादे का सुलतान के भाई जलालुद्दीन को पता था और उसने सुलतान को आगाह भी किया था।

गयासुद्दीन बलबन का शासन (सन् १२६६–८६)—अल्तमश के बाद दास वंशीय सुलतानों में बलबन का स्थान सब से ऊँचा है। उसमें वे सब कठोर गुण विद्यमान थे जो अन्य गुणों के अतिरिक्त एक शासक में अवश्य होने चाहिएँ। मुसलमानों की विजय और उनकी संकीर्ण नीति ने देश में एक बड़ी विकट परिस्थिति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न कर दी थी। ५० वर्ष राज्य करने पर भी वे हिन्दू प्रजा के हृदय में विश्वास और सहानुभूति उत्पन्न न कर सके। राजा और प्रजा का पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य बढ़ता ही जाता था; और इसका कारण यह था कि सुलतानों का एक मात्र उद्देश्य पाशविक बल से प्रजा को दमन करके अपनी वासनाओं तथा अपनी बुद्धि के अनुसार धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करना ही था। प्रजा का हित करना या उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति दिखलाना वे राजकीय कर्त्तव्य नहीं समझते थे। सार्वजनिक वायु-मण्डल की ऐसी संशय-पूर्ण अवस्था में शान्ति और विश्वास की लहर पैदा करने के लिये जिस नीति की आवश्यकता थी, वह बलबन के मस्तिष्क से परे थी। प्रजा में गहरा असन्तोष और अविश्वास था, इसीलिये कोने-कोने में बराबर बलवे और विद्रोह सुनाई पड़ते थे। समस्या यही थी कि इनको किस रीति से शान्त किया जाय। दमन नीति से अथवा शमन और प्रेम की नीति से? इस प्रश्न का उत्तर सुलतानों के पास केवल एक ही था—दमन! और बलबन दमन नीति का अवतार था। उसकी नीति यह थी कि विद्रोहियों को इतना कठोर दण्ड दिया जाय कि वे भय के मारे फिर सिर न उठावें।

परन्तु यह नीति न सफल होनेवाली थी, न हुई। अपनी वज़ारत के काल में बलबन ने विद्रोहियों को समूल नष्ट करने और भयानक से भयानक यन्त्रणाएँ देने में कोई कसर उठा न रखी। कुछ लेखकों का मत है कि इससे राजविद्रोह बिल्कुल शान्त हो गया। परन्तु वे स्वयं ही मानते हैं कि उसके बादशाह बनते ही सेना को बढ़ाने की आवश्यकता हुई, क्योंकि मेवाती लोगों के विद्रोह ने सल्तनत को खतरे में डाल दिया था। इससे स्पष्ट है कि बलबन की दमन-नीति निरर्थक रही।

बलबन के राज्यकाल की मुख्य घटनाएँ—बलबन ने सुलतान की हैसियत से पूरे बीस वर्ष राज्य किया। इस अवकाश में उसे बराबर प्रायः हिन्दुओं के एवं अन्य विद्रोहों को दमन करने में ही लगा रहना पड़ा। कोई रचनात्मक कार्य करने के लिये उसे बहुत ही कम समय मिला।

उसके सामने सब से पहली समस्या अपने साथी सरदारों और अमीरों की ही थी। वे यह न देख सकते थे कि हम ही लोगों में से कोई एक हम पर राज्य करे। इसलिये उन पर अपना आतंक जमाने के लिये बलबन ने सब से पहले दरबार के शिष्टाचार के बड़े कड़े नियम बनाये। मदिरा-पान, जूआ आदि पूर्व-प्रचलित कुरीतियाँ बन्द कर दी गईं। कोई सुलतान के सामने हँस भी नहीं सकता था। सब को बड़ी गम्भीरता से रहना पड़ता था। बलबन का एक मात्र ध्येय यह था कि सलतनत को अपनी सन्तान के लिये पक्का कर जाय ताकि बिना रोकटोक के उसके वंशज बादशाह बन सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह ४० तुर्की अमीरों के गुट को नष्ट करने पर तुला हुआ था। तनिक सा बहाना मिलते ही वह बड़े बड़े अमीरों को मरवा डालता था और जनता को ऐसा दिखलाता था कि वह इतना न्यायप्रिय है कि किसी की रू रियायत नहीं करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बदायू के शासक को जो ४००० सवारों का सरदार था उसने एक नौकर के मार डालने के अपराध में, उसी प्रकार कोड़ों से पिटवा कर मरवा डाला और सरकारी जासूस को इस घटना की खबर न भेजने के अपराध में फाँसी पर लटका दिया। इसी प्रकार अवध के सूबेदार हैबत खाँ को एक आदमी का वध कर डालने के अपराध में ५०० कोड़े खुलेआम लगवाये और फिर मृतक पुरुष की विधवा को सुपुर्द कर दिया कि उसके साथ चाहे जैसा बर्ताव करे; उसे मार डाले या छोड़ दे। इसी प्रकार उसने स्वयं अपने चचेरे भाई मलिक शेर खाँ संकुर को, जो बड़ा वीर सैनिक था और जिसके डर के कारण मुग़ल हमलों से देश की रक्षा होती थी, ज़हर दिलवा कर मरवा डाला।

महमूद के समय में बंगाल के शासक देहली का आधिपत्य नहीं मानते थे। बलबन के सुलतान होते ही बंगाल के शासक तातार खाँ ने देखा कि अब स्वतन्त्रता का युग नहीं है और ६३ हाथी भेंट स्वरूप भेजे।

हिन्दू प्रतिरोध—हम ऊपर देख आये हैं कि मेवात के हिन्दू सरदारों ने महमूद के राज्य में कितनी बार बलवे किये जिसका फल यह हुआ कि बलबन ने उनको नष्ट कर दिया और उनका प्रान्त उजाड़ डाला। किन्तु इतने भयानक दण्ड से भी ये लोग डरकर चुप न बैठे और एक पीढ़ी के अन्दर ही फिर इतने उद्दंड हो गये कि राजधानी तक पर धावा मारने लगे। मेवों के भय से देहली का पश्चिमी द्वार सन्ध्या से पहले ही बन्द करना पड़ता था। बलबन ने फिर इन सब को चुन चुन कर मरवा डाला और शहर की रक्षा के लिये पश्चिम की ओर एक क़िला और चारो ओर पुलीस की चौकियाँ बनवाईं।

मेवों से छुट्टी भी न मिली थी कि दोआब के हिन्दुओं ने उपद्रव शुरू कर दिया और वे इतने प्रबल हो गये कि बंगाल और देहली के बीच का रास्ता ही उन्होंने बन्द कर दिया। बलबन स्वयं कई महीने तक पटियाली, काम्पिल इत्यादि स्थानों में रहा और वहाँ उसने बलवाइयों को स्त्री-बच्चों सहित नष्ट किया। साथ ही मुसलमान अमीरों को उसने विद्रोह दमन करने का अधिकार दिया। इन लोगों ने भी उसी प्रकार काम किया। मुख्य मुख्य स्थानों पर क़िले बनवाये गये और उनमें अफ़गान सेना रखी गई।

यह काम पूरा भी न हुआ था कि कटेहर के हिन्दुओं का विद्रोह शुरू हो गया। यह इतना भारी विद्रोह था कि बदायूँ और अमरोहा के शासक इसका दमन न कर सके। बलबन ने देहली आकर एक बड़ी सेना तैयार की और विद्रोहियों को धोखे से अचानक जा घेरा। इनको उसने इतना भयानक दण्ड दिया कि ८ वर्ष से ऊपर के सब मर्दों को मरवा डाला और औरतों को दासी बनाया। कोई गाँव ऐसा न बचा जिसमें सैकड़ों हिन्दुओं को तलवार के घाट न उतारा गया हो। बदायूँ, अमरोहा, सम्भल और गुन्नौर के ज़िलों को क़रीब क़रीब उजाड़ कर दिया गया।

पहले दो वर्ष में यह भयानक काम करके उसने पंजाब और पश्चिमोत्तर के पहाड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर चढ़ाई की और अपनी सेना के लिये बहुत से घोड़े लाया। इस चढ़ाई में उसे मालूम हुआ कि अल्तमश ने जिन सैनिकों को राज-सेवा के लिये वेतन के स्थान पर गाँव दे रखे थे, वे अब मर चुके हैं अथवा बहुत बुड्ढे हो गये हैं और उनके लड़के बिलकुल अयोग्य हैं। इसलिये उसने सब की जागीरें छीन लीं। इस पर बड़ा हाहाकार मचा और देहली के बुड्ढे कोतवाल की प्रार्थना पर गाँव वापस कर दिये गये; तथापि इससे शम्सी अमीरों की शक्ति को बड़ा धक्का लगा।

मुग़ल आक्रमणों का प्रारम्भ—शम्सी गुट को पूरी तरह से नष्ट करने के लिये बलबन ने अपने सुयोग्य और योद्धा, सम्बन्धी शेर खाँ को, जो पंजाब का शासक था, ज़हर दिला दिया। उसके स्थान पर बंगाल से तातार खाँ को बुलाकर नियुक्त किया और तुग़रील को बंगाल भेज दिया। इसका फल यह हुआ कि मुग़ल और खोखर तथा अन्य हिन्दू लोग, जो शेर खाँ के भय से चुप थे, फिर से उपद्रव करने लगे। यह देखकर बलबन ने अपने बड़े बेटे मुहम्मद को कोयल की जागीर से हटाकर मुलतान भेजा। वह बहुत योग्य और गुणवान युवक था। उसी पर बलबन के वंश की समस्त भावी आशाएँ निर्भर थीं। उसमें वीरता के साथ विनय, विद्या-प्रेम, विवेक और सहृदयता भी थी। विद्वानों का वह बहुत आदर करता था। सुविख्यात कवि अमीर ख़ुसरो और अमीर हसन ने अपना जीवन इसी राजकुमार के दरबार में आरम्भ किया था। उसने शेख सादी को भी बुलवाया था, परन्तु बुढ़ापे के कारण वह न आ सका। सब लेखकों ने इस युवक की मुक्तकण्ठ और सच्चे प्रेम से प्रशंसा की है। बाप और बेटे में भी परस्पर बड़ा प्रेम था। बलबन ने उसे पहले ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर रखा था।

समाना की जागीर पर बलबन ने अपने छोटे बेटे बुग़रा खाँ को नियुक्त किया। यह अपने बड़े भाई के सर्वथा विपरीत था। यह बड़ा आलसी और विलासप्रिय था। इस कारण सुलतान ने इसे भली भाँति समझा दिया और सचेत कर दिया कि यदि अनुचित कार्य किया तो कड़ा दण्ड मिलेगा।

सन् १२७९ में फिर मुग़लों के आक्रमण शुरू हो गये। यहाँ तक कि एक बार वे सतलज को पार करके देहली के पास आ गये, परन्तु इस समय सेना की अवस्था अच्छी थी और अन्य कोई उपद्रव नहीं था; इस कारण मुग़लों की पूरी तरह से हार हुई।

इसी वर्ष बंगाल में तुग़रील ने स्वतन्त्रता का झण्डा खड़ा कर दिया और कर देना बन्द कर दिया। बलबन ने इस विद्रोह को दमन करने के लिये दो बार सेना भेजी, पर दोनों बार तुग़रील ने उसे हरा दिया। बहुत से सैनिक तुग़रील से जा मिले। इस पर बलबन क्रोध के मारे उबल पड़ा और एक बड़ी सेना तैयार करके स्वयं बंगाल को रवाना हुआ। यह पहला ही अवसर था जब कि बलबन ने देहली को छोड़कर इतनी दूर जाने का विचार किया। उसका आगमन सुनकर तुग़रील लखनौती छोड़कर भागा और जंगल में जा छिपा। परन्तु अमीर शेर अंदाज़ ने उसे एक जंगल में पकड़ लिया और उसका सिर काटकर बलबन के पास भिजवा दिया। शेर अंदाज़ और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेना को इनाम दिया गया और फिर इस विद्रोह का बदला लेने के लिये सुलतान ने अपनी नृशंस नीति का भीषण प्रयोग किया। लखनौती के बाज़ार में दो मील तक सूलियाँ गड़वाकर तुग़रील के सम्बन्धियों और साथियों को उन पर चढ़वा दिया। जो लोग तुग़रील की तरफ जा मिले थे, उन्हें पकड़ कर इससे भी भयानक यातना देने के विचार से देहली ले चला। यह देखकर उनके सम्बन्धियों ने क़ाज़ी से जाकर दया की याचना की। उसके समझाने पर बलबन ने कैदियों को साधारण दण्ड देकर छोड़ दिया।

चलते समय बलबन ने अपने बेटे बुग़रा खाँ को बंगाल का शासक नियुक्त किया और उसे लखनौती का भीषण दृश्य दिखलाकर कहा कि यदि कभी विद्रोह किया तो इसी प्रकार का दण्ड मिलेगा।

मुग़ल आक्रमण और युवराज की मृत्यु—इस समय बलबन की शक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी। उसकी अवस्था भी ८० वर्ष की हो चुकी थी। इसी समय उसे एक ऐसा धक्का लगा जिससे वह सँभल न सका। सन् १२८५ में तमर खाँ मुग़ल ने एक बड़ी सेना लेकर मुलतान पर हमला किया। युवराज मुहम्मद ने उसे हरा दिया, पर स्वयं लड़ाई में मारा गया। उसकी मौत से सल्तनत का दीपक बुझ गया और बलबन की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। यह दरबार में तो अपनी वेदना को छिपाता, परन्तु अकेले में उसका शोक असह्य जान पड़ता था। इसी दुःख के कारण एक वर्ष के अन्दर उसकी मृत्यु हो गई (१२८६)।

मरते समय बलबन ने चाहा कि बुग़रा खाँ आकर मेरा उत्तराधिकारी बने, परन्तु वह इस कठिन उत्तरदायित्व से भागता था। इस कारण बलबन ने युवराज मुहम्मद के लड़के कैखुसरो को अपने बाद सुलतान बनाने का आदेश दिया। परन्तु अमीरों ने उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुग़रा खाँ के लड़के कैकुबाद को गद्दी पर बैठा दिया।

बलबन के शासन की सफलता और विफलता—तुर्क सुलतानों के शासन का मूल सिद्धान्त क्या था, यह हम ऊपर बतला चुके हैं। इस एकाकी और प्रजा-हित-हीन नीति का फल यह हुआ कि बलबन के समय तक कोई रचनात्मक कार्य न हो सका। बलबन समझता था कि प्रजा के हार्दिक असन्तोष और विद्रोही भावनाओं को मैं पाशविक शक्ति से कुचल दूँगा। इस नीति का अनुसरण करने में उसने कोई कसर न रखी। उसका सारा शासन-काल एक ओर पीड़ित प्रजा के विरोध और दूसरी ओर मार-काट, विध्वंस और यातनाओं का इतिहास है। इस कठोर नीति से थोड़े समय के लिये अवश्य शान्ति स्थापित होती हुई जान पड़ती थी, परन्तु यह वास्तविक शान्ति नहीं थी। इसके विरुद्ध इस नीति ने जनता के असन्तोष को गहरी घृणा का रूप दे दिया। थोड़ा ही समय बीतने पर फिर वही ज्वाला, वही स्वाधीनता की आग विद्रोहियों के रूप में भड़क उठी। बलबन अथवा अन्य किसी सुलतान ने यह सिद्धान्त कभी नहीं समझा कि तलवार के बल पर चाहे जो कुछ करना सम्भव हो, स्थायी रूप से राज करना सम्भव नहीं।

शासन में बलबन ने, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बड़ी कठोरता से काम लिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आन्तरिक उपद्रवों से राज्य को सुरक्षित रखने के लिये उसने गुप्तचर विभाग को विशेष उन्नत किया। कोई ऐसी बात न थी जो सुलतान को मालूम न हो जाय। बाहरी हमलों से राज्य की रक्षा करने के लिये उसने पश्चिमोत्तर के सूबों में मुख्य मुख्य स्थानों पर क़िले बनवाये और उनमें बड़ी बड़ी सेनाएँ पूरी तैयारी के साथ रक्खीं। निर्भीक अनुभवी सेनानायकों को मुलतान, लाहौर इत्यादि स्थानों पर रखा। स्वयं कभी देहली से दूर न गया। इसी कारण वह कोई नया प्रान्त भी न जीत सका। परन्तु मुग़लों के हमलों का मुकाबला करने के लिये उसने सरहद पर क़िले इत्यादि बनाकर राज्य को यथेष्ट दृढ़ और सशक्त बना दिया। बलबन का यह कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण था। उसके इस कार्य के बिना अलाउद्दीन को मुग़लों से राज्य की रक्षा करने में बड़ी कठिनता होती।

कैकुबाद अभी लड़का ही था। इतने बड़े साम्राज्य का स्वामी बन जाने से उसकी मति पलट गई। वह अत्यन्त विलास-प्रिय तथा अत्याचारी हो गया। उसके वज़ीर ने ख़लजी अमीरों को नष्ट करना चाहा। उनका नेता जलालउद्दीन इस समय आरिज़-ए-मुमालिक था। इस प्रकार तुर्की और खल्जी दो दलों में बड़े झगड़े शुरू हो गये। इसी समय बंगाल से आकर कैकुबाद के पिता बुग़रा खाँ ने उसे समझाया, परन्तु पिता के जाते ही सुलतान की फिर वही दशा हो गई। अन्त को खल्जी दल के एक आदमी ने कैकुबाद को मार कर यमुना में फेंक दिया और सन् १२९० में जलालउद्दीन दिल्ली के तख्त पर बैठा।

मुस्लिम और भारतीय सभ्यता के संघर्ष और सम्पर्क का परिणाम

हम पहले भी इस बात का वर्णन कर चुके हैं कि ज्यों ज्यों इस्लाम अरब से पूरब की ओर फैलता गया, त्यों त्यों उसमें बड़ा परिवर्त्तन होता गया। ग़ज़नी और ग़ोर के मुसलमान आक्रमणकारियों के उद्देश्य और आकांक्षाएँ अरब के पहले मुसलमानों से बहुत कुछ भिन्न थीं। भारतवर्ष में आने के बाद उनके उद्देश्य तथा दृष्टिकोण, एवं सभ्यता और विश्वासों में और भी परिवर्त्तन हुए। सैनिक रूप से तो देश पर उनकी विजय हो गई; पर अब देखना यह है कि सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में उनको कितनी सफलता हुई। इस प्रश्न पर विचार करने से एक ऐसी अनोखी घटना हमारे सामने आती है जिसका उदाहरण और कहीं नहीं मिलता। इस्लाम की विजय के आरम्भ से ही मुस्लिम विजेताओं की यह परम्परा चली आती थी कि जहाँ जहाँ वे जाते थे, वहाँ वहाँ प्रायः समस्त जनता को मुसलमान बनाया करते थे। अभी तक उन्हें किसी ऐसी जाति से काम नहीं पड़ा था जो उनकी सारी शक्ति के विरुद्ध भी अपना अस्तित्व बनाये रखती। इधर हिन्दू जाति की यह परम्परा चली आती थी कि मुसलमानों से पहले जितनी जातियाँ विजेता रूप में यहाँ आकर बसती थीं, अन्त को वे सब इसी में समा कर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो बैठती थीं और इसी देश को अपनी मातृभूमि तथा इसकी सभ्यता मानने लगती थीं। अथवा यों कहिये कि हिन्दू जाति में इतना जीवन और पाचन शक्ति थी कि जो कोई उससे आकर टकराया, वह बचकर वापस न गया। वह उसे समूल पचा गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बारहवीं सदी में भारत में ऐसी ही दो कट्टर जातियों का पूरी शक्ति से संघर्ष हुआ था। परिणाम हमारे सामने है। मुसलमान शान्तिमय तथा पाशविक दोनों प्रकार के बल से और हज़ारों वर्ष के प्रयत्न के बाद भी फ़ारस आदि देशों की भाँति सारे क्या, अधिकतर भारत को भी मुसलमान न बना सके। परन्तु इससे भी अधिक हार हिन्दुओं की हुई। वे अपनी प्राचीन मर्यादा के प्रतिकूल अपने इन नये विजेताओं को अपने में न मिला सके। इस घटना के गहन कारणों की पूरी विवेचना इस जगह नहीं की जा सकती। यहाँ इतना ही कहना काफ़ी होगा कि शायद मुसलमानों को पचा जाना उतना आसान न था जितना अन्य जातियों को। वे हिन्दू धर्म के तत्कालीन मुख्य आधार मूर्त्ति-पूजा और जात-पाँत के भेद-भावों के भञ्जन का संकल्प करके आये थे, उनकी रक्षा का संकल्प करके नहीं। परन्तु मुख्य कारण हिन्दू जाति की संकीर्णता, विचार-शून्यता और उन्नतिशीलता का अभाव, या एक शब्द में, सजीवता का अभाव था। किसी जीवित मनुष्य अथवा जाति का यह चिह्न है कि उसमें पाचन-शक्ति विद्यमान हो। इसका अभाव ही मृत्यु है। तब यह जाति स्वयं हड़प हो जाने से कैसे बची रही ? किसने इसकी रक्षा की ? इसके दो मुख्य कारण जान पड़ते हैं। एक तो इसकी संस्कृति, इसकी विद्या का भाण्डार, सर्वोत्कृष्ट दर्शन, काव्य आदि इसके रक्षक हुए। मुसलमान जाति स्वयं इनके प्रभाव से अपने को न बचा सकी। दूसरे इसकी रूढ़ियों का जाल ही इसका परम रक्षक बन गया। जिन रूढ़ियों ने इसको बाहरी जातियों को अपने में लीन कर लेने के अयोग्य बना दिया था, उन्हींने किसी दूसरे को इसके पास न आने दिया। यदि यह जाति जीवित होती तो केवल अपनी रक्षा ही नहीं करती, प्रत्युत् आगन्तुकों को हज़म भी कर लेती।

इन दो दृढ़ जातियों के संघर्ष से सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्त्तन अनिवार्य थे।

राजनीतिक क्षेत्र; दास वंश की नीति और शासन-प्रणाली—कहने को तो बारहवीं और तेरहवीं सदियों के मुस्लिम विजेता हज़रत मुहम्मद और उनके साथियों का उद्देश्य पूरा करने और क़ुरान की शिक्षा तथा आदर्शों पर चलने का दम भरते थे, पर वे यह न समझते थे कि स्वयं हम इन आदर्शों से कितने दूर चले गये हैं। उनकी नीति तुर्की सैनिक बल और ईरानी साम्राज्यादर्श से प्रेरित होती थी। क़ुरान के धर्म-प्रचार के आदर्श को भी वे अपने सामने अवश्य रखते थे, परन्तु परिस्थिति के अनुसार उसे बदलने को तैयार रहते थे। इसलिये उनकी नीति दो मौलिक नियमों के आधार पर निर्धारित होती थी। एक ओर तो मुसलमान होने के नाते वे हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर सकते थे। केवल यही नहीं, हिन्दुओं को यथासम्भव दबाना एवं अपमानित करना भी उनका कर्त्तव्य था। दूसरे वे अपने विदेशी होने का गौरव रखते थे और हिन्दुस्तानी मुसलमानों को भी अपने से नीच तथा तिरस्करणीय समझते थे। उनके जातीय चरित्र का यह गुण इस्लाम की शिक्षा के विरुद्ध था। इसलिये उनकी नीति में दो बातें रहीं। हिन्दू प्रजा को वे परिस्थिति के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवश होकर केवल जज़िया इत्यादि लगा कर छोड़ देते थे। शनैः शनैः उन्होंने मन्दिरों इत्यादि को भी उस जोश से तोड़ना कम कर दिया जो कुतुबुद्दीन या अल्तमश ने दिखलाया था। परन्तु वे सामान्यतया हिन्दू जाति को सदा अपने से पृथक् मानते रहे और अपने को बाहरी समझ कर उनसे पृथक् रहते रहे। इतना ही नहीं, जो हिन्दू मुसलमान हो गये थे, उनसे भी वे इसी प्रकार का व्यवहार करते रहे। उनका मुख्य उद्देश्य था अपनी जाति का प्राधान्य तथा अपने वंश में राजगद्दी क़ायम रखना, यद्यपि यह बात मुस्लिम राजनीति के नियमों के विरुद्ध थी।

अपनी बिरादरी को छोड़कर अन्य प्रजा का हित-चिन्तन या पालन-पोषण उनके राज्यादर्श के बाहर था। प्रजा की उतनी ही रक्षा करना वे आवश्यक समझते थे जितने से वह राज-कर देने के योग्य बनी रहे। प्रायः इसी नीति का अनुकरण और सुलतानों ने भी किया। यदा कदा कुछ परिशोधन हुए भी, परन्तु वे थोड़े थे। मौलिक सिद्धान्त में कभी परिवर्त्तन न हुआ।

इसी नीति के परिणाम स्वरूप सतत विद्रोह और बलवे होते रहते थे जिनको सैन्य बल से दबाते दबाते ही सुलतानों के जीवन समाप्त हो जाते थे।

शासन-प्रणाली—शासन-प्रबन्ध में सुलतानों को देश-कालानुसार चलना पड़ा। क्रियात्मक शासन-प्रबन्ध का उन लोगों को कोई अनुभव न था। अतएव उन्हें भारतीय शासन-पद्धति ही ग्रहण करनी पड़ी। भूमिकर और जागीरदारी की प्रथा इत्यादि में कोई परिवर्त्तन न हुआ। जज़िया आदि कतिपय और कर भी हिन्दुओं पर लगा दिये गये, और मुसलमानों पर ज़कात इत्यादि। नये सिक्के चलाये गये जिनका वर्णन परिशिष्ट में किया जायगा। न्याय विभाग में ऊँचे ऊँचे स्थानों पर क़ाज़ी नियुक्त किये गये। दीवानी (Civil) मामलों में तो हिन्दुओं और मुसलमानों के अपने अपने क़ानून चलते रहे, परन्तु फ़ौजदारी में कुरान के नियम सब पर लगाये गये। सेना विभाग में अच्छी उन्नति की गई। सेना के संघटन, शिक्षण, संख्या इत्यादि में उन्नति हुई और आवश्यकतानुसार हर जगह क़िले आदि बनवाये गये। सरहदों की रक्षा के लिये सेनाएँ रखी गईं। राजपूतों को ये बातें कभी न सूझती थीं। लोक-हित के कामों में कोई कहने लायक कार्य्य नहीं किया जाता था।

भाषा तथा साहित्य—साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम संपर्क से महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। फ़ारसी और हिन्दी के मेल से इन्हीं दिनों एक नई भाषा का विकास प्रारम्भ हुआ जिसका एक रूप खड़ी बोली और दूसरा रूप उर्दू अर्थात् 'छावनी की भाषा' है। इन दोनों की अमीर खुसरो के लेखों से बहुत उन्नति हुई। इन भाषाओं के द्वारा हिन्दू-मुसलमानों में बहुत कुछ विचार-विनिमय और एक दूसरे के शब्दों का आदान-प्रदान हुआ और इससे एक दूसरे के साहित्य की बहुत वृद्धि हुई।

कला के क्षेत्र में मुस्लिम विजय के पहले ही बहुत स्थायी कार्य हुआ था। फ़ारस और ग़ज़नी की संस्कृति में पले हुए ये लोग निरे सैनिक ही न थे, प्रत्युत् वे कला एवं साहित्य का पर्याप्त परिज्ञान रखते थे। पहले-पहल इन्होंने वास्तुकला में अपनी कार्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कुशलता का परिचय दिया। मस्जिदें, क़ब्रें और क़िले बनाने की चाल मुसलमानों में थी। ऐबक और अल्तमश ने हज़ारों मन्दिरों का विनाश करके उनके पत्थरों से देहली और अजमेर में बहुत सी इमारतें बनवाईं जिनमें देहली की कूवतुल-इस्लाम मस्जिद और अजमेर का 'ढाई दिन का झोपड़ा' विशेष उल्लेखनीय हैं। ये इमारतें उन्होंने हिन्दुओं से ही बनवाई थीं और उनकी निर्माण-शैली भी सर्वथा हिन्दू प्रकार की ही है। परिवर्त्तन केवल इतना कराया गया कि उनके भिन्न-भिन्न भागों का क्रम आवश्यकतानुसार बदल दिया गया और देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ हटा दी गईं। पर इन सब से बढ़कर बात यह हुई कि हिन्दू शैली के भिन्न भिन्न उपक्रमों का मुसलमानों ने इस प्रकार फिर से विन्यास किया कि उनकी शैली ने एक नया और स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया।

धार्मिक क्षेत्र में मुस्लिम विजय का सब से अधिक प्रभाव पड़ा। सामान्यतया हिन्दू जाति जीवन-रहित थी। एक तो इन नये विजेताओं की संकीर्ण धार्मिक नीति भारतवासियों के लिये एक बिलकुल नई बात थी। इसके प्रहारों ने उनको शनैः शनैः सचेत कर दिया और देश में वह वायुमण्डल उत्पन्न कर दिया जिसमें दोनों जातियों के साहित्य, भाषा, विचारों तथा पारस्परिक व्यवहार में साम्य और पारस्परिक सहानुभूति तथा प्रेम के लिये यत्न होने लगे। इस प्रवाह को भारतीय साहित्य से बड़ी सहायता मिली। इस साहित्य के प्रभाव से फ़ारस के मुसलमानों में पहले ही से सूफ़ियों के रूप में भक्त सम्प्रदाय उत्पन्न हो चुका था। अब ये लोग भारत में आये और अपने शान्ति-मय तथा प्रेम के सिद्धान्तों का प्रचार करके जनता में परस्पर विश्वास और प्रेम का वायुमण्डल उत्पन्न करने लगे। इसी समय भक्त सम्प्रदाय का उद्गम हुआ।

सामाजिक क्षेत्र में अज्ञात रूप से दोनों जातियों का सामीप्य होता जा रहा था। पास पास रहने के कारण वे धीरे धीरे सहनशीलता सीखते जा रहे थे। बहुत से हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के नाम रखते थे। स्वयं बलबन के भतीजे का ही नाम मलिक छज्जू था। इस प्रकार दोनों जातियों के सम्पर्क से एक नवीन सभ्यता का बीजारोपण हुआ। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि जो इसी देश के निवासी किसी कारण मुसल-मान हो गये थे, उनका अपने देशवासियों से ही सम्पर्क अधिक बना रहा। हिन्दू धर्म के संकीर्ण और बुद्धि-विहीन ठेकेदारों के अत्याचारों के कारण कुछ लोगों को विवश होकर इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा और धार्मिक क्षेत्र में उनको इन्हीं धर्माधिका-रियों ने पृथक् कर दिया, तथापि सामाजिक, आर्थिक व नैतिक क्षेत्रों में वे किसी तरह भी अपने प्राचीन देशवासियों से पृथक् न हो सकते थे, न हो पाये। जो तुर्क बाहर से आये थे वे भारतीय हिन्दू अथवा मुसलमान दोनों को तिरस्कृत समझते और इसी प्रकार का व्यवहार उनसे करते थे। धीरे धीरे ये बाहरी तुर्क भी भारतीय जनता एवं समाज में समा गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा अध्याय

सलतनत का विस्तार

खल्जी वंश

दास वंश के साम्राज्य की सीमा—दास वंश के शासन-काल के अन्त में देहली की सल्तनत पश्चिम में मुलतान और लाहोर से लेकर पूर्व में ढाका तक, और उत्तर में हिमालय की तलहटी से अजमेर, गवालियर और गुजरात तक फैल चुकी थी। यह विदित ही है कि सीमा-प्रान्तों पर नाम मात्र को ही अधिकार था।

जलालुद्दीन फ़ीरोज़; दास वंशीय तुर्कों का अन्त—खल्जी लोग वास्तव में तो तुर्क ही थे, किन्तु बहुत काल से अफ़गानिस्तान में बस जाने के कारण अफ़ग़ान समझे जाते थे। इसलिए तुर्की अमीर जलालुद्दीन का तिरस्कार करते थे। इसीलिये देहली के बजाय किलोखरी को जलाल ने अपनी राजधानी बनाया और कैकुबाद के अधबने भवनों को पूरा कराया। उसने दास वंशीय तुर्क अमीरों की रही सही शक्ति का भी अन्त कर दिया। ये लोग अब अपने उच्च जातीय होने पर बड़ा घमण्ड करते थे। बलबन ने इनकी शक्ति प्रायः नष्ट कर ही दी थी। जलाल ने यह काम पूरा कर दिया। उसने राज्य के बड़े-बड़े पद और खिताब अन्य अमीरों तथा अपने सम्बन्धियों को दिये। पुराने लोगों में से केवल बलबन के भतीजे अब्दुल्ला उर्फ़ मलिक छज्जू को कड़ा-मानिकपुर का जागीरदार बनाया।

जलाल के बर्ताव में बुढ़ापे के कारण इतनी नम्रता आ गई थी कि ऐसे कठिन समय में वह राज्य करने के सर्वथा अयोग्य था। सिंहासन पर बैठते समय वह बलबन और उसके नष्टप्राय वंश की याद करके फूट-फूट कर रोया। कुछ लोगों ने उसकी प्रशंसा की और कुछ ने कहा कि राजा के लिये ऐसा करना अपनी निर्बलता प्रकट करना है।

शासन सम्बन्धी समस्याएँ—सन् १२९२ में मलिक छज्जू ने कड़ा में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और सुल्तान का खिताब लेकर देहली पर चढ़ाई की; पर जलाल के लड़के अरकली खाँ ने उसे हरा कर पकड़ लिया। सुलतान ने विद्रोहियों को केवल क्षमा ही नहीं किया, प्रत्युत् उनकी बड़ी प्रशंसा की क्योंकि उन्होंने अपने भूतपूर्व राजा के प्रति इतनी स्वामि-भक्ति दिखलाई। अहमद चप उसका एक सम्बन्धी बड़ा सच्चा हितैषी और बेधड़क साफ़ बात कहनेवाला था। उसने जलाल की इस हरकत पर उसे डाँटा और कहा कि इस प्रकार विद्रोहियों को प्रोत्साहित करना स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है। मलिक छज्जू के स्थान पर सुलतान का भतीजा अलाउद्दीन नियुक्त हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़ीरोज़ की नम्रता यहाँ तक बढ़ी कि १००० ठगों और डाकुओं को उसने सिर्फ़ यह सज़ा दी कि नावों में भर कर उन्हें बंगाल में ले जाकर छुड़वा दिया। इस नीति का प्रभाव यह हुआ कि उसको मार डालने का एक षड़यन्त्र भी रचा गया, परन्तु उसका पता लग गया और जलाल ने द्रोहियों को दरबार से दूर भेज दिया।

फ़ीरोज़ ने अपने जीवन में एक ही बार कठोरता दिखलाई थी। सीदी मौला नामक एक फ़क़ीर सन् १२९१ में देहली आया। उसका घर सब के लिये खुली धर्मशाला के समान था, परन्तु उसकी आय के साधनों का पता न चलता था। कहा जाता है कि वह डाकुओं का सरदार था और फ़ीरोज़ को गद्दी से उतारने के लिये एक षड्यन्त्र रच रहा था। जब वह पकड़ कर फ़ीरोज़ के सामने लाया गया, तब दोनों में बहुत वाद-विवाद हुआ। फ़ीरोज़ को इतना क्रोध आ गया कि वह पुकार उठा कि क्या कोई यहाँ नहीं है जो इस दुष्ट को ठीक कर दे। इतना सुनते ही एक आदमी ने उसको छुरी से घायल किया और अर्कली खाँ ने उसे हाथी से कुचलवा डाला। कहते हैं कि उस दिन एक दम ऐसी आँधी आई कि दोपहर में रात हो गई और अगले मौसिम में वर्षा न होने से घोर अकाल पड़ा। लोगों का विश्वास था कि यह उस फ़क़ीर पर अत्याचार करने का ही फल था।

मुग़लों का आक्रमण—इसके बाद फ़ीरोज़ ने झाईं के क़िले पर चढ़ाई की और मालवे को भी लूटा, परन्तु रणथम्भोर को न जीत सकने के डर से वापस लौट आया। इसी वर्ष मुग़लों का एक बहुत बड़ा हमला हुआ। हलाकू का पोता उलुग़ खाँ कोई १००००० मुग़लों का दल लेकर सुनाम तक पहुँच गया, परन्तु वह हार गया। मुग़ल सेना का अधिक भाग तो लौट गया, परन्तु उलुग़ और उसके साथी सरदारों ने बहुत से मुग़लों सहित इस्लाम धर्म ग्रहण किया। फ़ीरोज़ ने अपनी लड़की उलुग़ को ब्याह दी और ये लोग देहली के पास बस गये। इस स्थान का नाम मुग़लपुरा पड़ा। ये लोग नौ मुस्लिम कहलाये। इसी वर्ष फ़ीरोज़ ने मण्डावर का क़िला फिर से जीता और अलाउद्दीन भिलसा पर हमला करके बहुत सी लूट देहली लाया जिसके पुरस्कार स्वरूप उसे अवध की जागीर और दी गई।

दक्षिण भारत पर अलाउद्दीन की चढ़ाई और वहाँ की राजनीतिक अवस्था—भिलसा में अलाउद्दीन ने सुना था कि दक्षिण भारत में देवगिरि राज्य अपार धन से भरपूर है। तभी से उसने वहाँ जाकर लूट-मार करने की ठान ली थी। कड़ा लौट कर उसने सेना इत्यादि की तैयारी करनी शुरू कर दी।

दक्षिण भारत के उत्तर में उस समय दो मुख्य हिन्दू राज्य विद्यमान थे। पश्चिम में देवगिरि, यादव वंशीय राजा रामचन्द्र के अधिकार में और पूरब में तिलंगाना या वारंगल, काकतीय वंशीय रुद्रम्मा देवी के राज्य में था। देवगिरि के दक्षिण में यादवों की होयशल नाम की एक शाखा द्वारसमुद्र में राज्य करती थी। इसका राज्य कृष्णा नदी के दक्षिण तट तक ही था।

महाराष्ट्र में प्राचीन काल में मुख्यतया दो वंश आगे पीछे राज्य करते आये थे;

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थात् राष्ट्रकूट और चालुक्य। जिस समय उत्तरी भारत में चौहान राजा पृथ्वीराज मुहम्मद ग़ोरी के हाथों से देश की रक्षा करने का यत्न कर रहा था, उसी समय दक्षिण में कल्याण के चालुक्य वंश को यादवों ने नष्ट किया। यादव लोग पहले मथुरा के रहनेवाले थे और किसी समय महाराष्ट्र में आकर उन्होंने एक राज्य तो द्वारसमुद्र में और दूसरा नर्मदा और ताप्ती के मध्य भाग में स्थापित किया था। इस देश का प्रथम प्रसिद्ध पुरुष सेउणचन्द्र हुआ। उसने सेउणपुर शहर बसाया और देश का भी सेउण देश नाम रखा, जो मुसलमानी काल में खानदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वंश में २२ राजा हुए जिन्होंने सन् ७९५ से ११९१ तक राज्य किया।

होयशल यादवों का पहला राजा वित्तिदेव उर्फ़ वित्तिग हुआ जिसने सन् ११११ से ११४१ तक राज्य किया। इसी ने द्वारसमुद्र नगर बसाया था। पहले यह राजा जैन धर्म का अनुयायी था, परन्तु फिर रामानुजी भक्ति मार्ग या वैष्णव धर्म्म से प्रभावित होकर उसका अनुयायी बना। उस समय इसी धर्म्म का प्राबल्य था। वैष्णव धर्म्म के बहुत से मन्दिर उसने बनवाये और अपना नाम विष्णुवर्धन रखा। विष्णुवर्धन और उसके वंशजों ने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसके नाती वीर बल्लाल ने चालुक्य वंशी सोमेश्वर चतुर्थ के राज्य का बहुत सा हिस्सा छीन कर उत्तर की ओर अपना राज्य देवगिरि तक फैलाया, परन्तु आगे चल कर सेउण देश के यादव भिल्लम ने वीर बल्लाल और सोमेश्वर दोनों को हरा दिया और देवगिरि में एक नवीन यादव राज्य की नींव डाली। यहीं चालुक्य वंश का अन्त हुआ, परन्तु होयशल वंश द्वारसमुद्र में राज्य करता रहा। भिल्लम का पुत्र जैत्रपाल बड़ा पराक्रमी था। वह बड़ा भारी विद्वान भी था और उसके दरबार में प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य का पुत्र लक्ष्मीधर और आदि मराठी कवि मुकुन्दराज जैसे पुरुष थे। जैत्रपाल के पुत्र सिंहराज ने कुन्तल देश और पद्मनाल अर्थात् पन्हाला को उसके राजा से छीन लिया और मालवा, गुजरात इत्यादि के राजाओं को भी हराया। इसके बाद कृष्णदेव, महादेव और रामदेव तीन राजा हुए। इसी रामदेव के समय में पहले-पहल दक्षिण पर अलाउद्दीन के नेतृत्व में मुसलमानों की चढ़ाई हुई *।

इस शताब्दी में महाराष्ट्र में भाषा, साहित्य और कला में विशेष उन्नति हो रही थी। इसके अतिरिक्त देश हर प्रकार से सम्पन्न, धन-धान्य से भरपूर और प्रजा परम सुखी थी। इस सुख-शान्ति से आध्यात्मिक और साहित्यिक उन्नति को और भी उत्तेजना मिली। दूसरे यह धार्म्मिक उथल-पुथल का भी युग था। जाति-पाँति के भेद-भाव और अंध-परम्परा इतनी बढ़ गई थी कि उसका सुधार आवश्यक था। विचारशील विद्वान् इसके विरुद्ध आवाज़ उठा रहे थे। रामानुज इत्यादि महात्माओं के प्रचार से इस सुधार प्रगति को उत्तेजना मिल चुकी थी। इसी समय मराठी भाषा की भी बड़ी उन्नति हुई। रामचन्द्र यादव के समय में भाषा और साहित्य को विशेष

* श्री० गो० हा० तामस्कर रचित "मराठों का उत्थान व पतन" के आधार पर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रोत्साहन मिला। उसका मन्त्री हेमाद्रि स्वयं बड़ा विद्वान्, शूरवीर और नीतिनिपुण था। उसने चतुर्वर्ग-चिन्तामणि नामक एक बड़ा भारी ग्रन्थ लिखा। उसके मित्र बोपदेव नामक विद्वान् ने प्राकृत भाषा का मुग्धबोध नामक व्याकरण संस्कृत में लिखा। उसने और भी कई ग्रन्थ लिखे थे। महाराष्ट्र की प्रसिद्ध मोड़ी (मुण्डी) लिपि भी हेमाद्रि ने ही चलाई थी। सारांश यह कि इस समय हर प्रकार की सामाजिक और वैयक्तिक उन्नति हुई, परन्तु इन राज्यों में सैनिक व्यवस्था पर्य्याप्त मात्रा में न थी। हेमाद्रि जैसे चतुर विद्वान और राजनीतिज्ञ ने भी इस ओर ध्यान न दिया। दक्षिणी राज्यों की मुसलमानों से हार होने का मुख्य कारण उनकी सैनिक अव्यवस्था ही थी। इन कारणों की व्याख्या आगे की जायगी।

इन दो बड़े राज्यों के अतिरिक्त दो और राज्य उल्लेखनीय हैं। होयशल यादव राज्य के दक्षिण-पूर्व में मदुरा का पाण्ड्य राज्य बड़ा शक्तिशाली था। पहले बहुत दिनों तक यहाँ प्रसिद्ध चोल राज्य था, परन्तु तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसकी अवनति हुई और पाण्ड्य राजाओं ने इसे जीत लिया। पूर्वी समुद्र के किनारे यह राज्य उत्तर में पेनर नदी तक फैला हुआ था और नेलोर का छोटा राज्य इसके और उत्तरी काकतीय राज्य के बीच में था।

इन बड़े बड़े राज्यों के सिवा बीच बीच में अन्य छोटे राज्य भी विद्यमान थे। इन सब राज्यों में परस्पर कोई राजनीतिक सम्बन्ध न था। सब अपने अपने रंग में मस्त थे। साहित्यिक, धार्मिक एवं सामाजिक उन्नति और आर्थिक सम्पन्नता यथेष्ट थी। प्राचीन भारत की यह एक विशेषता थी कि देश के समस्त भागों में धर्म्म और संस्कृति के क्षेत्र में परस्पर गहरा सम्बन्ध सदैव बना रहता था और इस सम्बन्ध पर राजनीतिक विभिन्नता का कोई प्रभाव न होता था। यह आवश्यक था कि देश की संस्कृति में साम्य और एकता होने के लिये सारे देश पर राज्य भी एक ही हो। यही अवस्था इन राज्यों की थी। इनमें परस्पर प्रायः कोई विवाद न था। बाहर से इनको किसी आक्रमण की आशंका न थी। फल यह हुआ कि यह लोग निज सैनिक बल को किसी बाहरी शक्ति का मुकाबला करने योग्य बनाये रखने पर ध्यान ही न देते थे। दूसरे इनको यह आशंका न थी कि कोई आक्रमणकारी या विजेता हमारे धर्म्म और संस्कृति पर भी प्रहार करेगा। इन्हें ऐसा अनुभव ही न था। इनके पारस्परिक युद्ध केवल राज्य-विस्तार या आत्म-रक्षा के उद्देश्य से होते थे। धर्म्म और संस्कृति के विषय में पूर्ण उदारता और सहनशीलता का व्यवहार था। ऐसी अवस्था में जब कि उनकी सार्वजनिक और सामान्य सम्पत्ति, अर्थात् उनकी संस्कृति तथा धर्म्म को कोई भय न था, कोई ऐसा प्रयोजन नहीं था जो उनको राजनीतिक दृष्टि से भी एकता के सूत्र में बाँध सकता। जिस समय मुसलमानी हमले शुरू हुए, उस समय इन राज्यों का कोई सामान्य हित नहीं था। एक नष्ट होता था, परन्तु उसके पड़ोसी के कानों पर जूँ तक न रेंगती थी। इसीलिए इन नवीन प्रकार के आक्रमणों ने पहले-पहल इनको विस्मय में डुबा दिया। जब तक इन लोगों की नींद खुली और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्हें इस सर्वतोमुखी भय की वास्तविकता का ज्ञान हुआ, तब तक शत्रु अपना काम पूरा कर चुका था। दक्षिण के सारे हिन्दू राज्य एक एक करके जीत लिये गये, क्योंकि कभी इन सब ने मिल कर शत्रु का मुकाबला न किया। वही ये लोग राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं संग्राम के इस सिद्धान्त को समझ पाये कि आक्रान्ता को अपने ऊपर चढ़ आने देने से पहले उसके घर पर चढ़ जाना चाहिये और अपने अस्त्र शस्त्र एवं संग्राम की विधि को समयानुसार बदलते रहना चाहिये।

देवगिरि पर चढ़ाई (सन् १२९४)—देहली से वापस लौट कर अलाउद्दीन ने देवगिरि की ओर चलने की तैयारी की और अलाउल्मुल्क को कड़ा का प्रबन्ध सौंप कर ८ या १० हजार घुड़-सवार सेना के साथ रवाना हो गया। उसके पीछे सुलतान को सन्तुष्ट रखने के लिये काजी अलाउल्मुल्क आवश्यकतानुसार सूचनाएँ भेजता रहा। बहुत से बीहड़ रास्तों को ठीक करके दो महीने में वह एलिचपुर पहुँचा। वहाँ उसने यह खबर उड़ाई कि मैं देहली के सुलतान से लड़कर नौकरी की खोज में निकल पड़ा हूँ। इसलिये वहाँ किसी ने उसे न रोका। दो दिन ठहर कर वह देवगिरि की तरफ बढ़ा। उसके सौभाग्य से देवगिरि राज्य की बहुत थोड़ी सी ही सेना राजधानी में थी। बाकी सब यादव राजा रामचन्द्र के बेटे और रानी के साथ दक्षिण की ओर तीर्थयात्रा पर गई हुई थी। ऐसी विकट अवस्था में बेचारे रामचन्द्र देव पर अकस्मात् यह आपत्ति आ गई। राजा ने जल्दी में दो तीन हजार सेना एकत्र की और लड़ने को निकला, परन्तु हार कर अपने किले में जा छिपा। किले की रक्षा के लिये उस समय उसके चारों ओर खाई भी न थी। किले में खान-पान की सामग्री भी काफी न थी, इसलिये राजा ने कोंकण से आनेवाले एक कारवाँ को पकड़ कर उसके बोरे किले में भर लिये और अब दृढ़ संकल्प किया कि घेरे का पूरी तरह से मुकाबला किया जायगा। इतने में अलाउद्दीन ने शहर में घुसकर लूट-मार की और ब्राह्मणों तथा धनाढ्य व्यापारियों को पकड़ लिया। इसी के साथ साथ उसने एक बड़ी चालाकी खेली। उसने यह खबर उड़ा दी कि मेरा चाचा २०००० फौज लेकर मेरी सहायता के लिये आ रहा है। यह सुनकर रामदेव ने उससे सन्धि की बात-चीत शुरू की। अलाउद्दीन ने भी यह सोचकर कि इतनी दूर और शत्रुओं के देश से लौटना बड़ा भयानक और दुष्कर होगा, ५० मन सोना, ७ मन मोती, ४० हाथी, कई हज़ार घोड़े और बहुत सा माल लेकर यह वादा किया कि मैं १५ दिन में वापस लौट जाऊँगा। इधर रामदेव ने शंकरदेव को बुलवा रखा था। अलाउद्दीन चलने की तैयारी ही कर रहा था कि शंकरदेव आ पहुँचा। यद्यपि रामदेव ने उसे रोकना चाहा, पर वह अलाउद्दीन को इस प्रकार सहज में छोड़ देने के लिए तैयार न हुआ। अलाउद्दीन ने नुसरत खाँ को क़िले का घेरा जारी रखने के लिये छोड़ा और आप फ़ौज का एक बड़ा हिस्सा लेकर शंकरदेव से लड़ने चला। लड़ाई में उसकी फ़ौज को हिन्दुओं ने हरा कर छिन्न भिन्न कर दिया। वह भागने को तैयार हो गई। इतने में ही नुसरत खाँ क़िले को छोड़ कर अपनी सेना वहाँ ले आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह देख कर हिन्दुओं को ख़याल हुआ कि अलाउद्दीन का चाचा सुलतान फ़ीरोज़ अपनी सेना लेकर आ पहुँचा है। बस वे भाग निकले। अब तो अलाउद्दीन ने खूब मार-काट की और फिर क़िले पर घेरा डाल दिया। उस समय रामदेव को पता चला कि सामान के बोरों में अनाज के बजाय नमक है। उसका धैर्य छूट गया और उसने फिर से सन्धि की प्रार्थना की। अब अलाउद्दीन ने बड़ी कड़ी शर्तें लगाईं जो राजा को माननी पड़ीं। फ़रिश्ता ने लिखा है कि उसने ६०० मन सोना, ७ मन मोती, २ मन अन्य प्रकार के जवाहिरात, १००० मन चाँदी, और एलिचपुर प्रान्त की कुल आमदनी वार्षिक कर के रूप में ली। इतनी असंख्य लूट बटोर कर अलाउद्दीन कड़ा को लौट गया।

इस चढ़ाई में अलाउद्दीन का एक मात्र उद्देश्य दौलत जमा करना था, नये देशों को जीत कर सलतनत का विस्तार करना नहीं। वह जल्दी से जल्दी सुलतान बनने को उतावला हो रहा था। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये धन की आवश्यकता थी। दक्षिणी राज्यों की अनन्त सम्पत्ति का हाल उसने सुन रखा था। इसलिये प्रयोजन-सिद्धि की कामना से पागल वह बिना आगा पीछा देखे एक अनजान देश में कूद पड़ा। भाग्य ने यहाँ भी उसका साथ दिया और भविष्य में भी।

जलालउद्दीन का वध और अलाउद्दीन का राज्य—जब सन् १२९५ के अन्त में अलाउद्दीन देवगिरि से माल लेकर वापस लौट रहा था, तब अहमद चप तथा अन्य हितैषियों ने हतबुद्धि जलाल को परामर्श दिया कि अलाउद्दीन को गवालियर के पास ही रोक देना चाहिए, परन्तु उसने एक न सुनी। अलाउद्दीन ने कड़ा पहुँच कर अपनी सेना को खूब तैयार किया और मोहान्ध बूढ़े चाचा को अपने भाई अल्मास बेग की सहायता से बड़े धोखे से बुलवाया। जब वह अलाउद्दीन बेग को बड़े प्रेम से गले लगा रहा था, तब इशारा पाकर उसके एक सैनिक ने बूढ़े सुलतान पर प्रहार किया और उसका गला काट कर अलाउद्दीन को दे दिया। इस दुष्ट दानव ने अपने कृपालु चाचा और श्वसुर का सिर भाले की नोक पर रख कर सारी सेना तथा अवध भर में घुमवाया जिससे सब को उसके मरने का विश्वास हो जाय।

इसके बाद वह देहली की तरफ़ रवाना हुआ। रास्ते में वह सैनिकों, अमीरों तथा अन्य प्रजा को खूब धन लुटाता गया जिससे वे उसका घृणित तथा नृशंसतापूर्ण पाप भूल जायँ। इस प्रकार उसने सेना को अपने पक्ष में रखा। जलाल का बड़ा लड़का अर्कली खाँ मुलतान का सूबेदार था। उसके देहली पहुँचने पर अर्कली खाँ का छोटा भाई और उसकी माँ भाग गईं। अलाउद्दीन ने लाल महल (कुश्के-सुर्ख) में अपना राज्याभिषेक कराया और अर्कली खाँ को सेना भेज कर पकड़वा मँगाया और मार डाला।

अलाउद्दीन के सिंहासनारूढ़ होने के समय देश की स्थिति—दक्षिण की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। उत्तर में बलबन की 'खड्ग नीति' का क्या परिणाम हुआ, इसका दिग्दर्शन भी हम करा चुके हैं। वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समस्याएँ, जिनका निराकरण किये बिना साम्राज्य की नींव दृढ़ नहीं हो सकती थी, पूर्ववत् बनी रहीं। किसी राज्य की नींव सुदृढ़ नहीं कही जा सकती जब तक कि वह प्रजा के सन्तोष, विश्वास और अनुमति पर आश्रित न हो। सुलतानी शासन की मूल त्रुटि तथा निर्बलता का कारण यही था कि सुलतानों ने प्रजा की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने अथवा उनमें विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि उनके शासन की प्रकृति सैन्य एवं विदेशीय अन्त तक बनी रही।

अलाउद्दीन के सामने भी ठीक वही परिस्थिति थी जो उसके अग्रगामियों के सामने थी। अमीरों के विद्रोह, स्वयं अपने बन्धु-बान्धवों की प्रतिस्पर्द्धा, नौमुस्लिमों तथा देशी सरदारों का विरोध तथा मुग़लों के आक्रमण, आन्तरिक तथा बाह्य स्थिति को यथेष्ट संकटमय बनाये हुए थे। बलबन की सैनिक व्यवस्था से मुग़लों के आक्रमण रुक तो न सके, परन्तु उनके विरुद्ध साम्राज्य की रक्षा की जा सकती थी। बलबन की आन्तरिक नीति सर्वथा निष्फल रही। इस प्रकार अलाउद्दीन को ये काम करने थे—

(१) बाहरी हमलों से साम्राज्य की और अपनी रक्षा करना।

(२) आन्तरिक विद्रोहों और अराजकता का दमन करके शान्ति स्थापित करना।

(३) साम्राज्य का विस्तार करना। और

(४) शासन को सुव्यवस्थित करना जिससे जनता सुखी एवं समृद्ध हो और उन्नति के साधनों का अभाव न हो।

अलाउद्दीन के सहायक—प्रारम्भ से ही अलाउद्दीन को अपने कुछ सामन्तों से बड़ी भारी सहायता मिली। इसके बिना वह स्वयं कुछ न कर पाता और कई अत्यन्त मूर्खता के तथा उछृङ्खलतापूर्ण काम कर बैठता। इन सहायकों में से उलुगखाँ (अल्मास बेग) ने उसे जलाल के नष्ट करने में, नुसरत खाँ जलेसरी ने देवगिरि में, ज़फ़र खाँ ने कड़ा में अर्कली के नष्ट करने और मुग़लों को पराजित करने में उसे बड़ी सहायता दी थी। अल्प खाँ ने भी इसी प्रकार उसे सहायता दी। क़ाज़ी अलाउलमुल्क बड़ा बुद्धिमान तथा दूरदर्शी नीतिज्ञ था। उसने अपने सत्परामर्श से सुलतान की कदम कदम पर रहनुमाई की और कई बार उसे अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कामों और बड़ी भयानक परिस्थितियों से अलाउद्दीन निर्बुद्धि था, अनपढ़ था, तुच्छ मस्तिष्कवाला मनुष्य था, किन्तु उसमें एक बड़ा गुण था। वह अपने हितैषियों के परामर्श मान लेता था और तुरन्त अपनी निराधार कल्पनाओं को छोड़ देता था। इसी गुण के कारण कई संकटों से वह बच गया। उसके शासन सम्बन्धी सब कार्य इन्हीं वज़ीरों के परामर्श से होते थे। उनके मरते ही उसके शासन की व्यवस्था तथा संघटन ढीला और अस्त-व्यस्त हो गया। अब हम देखेंगे कि अलाउद्दीन ने उपर्युक्त समस्याओं का कितनी सफलता के साथ हल करने का प्रयत्न किया।

उत्तर-पश्चिम सीमा तथा आन्तरिक विद्रोहों की समस्या; मुग़लों के हमले—खिल्जी शासन-काल के आरम्भ से ही उत्तर पश्चिमी सीमा की समस्या अत्यन्त विकट हो गई। मुग़लों के हमले बहुत जल्दी जल्दी होने शुरू हुए। सुलतान के सिंहासन पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैठने के थोड़े ही दिन पीछे सन् १२९८ के शुरू में ही मुग़लों की एक भारी सेना जुलन्दर (जलन्धर ?) तक घुस आई। उलुगखाँ ने इनको पराजित किया और वे वापस लौट गये, परन्तु दूसरे ही साल सन् १२९९ के अन्त में सल्दी नामी मुग़ल सेनापति एक बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ आया और उसने पच्छिम सीमा के सीवी नामक क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। उसको उस समय के सब से बड़े योद्धा ज़फ़र खाँ ने पराजित किया। वह १७०० मुग़लों को उनके नेता सल्दी समेत पकड़ कर देहली ले आया। अगले ही वर्ष इससे भी कहीं अधिक भयानक हमला कतलू ख्वाजा का हुआ जो दो लाख सेना लेकर आया। इस बार वे देश को विजय करने का संकल्प करके आये थे, लूट-मार करने नहीं आये थे। वे बिना किसी को मार्ग में सताये सीधे देहली आकर रुके। यह बड़े संकट का समय था। अलाउलमुल्क ने अलाउद्दीन को सलाह दी कि मुग़लों से सुलह कर ले, परन्तु उसने इस भीरुतापूर्ण परामर्श का तिरस्कार किया और सेना लेकर उनसे लड़ने निकल पड़ा। इस समय फिर ज़फ़र खाँ के युद्ध-कौशल ने साम्राज्य को बचाया। वह इतने जोश से लड़ा कि मुग़ल पीछे हट गये और वह उनको मारता काटता अकेला बहुत दूर तक उनके बीच में घुस गया। अलाउद्दीन उसकी सैनिक योग्यता के कारण उससे डरने और ईर्ष्या करने लगा था और उसके नष्ट करने की चिन्ता में था। अब उसे अपनी इच्छा-पूर्त्ति का अच्छा अवसर मिल गया। उसने ज़फ़रखाँ की सहायता के लिए कोई आदमी न भेजा और उसे अकेला पाकर मुग़लों ने मार डाला, परन्तु मुग़ल ज़फ़र खाँ की बहादुरी से इतने भयभीत हो गये थे कि वे रात में भाग गये और फिर कुछ काल तक उन्होंने हिन्दुस्तान पर हमला करने का नाम न लिया।

सन् १२९९ में सुलतान ने गुजरात को फ़तह कर लिया था और इधर सल्दी आदि के हमलों को दबा दिया था। यद्यपि परिस्थिति इतनी विकट थी कि राज्य की रक्षा के लिये कोई ऐसा दूरदर्शी सैनिक न था जो सीमान्त प्रदेश को उस प्रकार सुरक्षित कर देता जिस प्रकार बलबन ने किया था, जिसमें मुग़ल अथवा कोई बाहरी आक्रमणकारी देश के अन्दर घुसने न पाता। इसका प्रबन्ध करने का तो अलाउद्दीन को ध्यान ही न आया। वह तो तुच्छ-हृदय मनुष्यों की भाँति अपनी सफलता और धन-धान्य के सन्तोष में ही फूला न समाता था। कोई अच्छा राजनीतिज्ञ और शासक राज्य की गहन समस्याओं के निराकरण की चेष्टा करनेवाला न था। तब अलाउद्दीन को क्या सूझी ? सिंहासन पर जमते ही उसे सूझा कि जिस प्रकार हज़रत मुहम्मद के चार साथी (अर्थात् पहले चार खलीफ़ा) थे वैसे ही मेरे भी चार साथी हैं और वे बड़े शूरवीर भी हैं। तो फिर मैं भी क्यों न एक नया धर्म स्थापित करके हज़रत से भी एक क़दम बढ़ जाऊँ और सांसारिक क्षेत्र में सारी दुनियाँ को जीत कर सिकन्दर-ए-आज़म से अधिक नाम क्यों न कमाऊँ ? अपने इस संकल्प के सम्बन्ध में क़ाज़ी अलाउलमुल्क से उसने परामर्श माँगा। अलाउलमुल्क को वास्तविक स्थिति का पूरा परिज्ञान था। उसने सुलतान से कहा कि नबी बनना या नया धर्म चलाना बादशाहों का काम नहीं है;

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और दूसरा अर्थात् संसार को जीतने का विचार तब करना उचित है जब पहले अपने घर को सँभाल लो। पहले आन्तरिक विद्रोहों का दमन करो, भारतवर्ष के शेष भाग को जीतो, तब आगे की सोचना। इससे पहले सारी दुनिया को अधिकृत करने का विचार करना हवा में महल बनाना है। यह स्पष्ट बात सुन कर सुलतान चुप हो गया और फिर कभी उसने नया धर्म चलाने का प्रस्ताव न किया परन्तु फिर अपने सिक्कों पर सिकन्दर सानी (दूसरा) के खिताब की मोहर लगवा कर अपने निर्मूल गर्व को पूरा किया और अपनी तुच्छ बुद्धी का परिचय दिया।

इसी अवकाश में कई आन्तरिक विद्रोह भी हो चुके थे। गुजरात से लौटते समय उलुगखाँ और नसरत खाँ के अन्याय और कड़ाई के कारण जालौर के पास नौ मुस्लिमों ने बलवा कर दिया था। दोनों सेनापति बाल-बाल बच गये। विद्रोहियों को और उनके परिवार को ऐसे घृणित दण्ड दिये गये जिनकी उपमा इतिहास में कठिनता से मिलेगी। जो बचे, वे भाग कर हिन्दू राजाओं की शरण में चले गये। इसी प्रकार सन् १२०१ में रणथम्भोर को जाते समय तिलपत के पास उसके भतीजे अकट खाँ ने नये मुस्लिमों के १०० सवारों का दस्ता लेकर उसे घेर लिया और इतना घायल कर दिया कि वे उसे मरा जान कर चले गये। इसी समय उसके सम्बन्धियों ने बदायूँ और अवध में विद्रोह कर दिया। साथ ही देहली में हाजी मौला के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह करके कोतवाल को निकाल दिया और शहर पर अपना अधिकार जमा लिया। इस विद्रोह को दमन करने में बड़ी कठिनाई पड़ी। इतनी चोटें लगने के बाद अलाउद्दीन को यह सूझ पड़ी कि स्थिति वास्तव में कुछ भयानक है। उसको सँभालने के लिये उसने अपने मन्त्री मण्डल से सलाह ली। उन्होंने इसके चार मुख्य कारण बतलाये—

(१) गुप्तचर विभाग का काफ़ी न होना, जिसके कारण जनता के कामों का पता ही नहीं चलता।

(२) दरबार में आम तौर पर मदिरा-पान और बे-लगाम बातचीत का रवाज।

(३) अमीरों में परस्पर आना-जाना, सामाजिक सम्पर्क एवं शादी-ब्याह का बहुत अधिक होना जिसके कारण उन्हें षडयन्त्र रचने के अवसर मिलते हैं। और

(४) सामान्य जनता का सुखी होना जिसके कारण उनको राजद्रोही विचारों का अवसर मिलता है।

रणथम्भोर से लौटते ही उसने कतिपय बड़े-बड़े अमीरों को छोड़ कर सब का माल छीनना शुरू कर दिया। माफ़ीदारों की ज़मीनें ले ली गईं। कर वसूल करने वालों को आज्ञा हुई कि जितना रुपया किसी के पास मिले, ज़ब्त कर लें। गुप्तचर विभाग इतने विस्तृत रूप से स्थापित किया कि मिनट-मिनट की खबरें उसके पास आने लगीं। शराब का बेचना और बनाना तक बन्द कर दिया गया। सुलतान ने अपने शराब के पीपे शहर के बाहर उलटवा दिये और बर्तन तुड़वा डाले। अमीरों का पारस्परिक विवाह सम्बन्ध, पाँच आदमियों से अधिक का बिना आज्ञा के मिलना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि सब बन्द कर दिये। हिन्दू ज़मींदारों और कर उगाहनेवाले अफ़सरों से सब की आय के अनुसार इतना कर वसूल करना आरम्भ किया कि उनके पास केवल पेट भरने को रह जाता था। अपने इन सब कामों के विषय में उसने काज़ी मुग़ीस-उद्दीन बयानवी से पूछा कि क्या ये कुरान के अनुकूल हैं? क़ाज़ी ने कहा कि कई जगह आपकी सज़ा इत्यादि क़ुरान के खिलाफ़ है। तब उसने उत्तर दिया कि मैंने क़ुरान के नियम तो पढ़े नहीं हैं, परन्तु मैं पक्का मुसलमान हूँ। तथापि जब लोग मेरी आज्ञा नहीं मानते, तब मुझे उनको कठोर दण्ड देने पड़ते हैं *। ये उपाय शासन नीति के थे, धार्मिक कट्टरता के कारण नहीं। इसके बाद फिर आन्तरिक विद्रोह न हुए।

अब हम इस घटना के मर्म पर संक्षेप से विचार करेंगे। अलाउद्दीन के तख़्त पर बैठने के छ बरस बाद तक (१२९६ से १३०२) जनता अपने असन्तोष को इसी प्रकार प्रगट करती रही और आगे पीछे बराबर विद्रोह होते रहे, परन्तु सुलतान के कानों पर तब तक जूँ न रेंगी जब तक कि स्वयं उसकी जान खतरे में न पड़ गई। वह तो एक नया नबी और सिकन्दरे आज़म, दोनों ही एक साथ बनने का स्वप्न देख रहा था। क़ाज़ी अलाउलमुल्क के कान खोलने पर भी उसकी मोटी बुद्धि ने कुछ न समझा। परन्तु जब इस समस्या का भय इतना बढ़ा कि उसकी जान और राजधानी दोनों ही लगभग चले गये, तब उसने अपनी सेना-समिति से परामर्श किया कि इस बीमारी का क्या इलाज करना चाहिये। इसका उपाय जो सेना समिति ने सुलतान को बतलाया उसका बयान हम कर चुके हैं। परन्तु उन चार उपायों पर ध्यान से विचार करने से स्पष्ट जान पड़ेगा कि केवल क़ाज़ी अलाउलमुल्क के सिवा उसके अन्य मन्त्रीगण भी अपने मालिक की बुद्धी के अनुरूप ही थे। उन्होंने जो पहला इलाज बतलाया, अर्थात् एक सुचारू गुप्तचर विभाग, वह तो ठीक था, परन्तु

---

* अलाउद्दीन के इस कथन में विद्वानों ने एक नवीन शासन सिद्धान्त की कल्पना कर ली है। कुरान के नियमों का इस प्रकार उल्लंघन कोई नई बात न थी। बादशाही के गद्दी पर बैठने में भूमि-कर, न्याय विभाग इत्यादि सभी बातों में सभी सुलतान परिस्थिति के अनुसार परिवर्त्तन करते चले आये थे। बलबन का लखनौती के लोगों को दण्ड देना उतना ही कुरान के मियमों के विरुद्ध था। अलाउद्दीन भी अपने बल के ज़ोर में विद्रोह को दबाने के लिये जो मन में आता था, करता था। उसे किसी शासन सिद्धान्त का ज्ञान तो था ही नहीं, नये सिद्धान्त सोच कर निकालना तो दूर रहा। स्वयं उसके ही कथन से सिद्ध है कि उसने कभी किसी सिद्धान्त पर विचार नहीं किया था। केवल एक बात उसके कथन से प्रकट होती है। उसके शासन में विद्रोह होते थे और वह अपनी शक्ति से उनको करने का भरसक यत्न करता था। जैसा कि उन दिनों रवाज था, वह अपने कृत्यों के विषय में काजी से पूछा करता था। क़ाजी के विरोध करने पर उसने कह दिया कि मुझे जो भला सूझता है, वह करता हूँ, क़ानून मुझे आता नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर इस विभाग का जिस हद तक प्रयोग किया गया, वह किसी प्रकार भी बुद्धिसंगत नहीं समझा जा सकता। सरा उपाय भी ठीक था। यद्यपि शराबखोरी का विद्रोहों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता, तो भी इस दोष एवं अनर्गल बातों को रोकने से वायुमण्डल को दोष-रहित एवं शान्त बनाने में अवश्य सहायता मिली होगी। परन्तु यह समझ में नहीं आता कि उस युग की मर्यादा के अनुसार भी, तीसरा और चौथा उपाय अर्थात् अमीरों के हर प्रकार के सामाजिक व्यापार को रोक देना और सामान्य जनता से इतना अधिक कर वसूल करना एवं उनकी सब सम्पत्ति छीन लेना, ताकि वे दिन भर अपना पेट भरने की चिन्ता में ही लगे रहें, कहाँ तक बुद्धिमत्ता पर आश्रित थे। हम ऊपर निर्देश कर आये हैं कि जनता को इस प्रकार कुचल कर शान्ति स्थापित करना, कोई सफलता का प्रमाण नहीं है। इस प्रकार की शान्ति कृत्रिम और अस्थायी होती है। ना हीं, इस प्रकार की नींव पर कोई राज्य ठहर सकता है, और न ठहरा।

परन्तु बुरा तो यह है कि मन्त्री मण्डल ने जो उल्टा सीधा परामर्श दिया उसको सुलतान ने बिना कोई अदल-बदल किये सम्पूर्ण रूप से कार्यान्वित कर डाला। सुलतान की अपनी बुद्धि के दिवालियेपन का यह एक और प्रमाण था।

आन्तरिक विद्रोहों को रोकने का उपाय अलाउद्दीन ने अच्छा या बुरा, चाहे जैसा हो, किया तो पर बाहरी हमलों की समस्या की ओर उसका ध्यान न गया। इसके बाद सन् १३०२-३ में उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। उसके देहली से दूर चले जाने की खबर सुन कर मुग़ल सरदार तरग़ी एक बड़ी सेना लेकर रवाना हुआ। मुग़लों के डर से बलबन तो देहली छोड़ कर कहीं न जाता था, परन्तु अलाउद्दीन अभी इस विपत्ति का अनुभव ही न कर पाया था। सौभाग्यवश तरग़ी के आने से पहले ही वह चित्तौड़ से लौट आया था। इस समय उसकी सेना इतनी बिखरी हुई थी कि सुलतान के लिए सीरी के अन्दर घुस जाने के सिवा और कोई चारा ही न था। मुग़लों ने दो महीने तक शहर को घेरे रखा, सारा यातायात बन्द कर दिया और आस पास के देहातों को खूब लूटा। परन्तु थोड़े दिन बाद वे आप ही घेरा उठा कर लौट गये; शायद इस कारण कि वे घेरा डालना नहीं जानते थे और उन्होंने आसपास के देहातों को बरबाद करके अपने लिये खानपान की सामग्री का साधन भी नष्ट कर दिया था। जो हो, यह भाग्य ही था जिसने सलतनत को उस समय बचा लिया। अलाउद्दीन में देश की राजनीतिक और सैनिक आवश्यकताओं को समझ सकने की कितनी योग्यता थी, यह उसके अब तक के कार्यों से स्पष्ट है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि क़ाज़ी अला-उल्मुल्क के आरम्भ में ही समझा देने पर भी और मुग़लों के सतत हमले होते रहने पर भी इस मूढ़ सुलतान को सीमा की रक्षा करने की आवश्यकता न सूझी।

अन्त को इस संकट से दैवी रक्षा हो जाने पर उसे सूझा कि सीमा प्रदेश की समस्या आन्तरिक अराजकता की समस्या से भी गहन तथा आवश्यक है। इसके लिये उसने फिर अपने मंत्रियों से परामर्श किया। यहीं से उसके सेना विभाग के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुधार का आरम्भ हुआ। मंत्री मण्डल की योजना के अनुसार उसने अपनी स्थायी सेना की संख्या पाँच लाख से ऊँची कर दी और उसके सुशिक्षण इत्यादि की भी व्यवस्था की। मुग़लों के मार्ग में जो क़िले थे, उनकी मरम्मत कराई* और उनमें फौजें रखीं। इतनी बड़ी सेना के भरण-पोषण के लिए धन की आवश्यकता हुई, और यह उसकी कृत्रिम आर्थिक योजना के आरम्भ का कारण हुआ। परन्तु हम बड़े आश्चर्य से देखते हैं कि इतनी भारी सेना रखने पर भी तथा अन्य और सब प्रबन्ध करने पर भी छः मास बाद सन् १२०५ के आरम्भ में ही मुग़लों (अलीबेग तरताक़ आदि) का एक भारी आक्रमण होता है और वे हिमालय की तलहटी से होते हुए देहली ही नहीं, दोआब के बीचों बीच अमरोहा तक बिना रोक-टोक पहुँच जाते हैं। पंजाब के क़िलों की सेना को शायद ख़बर भी नहीं होती। उनकी इतनी अक्षम्य असावधानी का या तो यह कारण हो कि सुलतान स्वयं उदासीन या असावधान हो, और इस कारण वे भी ढीले पड़ गये हों अथवा वे असन्तुष्ट हों। जो हो, ऐसे अस्थिर काल में, जब कि सैनिक बल पर ही राज्य आश्रित हो इतना भारी प्रबन्ध करने के बाद भी, किसी बाहरी सेना का सलतनत के केन्द्र से भी आगे तक अज्ञात रूप से घुस जाना एक ऐसी घटना है जिससे शासक की सैनिक योग्यता तथा जागरूकता के अभाव का अनुमान भली भाँति किया जा सकता है। इस पर टीकाटिप्पणी करना व्यर्थ है। सौभाग्य से उस समय भी एक बड़ा योग्य सैनिक गयासउद्दीन तुग़लक़ विद्यमान था जिसने आक्रमणकारियों को पराजित किया। फिर एक बार अलीबेग के नेतृत्व में मुग़लों का आक्रमण सन् १२०७ के लगभग हुआ और फिर 'ग़ाज़ी मलिक' (ग़यास तुग़लक़) ने ही उनको सिन्धु नदी के किनारे नष्ट किया। इसके बाद उसके शासन में मुगलों का कोई आक्रमण नहीं हुआ।

अलाउद्दीन का आर्थिक उद्योग—जैसा हम ऊपर निर्देश कर आये हैं, जब सुलतान ने इतनी बड़ी सेना रखने का निश्चय किया, तब यह समस्या पैदा हुई कि इस सेना का खर्चा किस प्रकार चलेगा। सुलतान की इच्छा थी कि सेना का प्रत्येक सिपाही हर प्रकार से योग्यतम रहे, उसके अस्त्र शस्त्र तथा वस्त्र सब ही अच्छे हों और वह अपने परिवार का रहन-सहन भी एक उच्च परिवार के समान रख सके। इसके अलावा प्रत्येक सिपाही एक या दो और कोई कोई तीन घोड़े रक्खे। इतनी बड़ी और उच्च-कोटि की फ़ौज के पालन-पोसन के व्यय का अनुमान इतना था कि सल्तनत की आय से उसका पूरा नहीं पड़ सकता था। सुलतान ने यह भी देखा कि ख़ज़ाने में जितना धन है वह भी थोड़े दिन में समाप्त हो जायगा। आवश्यकता यह थी कि कोई ऐसी योजना निकाली जाय जिससे राज्य की सामान्य आय से सेना का व्यय भी पूरी तरह चलता रहे।

* स्पष्ट है कि यद्यपि मुग़लों के इतने हमले हो चुके थे, तब भी अलाउद्दीन ने क़िलों इत्यादि को रक्षा के योग्य बनाने का यत्न न किया था। अत्यन्त आवश्यक क़िलों तक की कोई ख़बर न ली गई थीं। (देखो के० हि० ई०, पृ० १०६)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राज्य की आय को बढ़ाने की भी कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी क्योंकि प्रजा के ऊपर करों की मात्रा पहले ही इतनी अधिक हो गई थी कि उसे बढ़ाना असम्भव-सा था। इस कारण यह समस्या और भी अधिक विकट हो गई थी।

इस संकट में अलाउद्दीन ने फिर अपने मन्त्री-मण्डल से परामर्श किया। मन्त्री मण्डल ने इस समस्या पर गम्भीर विचार करके जो उपाय सुलतान को बतलाया उसको सुलतान ने पूरी तरह मानकर उसको कार्य रूप में परिणत करना शुरू कर दिया। मन्त्री मण्डल की इस योजना को ही अनेक आधुनिक इतिहासज्ञों और लेखकों ने 'आर्थिक सुधार' का नाम दिया है और स्पष्टरूप से यह कहा है कि ये सुधार प्रजा के लिये अत्यन्त हितकारी साबित हुए।

इस आर्थिक योजना की वास्तविकता को ठीक तौर से समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम दो बातों को अच्छी तरह जान लें और ध्यान में रक्खें। पहले तो यह कि इस योजना का उद्देश क्या था, किस आवश्यकता के कारण यह योजना बनाई गई और कार्यान्वित की गई थी। दूसरे यह बात किसीसे छिपी नहीं कि अन्दरूनी विद्रोह का दमन करने के लिये सुलतान ने अपने मन्त्री मण्डल की सलाह से ही यह उपाय सोचा था कि प्रजा के ऊपर इतने कर लगाये जायँ कि उनके पास केवल ज़िन्दा रहने का सामान रह जाय जिससे अपनी आजीविका कमाने के सिवा कोई और कुछ सोच ही न सके। इन दो बातों का सम्बन्ध इन आर्थिक उपायों से किस प्रकार है यह हम आगे चल कर बतलायेंगे।

अब इन आर्थिक उपायों अथवा योजना का संक्षेप से वर्णन किया जाय। इस योजना का एक मात्र आधार यह था कि सैनिकों की साधारण तनखाह तो उनके लिये ना काफ़ी थी और उसके बढ़ाने के साधन भी सरकार के पास नहीं थे, अतएव उन सब वस्तुओं का दाम उतनी मात्रा में घटा दिया जाय जितना घटाने से सैनिकों की आवश्यकता की सब प्रकार की सामग्री उनकी थोड़ी तनखाह में ही पूरी तरह से मिलने लगे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये चार प्रकार के नियम बनाये गये।

इन में से पहले तीन नियम तो हर प्रकार की सामग्री की क़ीमतों को घटाने के लिये बनाए गए। (१) हर प्रकार की खाद्य वस्तुओं की दर निश्चय करने के लिये, (२) हर प्रकार के कपड़े की दर निश्चय करने के लिये, (३) नोकर, लौंडी, गाय, बैल, घोड़े, बकरी, हर प्रकार की सौदगरी के सामान, रोटी, मिठाई, तथा घर गृहस्थी की अन्य आवश्यक चीज़ों, सबकी दरें निश्चय कर दी गईं। परन्तु चौथी नियमावली इस उद्देश से बनाई गई कि इन सब नियमों का पालन किस प्रकार कराया जाय। इस नियमावली में मुख्य बातें ये थीं—(१) चीजों की दरों का निश्चय करना, (२) चीज़ों के मिलने और देहली आने का पूरा प्रबन्ध करना, अर्थात् दो आबे के देहातों की पैदावार पर क़बजा करना, सौदागरों और व्यापारियों से तय करना कि वे सामान गाँवों से इकट्ठा करके देहली पहुँचा दें, कोई मनुष्य सामान घर में भर कर न रखने पावे, सरकारी खत्तों और कुठारों में अनाज जमा करना, और जनता को दबाने और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

डराने के लिये ऐसे उपाय करना जिस से वे इन नियमों की अवज्ञा करने की हिम्मत न कर सकें। (३) निश्चत कीमतों को दुर्भिक्ष के समय में भी बनाये रखना, (४) दुर्भिक्ष के समय में कड़ाई के साथ राशन करना।

इस आर्थिक योजना के सम्बन्ध में एक और भ्रान्ती है जिसे इस जगह बतला देना आवश्यक है क्योंकि यह भ्रान्ती प्रायः अब तक के सभी लेखकों ने की है। भूल इस विषय में है कि यह आर्थिक योजना देश के किन स्थानों या विभागों में लागू की गई थी। प्रायः यह समझा जाता है कि सारे दोआब तथा देहली के आस-पास के देहातों में इस योजना को लगाया गया था। यह बात ठीक है कि इस योजना का प्रभाव उपरोक्त प्रदेशों पर पड़ा था परन्तु सबसे मुख्य बात याद रखने की यह है कि केवल देहली शहर के अन्दर ही दरों का नियन्त्रण (Price control) सब प्रकार की सामग्री के विक्रय के लिये किया गया था। सरकारी निश्चित दरों से अन्य किसी स्थान पर सामान नहीं बिक सकता था। अन्य सब स्थानों से तो सामान ला कर देहली में बिकने के लिये सौदागरों को इकट्ठा करना पड़ता था। इस काम को पूरा करने के लिये यह आवश्यक था कि दोआब के किसानों को शाही हुक्म दिया गया कि वे अपनी पैदावार का, खाने भर को बचा कर, बाक़ी सब हिस्सा, सरकारी नौकरों को ऐसे भाव से बेचें कि, देहली तक पहुँचने का खर्चा लगा कर भी अनाज उस दर से बेचा जा सके जो सरकार ने निश्चय की थी। अर्थात् देहली के आस पास और दोआब के किसानों को अपनी पैदावार का मुख्य भाग देहली की घटी हुई दरों से भी सस्ती क़ीमत पर बेचनी पड़ती थी। देहली के बाहर कहीं भी खुले बाज़ार में सरकारी दरों पर सामान बिकने की न आज्ञा थी, न बिकता था। इसी प्रकार अन्य सामान लाने वाले सौदागरों, व्यापारिओं, इत्यादि सब को सामान ऐसे मूल्य पर लाना पड़ता था जिस से वह देहली की सस्ती क़ीमतों पर बेचा जा सके। इसके बारे में बड़ा भारी भ्रम प्रायः यह है कि यह सस्ते दर सारे देश में प्रचलित कर दिये गये थे। ऐसा अवश्य जान पड़ता है कि बाहर के लोगों को भी देहली आ कर माल लेने में कोई रोक-टोक नहीं थी। परन्तु ऐसा नहीं था कि कोई अपनी आवश्यकता से अधिक सामान सस्ते दाम पर ख़रीद कर बाहर जाकर बेचे और नफ़ा उठा सके। अपनी दैनिक आवश्यकता से अधिक एक माशा भी सामान किसी को नहीं मिल सकता था। अगर कोई ऐसा करने की कोशिश करता था तो उसको बड़ी कड़ी सज़ा दी जाती थी।

अब देखना यह है कि इस योजना से किस किस वर्ग जो लाभ हुआ और सामान्य जनता पर इसका कैसा प्रभाव पड़ा। यह बात साफ़ है कि क़ीमतों के घट जाने से केवल वेतन भोगी वर्ग अर्थात् देहली के सरकारी नौकरों को विशेष लाभ हुआ। सैनिकों को भी इतना लाभ हुआ जितना उनके वेतन बढ़ाने की आवश्यकता सरकार ने समझी थी क्योंकि उसको दूसरे प्रकार से पूरा कर दिया गया। सामान्य व्यापारियों को लाभ तो केवल इतना हुआ कि अपनी आवश्यकता के लिये वे भी सस्ते मूल्य पर सामान ले सकते थे, परन्तु हानि बहुत अधिक हुई क्योंकि उनको अपनी सब चीज़ें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरकार को सस्ते दामों पर बेचनी पड़ती थीं चाहे वे उतने मूल्य पर स्वयं ख़रीद सकें या नहीं। सबसे अधिक हानि किसानों को हुई जिन्हें देहली के सस्ते दर से भी काफ़ी कम क़ीमत पर अपनी पैदावार का मुख्य भाग बेचना पड़ता था। देहली के देश के सभी स्थानों के खुले बाज़ार में चीज़ों के भाव सामान की कमी के कारण बाहर और भी तेज़ हो गये थे और किसानों एवं अन्य जनता को इन बढ़ी हुई क़ीमतों पर समान ख़रीदना पड़ता था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट ज्ञात होगा कि इस आर्थिक योजना से न तो जनता को किसी प्रकार का लाभ हुआ और न ही देश की आर्थिक उन्नति हुई। सच तो यह है कि उलटी हानि हुई। और जैसा हम ऊपर निर्देश कर आये हैं, सुलतान ने कभी स्वप्न से भी ऐसा सोचा ही नहीं था कि जनता की आर्थिक दशा को सुधारने के उद्देश से आर्थिक योजना बनाई जाय। इसके प्रतिकूल उसको तो यह सलाह दी गई थी कि अन्दरूनी विद्रोहों का दमन करने के लिये यह आवश्यक है कि देहात की जनता को इतना दरिद्र बना दिया जाय कि केवल खाने भर को छोड़ कर उनके पास कुछ न रह जाय। हम ऊपर बतला चुके हैं कि इस उद्देश की पूर्ति के लिये सुलतान ने पहले ही कर इत्यादि इतने बढ़ा दिये थे कि सामान्य जनता के पास कुछ धन बाक़ी न रह जाय। जो कुछ कसर इसमें रह गई थी उसे इस आर्थिक योजना ने पूरी तरह पूरा कर दिया।

साम्राज्य-विस्तार—साम्राज्य का विस्तार जितना खल्जी-काल में हुआ, उतना पहले कभी न हुआ था। सन् १२९९ में उलुग खाँ और नसरत खाँ ने गुजरात और ख़म्बात (Cambay) को अधिकृत किया। गुजरात का बघेल वंशीय राय कर्ण अपने परिवार को छोड़ कर भाग गया और उसकी स्त्री और लड़कियों को सुलतान के दरबार में भेज दिया गया*। खम्बात से उन्होंने एक हिन्दू गुलाम काफ़र को १००० दीनार में मोल लेकर सुलतान के पास भेजा। सोमनाथ की मूर्ति को देहली की मस्जिद के देहलीज़ पर रखवाने के लिये भेजा। फिर गुजरात में शासन स्थापित करके लौट आये। सन् १३०१ में रणथम्भोर का किला लेने के लिये एक वर्ष तक घेरा डालना पड़ा। इस बीच में नसरत खाँ और उलुगखाँ दोनों मर गये थे।

सन् १३०३ में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के क़िले पर चढ़ाई की। राजा रतनसिंह की अत्यन्त सुन्दरी रानी पद्मिनी के अनुपम रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर सुलतान मुग्ध हो गया था। राणा ने बड़ी उदारता से पद्मिनी को सुलतान को दिखलाने का

* दवल रानी या देवल देवी के बचकर अपने पिता के साथ भाग जाने और फिर कई वर्ष बाद काफ़ूर के हमले में पकड़े जाने तथा ख़िज्र खा के उससे प्रेम और विवाह इत्यादि की गाथा अमीर ख़ुसरू की मनगढ़न्त जान पड़ती है। सिवा उसके ग्रन्थ 'दवल रानी' या 'आशिका' के यह कहानी और किसी समकालीन लेखक ने नहीं लिखी है। इसकी सत्यता में संशय होने के और भी कई कारण हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रबन्ध किया। पर उसने राणा को धोखे से पकड़ लिया। फिर पद्मिनी ने उसे अपनी चतुराई से छुड़ाया। उसने सुलतान से कहा कि ८०० बाँदियों के साथ डोलों में तुम्हारे पास आ रही हूँ और उनमें ८०० जवान राजपूत लेकर पहुँच गई और बड़ी वीरता से रतनसिंह को छुड़ा लाई। फिर अलाउद्दीन ने बरसों तक घेरा डाल चित्तौड़गढ़ को जीता। पद्मिनी सैकड़ों राजपूतिनियों के साथ जौहर की आग में जल कर भस्म हो गई। सुलतान ने अपने पुत्र खिज्र खाँ को चित्तौड़ का शासक बनाया और उसका नाम खिज्राबाद रखा। परन्तु थोड़े दिन बाद जब अलाउद्दीन की शक्ति कम हुई, तब चित्तौड़ को राणा ने वापस ले लिया।

सन् १३०५ में मुलतान के सूबेदार ऐन उलमुल्क को मालवे की विजय के लिये भेजा गया। उसने चँदेरी के हिन्दू राजा को बड़ी कठिनाई से पराजित किया। तबसे उज्जैन, धार, माण्डू और चँदेरी सब देहली की सल्तनत में मिला लिये गये।

इसके बाद सुलतान को सेना इत्यादि के सुधार में लगे रहना पड़ा। सन् १३०९ में उसने मलिक काफूर को, जो उसका सबसे प्रिय मन्त्री हो गया था, मलिक नायब की उपाधि दी और दक्षिण को फिर से जीतने के लिये भेजा। डेढ़ साल के अन्दर मलिक नायब देवगिरि और वारंगल को जीत कर और बहुत सा धन लेकर वापस लौटा। फिर सन् १३११ में सुदूर दक्षिण के राज्यों पर मलिक नायब ने चढ़ाई की। एक वर्ष में उसने द्वारसमुद्र के होयशल राजा को पराजित किया, उससे खिराज वसूल किया और रामेश्वरम् तक जा पहुंचा। वहाँ एक मस्जिद बनवाई और लूट का अनन्त माल लेकर लौटा। इन नये प्रदेशों पर कोई स्थायी शासन स्थापित नहीं किया जा सका। केवल उनको जीतकर राजाओं से कर वसूल कर लिया गया था।

इसके बाद नौ-मुस्लिमों का फिर एक बड़ा भारी बलवा देहली के पास हुआ, परन्तु उनको बड़ा कठोर दण्ड दिया गया।

अब अलाउद्दीन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उसके सब सच्चे हितैषी और सलाहकार मर चुके थे। काफ़ूर ने उसको बिलकुल अपनी मुट्ठी में कर लिया। चित्तौड़, देवगिरि आदि स्वतन्त्र होने लगे और सल्तनत का ढाँचा ढीला पड़ने लगा। काफ़ूर ने खिज्र खाँ के विरुद्ध सुलतान को बहका दिया। फरवरी १३१५ में उसकी मृत्यु हो गई।

काफ़ूर ने खिज्र खाँ और उसके भाइयों को तो गवालियर के क़िले में बन्द करके अन्धा करा दिया और पाँच वर्ष के एक बच्चे को गद्दी पर बैठाकर स्वयं उसका राज-प्रतिनिधि बनकर शासन करने लगा। वह सुलतान के सारे परिवार को नष्ट करना चाहता था, परन्तु ३५ दिन के अन्दर उसको कत्ल कर दिया गया और अलाउद्दीन का लड़का मुबारक शाह, जो बच गया था, गद्दी पर बैठा। इसने देवगिरि पर चढ़ाई करके हरपाल देव की ज़िन्दा खाल खिंचवाई। फिर वह विलासिता में डूब गया। अवसर पाकर गुजरात के एक अन्त्यज जातीय हिन्दू ने मुबारक को बिलकुल अपनी मुट्ठी में कर लिया। यह नाम के लिये मुसलमान हो गया था और इसने अपना नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हसन रख लिया था। फिर इसने बड़ी योग्यता से सारे खल्जी अमीरों को निकलवा दिया और मुबारक को मरवा कर स्वयं खुसरो शाह के नाम से बादशाह बन बैठा। यद्यपि मुसलमान लेखकों ने हसन* की जी भरकर बुराई की है, तो भी उन्हीं के वर्णन से यह साफ़ सिद्ध हो जाता है कि यह बड़ा योग्य पुरुष था; और जिस प्रकार मुसलमान बादशाहों ने हिन्दू धर्म का अपमान और नाश किया था, उसी प्रकार इसने उनसे बदला लेना चाहा था। उसने मुसलमानों की धर्म-पुस्तकों, पवित्र स्थानों इत्यादि के साथ वही बर्त्ताव करने शुरू किये। परन्तु थोड़े ही दिन बाद उसे सीमा प्रदेश के योग्य सूबेदार ग़यास उद्दीन तुग़लक ने पराजित करके क़त्ल किया और मुस्लिम अधिकार पुनः स्थापित किया।

अलाउद्दीन का चरित्र—इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उसके कार्यों से सिद्ध है कि वह एक बहुत साधारण कोटि का सिपाही था। हाँ सिपाही के गुण, निर्भीकता, निर्द्वन्द्वता इत्यादि, उसमें पूरी मात्रा में विद्यमान थे। सुलतान का भतीजा होने के कारण और अपने चाचा की मूर्खता के कारण उसे अपनी आकांक्षा-पूर्त्ति का अवसर मिला। पग पग पर भाग्य ने उसका साथ दिया। इसके अतिरिक्त उसमें कोई युद्ध कौशल या प्रतिभा नहीं थी। महमूद ग़ज़नवी और बलबन जैसा युद्ध-चातुर्य, दूरदर्शिता अथवा सावधानी का उसमें पता नहीं था। उसे मुग़लों इत्यादि से स्वयं कभी नहीं लड़ना पड़ा और न उसका व्यक्तित्व ही इतना आकर्षक था कि उसके सैनिक उस पर जान देते। वह तो सदा सोना बिखेर बिखेर कर उनसे काम लेता रहा। जब तिलपत में अकट ख़ाँ ने उसे मरा जानकर छोड़ दिया और रणथम्भोर की छावनी में पहुँच कर इसकी सूचना दी, तब बहुतों ने तुरन्त ही उसे सुलतान मान लिया। जो हिचके, वे केवल इस भय से कि कहीं अलाउद्दीन जीता न हो, उसके प्रति प्रेम या आदर से नहीं। भाग्य से उसको सहायक भी बड़े योग्य और सच्चे हितैषी मिलते रहे। जब वे मर गये, तब उसकी योग्यता भी लुप्त हो गई। जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, उसके शासन-काल में लगभग सभी विभागों में सुधार हुए, परन्तु उनका उद्देश्य वही एक था; अर्थात् प्रजा को दबाये रखना और अपना प्रभुत्व क़ायम रखना। शासन तथा शासक प्रजा का सेवक है, उसे सब कार्य मुख्यतया प्रजा की सुख-समृद्धि के लिये करने चाहिएँ, यह सिद्धान्त अभी मुस्लिम

---

* हसन (खुसरो) की प्रतिक्रिया (Re-action) उसी हिन्दू प्रतिरोध का एक निदर्शन था। जिसका हम संकेत करते आये हैं। आश्चर्य की बात यह है कि आधुनिक लेखक भी बिना विचार किये उसको कम्बख़्त, नीच और राज्य का अपहरण करनेवाला ही कहते चले जाते हैं। उसके अन्त्यज जाति का होने से उसके कार्यों का अनुमान करते समय किसी विद्वान् की दृष्टि पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए। उसे अपहरण करनेवाला इत्यादि कहना स्पष्ट अन्याय है, क्योंकि वह समय ही ऐसा था जिसमें बराबर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होती चली आई थी। क्या खल्जी शासक या अन्य सुलतान इसी अपराध के अपराधी नहीं थे? फिर खुसरो को ही क्यों यह हक नहीं था कि वह शासक बन जाता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शासकों के मस्तिष्कों से बहुत दूर था। अभी तो "प्रजा शासक के लिये है, शासक प्रजा के लिये नहीं" वाला सिद्धान्त ही प्रचलित था। इसी कारण अलाउद्दीन का राज्य तुरन्त ही छिन्न भिन्न हो गया।

साहित्य और कला—अलाउद्दीन के काल तक मुसलमानों को हिन्दुस्तान में आये हुए सौ वर्ष से ऊपर हो चुके थे। इस अवकाश में सामान्य जनता में मेल-जोल बढ़ने लगा था। बहुत से मुस्लिम दर्वेश, सूफ़ी और फ़क़ीर हिन्दुस्तान में आकर बस गये थे। इनमें चिश्ती सम्प्रदाय के शेख़ निज़ामउद्दीन औलिया, शेख फ़रीदउद्दीन, बाबा गंज-शकर, उसका पोता अलाउद्दीन इत्यादि बहुत प्रसिद्ध थे। बहुत से सैयद, जैसे क़ाज़ी सद्रुद्दीन आरिफ़ जो सल्तनत का मुख्य क़ाजी था, बड़े विद्वान् थे। बहुत से बड़े बड़े विद्वान् फारस आदि बाहरी देशों से भी आकर अलाउद्दीन के दरबार में रहते थे। ज़िया बरनी ने इनके लगभग पचास नाम गिनाये हैं, परन्तु इन सब से प्रसिद्ध अमीर खुसरो था।

कला की उन्नति भी इस एक सदी में काफी हो चुकी थी। वास्तुकला अपनी दूसरी परिधि तक पहुँच गई थी। अलाउद्दीन ने शहर की दीवार के अलावा कुतुब के पास अलाई दरवाज़ा बनवाया जो उस समय की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। उसने कुतुब मीनार से दूनी ऊँची एक मीनार बनवानी शुरू की, परन्तु उसकी एक मंज़िल भी पूरी न हो सकी। निज़ाम उद्दीन औलिया की क़ब्र के पासवाली मस्जिद भी उसी समय की बनी हुई है जिसे उसके लड़के खिज्र ख़ाँ ने बनवाया था। मुस्लिम वास्तु-कला में मेहराब (वर्त्तुलाकार बनी हुई डाट या Radiating arch) का प्रयोग बलबन के काल से शुरू हुआ था और अलाउद्दीन के काल में गुम्बद के ऊपर कलश रखना आरम्भ हुआ था। उसके ऊपर कलश और अन्य स्थानों पर सजावट के लिये पद्म का प्रयोग भी होने लगा था। कारण यह था कि इन इमारतों के बनानेवाले सब प्राचीन हिन्दू शैली की शिक्षा पाये हुए थे। इस समय का वास्तु अत्यन्त सुन्दर, हलका और अलंकृत है।

तीसरा अध्याय

सम्राज्य की चरमसीमा और ह्रास का आरम्भ

तुग़लक़ वंश

कुछ उदार नीति का प्रयोग

गयास उद्दीन तुग़लक़—(सितम्बर १३२०—मार्च १३२५) अवनति और उन्नति, पतन और उत्थान के अनिवार्य नियम के अनुसार खल्जी वंश का शीघ्र ही पतन हुआ। गयास तुग़लक़ के गद्दी पर बैठने के समय वही परिस्थिति थी जो जलाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

या फ़ीरोज़ के गद्दीनशीन होने के समय थी। साम्राज्य फिर भँवर में था। ज़लाल के समान ग़यास ने इसे नष्ट होने से बचाया। दोनों रक्षक वृद्ध थे, परन्तु उनके चरित्रों में ज़मीन आसमान का भेद था। ग़यास बूढ़ा होने पर भी बड़ा पराक्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठ और सच्चा मुसलमान शासक था और साथ ही शूर-वीर तथा युद्ध-कुशल सैनिक भी। जलाल में ये गुण न थे। गयास ने शासन को सुदृढ़ करने और बिलखती हुई प्रजा के घावों पर मरहम लगाने का भरसक प्रयत्न किया। जलाल को इन कर्तव्यों का ज्ञान ही नहीं था। हाँ, दोनों में एक और समानता है। दोनों को उनके पुत्रों ने बड़ी घृणित नृशंसता से मारकर उनसे गद्दी छीनी थी।

ग़यास उद्दीन ने सबसे पहले तो अलाउद्दीन के परिवार के लिये आराम से रहने का प्रबन्ध किया। फिर उसने तुरन्त जनता को सुखी बनाने के उपाय किये। अला-उद्दीन के समय के सेना तथा शासन सम्बन्धी नियम फिर से जारी किये। इनके अलावा उस काल से किसानों की जो करुणार्द्र अवस्था चली आ रही थी, उसमें सुधार किया। जिन लोगों की जायदादें और माल अलाउद्दीन ने छीन लिये थे, उनको वापस लौटा दिये। शासन की निर्बलता के कारण जो चोरी डकैती शुरू हो गई थी, उसका दमन किया। देहातों की प्रजा की रक्षा के लिये जगह जगह क़िले बनवाये जिससे वे लुटेरों के हमलों के समय इन क़िलों में बन्द होकर अपने को बचा सकें। खेती को समुन्नत करने के लिये उसने विशेष प्रयत्न किया। ५० फी सदी मालगुज़ारी को घटाकर १० फी सदी कर दिया और उसकी वसूली के लिये सरकारी अफ़सर नियत करके ऐसा प्रबन्ध किया जिससे निस्सहाय प्रजा को कोई सता न सके। सब अफ़सरों को यह समझा दिया गया कि मालगुज़ारी बढ़ाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि हर प्रकार से किसानों की सहायता करके खेती की वृद्धि करें, न कि उनसे बढ़ा बढ़ाकर कर वसूल करें। अकाल अधिक पड़ने के कारण मालगुज़ारी अकसर घटानी बढ़ानी पड़ती थी। इस कारण उसने मापवाली प्रथा के स्थान पर बँटाई की प्रथा फिर से जारी कर दी थी। फलतः बहुत जल्दी देहातोंमें सुख-सम्पत्ति लौट आई और बहुत सी भूमि, जो बिना जोते-बोये पड़ी थी, फिर से बोई जाने लगी। जागीरदारों आदि को भी इसी नीति के अनुसार कार्य करने की आज्ञा दी गई। ग़यास ने बहुत से बाग़ भी लगवाये।

शासन-प्रबन्ध में उसने योग्य पुरुषों को नियुक्त किया। दण्ड-विधान भी कुछ नरम किया। केवल ग़बन और चोरी को छोड़कर ऋण इत्यादि की वसूली के लिये जो शारीरिक यंत्रणा दी जाती थी, वह बन्द कर दी गई। देश में शान्ति स्थापित करने के लिये उसने अन्य उपाय भी किये। उसने यातायात (Communications) का बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया। डाक की व्यवस्था भारत में प्राचीन काल से प्रचलित थी। खल्जी शासन के छिन्न भिन्न होने से वह भी नष्टप्रायः हो गई थी। तुग़लक़ शाह ने उसे फिर से सुव्यवस्थित किया। यह विभाग बहुत उत्तम दशा में था। इब्नबतूता ने इसका वहुत विस्तृत वर्णन किया है। डाक दो प्रकार से जाती थी—घोड़ों पर और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पैदल दौड़नेवाले हरकारों के द्वारा, जिनका प्राचीन नाम 'धावत' ही प्रचलित था। इनके द्वारा सरकारी आवश्यक डाक ही जाती थी और एक दिन में २०० मील तक पहुँच जाती थी। घोड़ों पर भारी और शायद सार्वजनिक डाक भी जाती थी। इसके द्वारा सुलतान को साम्राज्य के कोने कोने की खबर जल्दी से जल्दी मिल जाती थी। कभी कभी डाक के धावनों के द्वारा फल-फूल तथा गंगाजल इत्यादि भी हज़ारों मील पहुँचता था। मुहम्मद तुग़लक़ देवगिरि में भी गंगा-जल पीता था।

ग़यास तुग़लक़ स्वयं बड़ा कट्टर मुसलमान था और धर्म-पालन में सदा तत्पर रहता था। उसने शराब का बनना व बिकना बिलकुल बन्द कर दिया और यथा-शक्ति मुसलमानों को इस्लाम के सिद्धान्तों पर चलाने का यत्न किया।

हिन्दू-मुसलिम संघर्ष उस युग की राजनीतिक परिस्थिति का मुख्य चिह्न था *। ग़यास को स्वयं ही एक हिन्दू के हाथों से मुसलमानी सत्ता को बचाना पड़ा था। दोनों दलों का पारस्परिक अविश्वास अभी तक नहीं मिट सका था। इस कारण उसने आज्ञा दी कि हिन्दुओं के पास केवल इतना धन छोड़ा जाय जिससे वे बिना व्यर्थ कष्ट उठाये हर प्रकार के आवश्यक आराम और सुभीते से रह सकें; परन्तु इतना धन उनके पास न बढ़ने दिया जाय कि उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं को उत्तेजित कर दे और उपद्रवों की उत्पत्ति का कारण बने। सर वूल्ज़े हेग का अनुमान है कि इस आज्ञा के कारण बहुत से हिन्दुओं ने अपना धन और रुपये-पैसे गाड़ दिये जिनके आजकल निकलने से इतिहास के अध्ययन में बहुत सहायता मिली है।

चढ़ाइयाँ तथा लड़ाइयाँ—खल्जी वंश के पतन और नये वंश की स्थापना के कारण दूरस्थ सूबे स्वतन्त्र हो गये थे। वारंगल का राजा प्रताप रुद्रदेव इसी प्रकार स्वतन्त्र हो गया था। उसके विरुद्ध गयास ने अपने बड़े लड़के जूना खाँ (उलुग़ खाँ) को भेजा। उलुग़ खाँ को स्वयं सुलतान बन जाने की सूझी। परन्तु अमीरों ने उसका साथ न दिया और वह रुद्रदेव को बिना दबाये वापस लौट आया। पिता ने उसे क्षमा कर दिया और फिर दोबारा भेजा। इस बार वह सफल हुआ। प्रताप रुद्रदेव को देहली का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। बंगाल में बलबन के वंशज स्वतन्त्र हो गये थे। इस समय उनमें परस्पर झगड़ा हो गया। तुग़लक़ शाह को अवसर मिल गया। वह स्वयं बंगाल पहुँचा और उसने पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों विभागों को अधिकृत किया। बंगाल जाते समय सुलतान मनायक होता हुआ गया। उसने ज़फ़र खाँ को मनायक

---

* इस संघर्ष से लेखक का अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानी सरदार और शासक गण अभी मुसलमानी विजेताओं से सन्तुष्ट नहीं थे। वे बराबर हिन्दू राज्य की पुनः स्थापना का यत्न करते थे। उनकी विफलता के कारण हम बतला चुके हैं। ग्रामीण जनता राजनीतिक वायु-मण्डल से प्रायः उदासीन एवं बाहर थीं। तुग़लक़ जैसे सुयोग्य शासक के राज्य में लोग बहुत सुखी रहते थे। उनका सन्तोष या असन्तोष अच्छे-बुरे शासक के साथ साथ बदलता रहता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का सूबेदार बनाया था। ज़फ़र खाँ उसके साथ बंगाल तक गया। उसने मनायक का नाम बदल कर ज़फ़राबाद * रख दिया।

बंगाल की चढ़ाई से पहले मुग़लों का एक हमला भी हुआ, परन्तु ये फिर पराजित हुए और उनके नेता पकड़ लिये गये।

बंगाल से लौटने पर जूना खाँ ने अपने पिता के स्वागत के लिये बड़ी तैयारियाँ कीं। काठ की एक बारहदरी खास तौर से इस काम के लिये बनवाई। सुलतान और उसके दूसरे लड़के को देहली के अमीरों के साथ दावत दी गई। ज्योंही अन्य सब अमीर खाकर हाथ धोने बाहर आये, त्योंही उस बारहदरी की छत गिर पड़ी। बाप, बेटा दोनों उसके नीचे दब कर मर गये। यह घटना दैवात् ही हुई अथवा इसमें जूना खाँ का हाथ था, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। परन्तु परिस्थितिक प्रमाणों से ऐसा ही जान पड़ता है कि जूना ने ही यह काम कराया होगा †।

ग़यास तुग़लक़ का चरित्र—गयास का चरित्र उसके उन कार्यों से स्पष्ट हो जाता है जिनका हम अभी वर्णन कर आये हैं। दिल्ली के समस्त पठान सुलतानों में वही एक ऐसा आदमी था जिसका चरित्र बहुत कुछ शेर शाह से मिलता है। वह भी शेर शाह की तरह क्रियाशील, कर्त्तव्य-परायण तथा प्रजा-हितकारी था और इन्हीं सब बातों को अपना परम उद्देश्य और आदर्श समझता था। प्रतिभाशाली और उद्दीप्त बुद्धिवाले अकबर सरीखे उन शासकों और नीतिज्ञों की कोटि में उसकी गणना नहीं हो सकती जो शासन के मौलिक सिद्धान्त और नीति में परिवर्त्तन करके एक नये युग और नये वायु-मण्डल की उत्पत्ति कर देते हैं। नैतिक आविष्कार उसके बस के नहीं थे, परन्तु प्रस्तुत शासन-पद्धति का अत्यन्त योग्यता, निर्भीकता और निस्स्वार्थ भाव एवं दृढ़ता के साथ, लोकहित के उद्देश्य से प्रयोग करने में उसका सानी सुलतानों में और कोई नहीं था। इसी कारण रचनात्मक शासन-प्रवन्ध में उसके बराबर देहली के पठान बादशाहों में और कोई सफल नहीं हुआ। शेर शाह की अपेक्षा उसकी नीति अधिक धार्मिक संकीर्णता से युक्त थी, परन्तु इसमें उस युग का दोष था, ग़यास का नहीं। यदि वह अपनी समकालीन संकीर्णता से ऊपर उठ कर एक नवीन राजनीतिक सिद्धान्त तथा शासन नीति को जन्म दे सकता, तब तो उसकी गिनती सर्वोत्कृष्ट उद्दीप्त-बुद्धि और नये मार्ग के आविष्कर्ताओं में हो जाती। अपने पुत्र प्रकाण्ड विद्वान् मुहम्मद की सी प्रतिभा उसमें नहीं थी, परन्तु एक क्रियाशील और चतुर शासक के रूप में उसका कार्य अत्यन्त सफल और निर्दोष था। यदि उसके उत्तराधिकारी उसी की परिपाटी का अनुसरण करते तो इतनी जल्दी उनको विफलता का मुँह न देखना पड़ता और तुग़लक़ साम्राज्य अधिक स्थायी हुआ होता। यदि तुग़लक़ शाह कुछ दिन और ज़िन्दा रहता तो शासन को और दृढ़ कर जाता। इसलिये हमारे विचार में एक सफल

* ज़फ़राबाद संयुक्त प्रान्त में जौनपुर से तीन मील दक्षिण-पूर्व में है।

† देखो के० हि० इ०, ३, १३४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयत्न, क्रियाशील शासक की हैसियत से ग़यास उद्दीन तुग़लक का स्थान देहली के पठान सुलतानों में सबसे ऊँचा है।

गयास का व्यक्तिगत जीवन बहुत सादा और बे-बनावटी था। वह धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन में पक्का तथा सामाजिक जीवन में बहुत सज्जन था। उसमें अपने रुतबे का घमण्ड बिलकुल नहीं था। वह सबसे बहुत नम्रता से मिलता-जुलता था। शासन की आवश्यकता को छोड़ कर वह हिन्दुओं पर कोई अत्याचार नहीं करता था। वह बड़ा कला-प्रेमी भी था, पर उसकी इस संबंध की बातों का वर्णन हम आगे करेंगे। जिस साल उसकी मृत्यु हुई थी, उसी साल निज़ाम उद्दीन औलिया और कवि अमीर खुसरो की भी मृत्यु हुई। अमीर खुसरो उस समय ७२ वर्ष का था। वह शेख़ सादी का मित्र था। दोनों ने एक दूसरे की बड़ी प्रशंसा की है। अमीर खुसरो हिन्दी का बड़ा प्रेमी था और उर्दू तथा हिंदी दोनों भाषाओं को उन्नत करने में उसका बड़ा हाथ है। कहा जाता है कि उसने सब मिलाकर कोई ५ लाख शेर लिखे थे। उसका समकालीन शेख़ हसन निज़ामी भी बड़ा प्रसिद्ध कवि था। वह 'हसन देहलवी' के नाम से प्रसिद्ध है।

मुहम्मद बिन तुग़लक़ शाह (१३२५–१३५१)

संसार के इतिहास में मुहम्मद तुग़लक़ एक बहुत विचित्र बादशाह हो गया है जिसके चरित्र का जोड़ कठिनता से मिलेगा। मस्तिष्क के गुणों में भारत के मुसलमान बादशाहों में कोई उसकी बराबरी का नहीं हुआ। उसकी स्मरण-शक्ति, तीक्ष्ण बुद्धि, उत्कृष्ट रुचि तथा विद्या-प्रेम सर्वथा अनुपम थे। श्रेष्ठ कोटि के विद्वानों के सभी गुण एवं व्यसन उसमें विद्यमान थे। गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा-शास्त्र आदि सभी विद्याओं का वह अद्वितीय विद्वान् था। कोई समकालीन विद्वान् उसकी बराबरी न कर सकता था। वह उच्च कोटि का कवि भी था और लेखक एवं वक्ता भी। सुन्दर लेखन कला में भी वह सिद्धहस्त था। उसका वैयक्तिक जीवन सर्वथा निर्मल और निर्दोष था। नमाज़-रोज़ा आदि धार्मिक विधि-विधानों के पूरा करने में वह अत्यन्त सावधान तथा तत्पर था। परन्तु साथ ही सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में उसका चरित्र ठीक इसका उलटा था। वह हिन्दुओं के साथ सहनशीलता का बर्त्ताव करता, और यहाँ तक कि उनकी सती आदि कुप्रथाओं को बन्द करना चाहता था। शासन-नीति में वह न तो कुरान की आज्ञाओं की तनिक भी परवा करता था और न मुल्लाओं के मिज़ाज की। उसका आदर्श बहुत ऊँचा था। वह प्रजा का पालक और रक्षक बनना चाहता था और इसके लिये यत्न भी करता था। हिन्दू-मुसलमानों में वह कुछ भेद-भाव नहीं रखता था। हिन्दुओं को बड़े बड़े पदों पर नियुक्त करता था। सिंध का सूबेदार उसने एक हिन्दू को ही बनाया था। उसका हृदय कभी कभी अत्यन्त कोमल हो जाता था, यहाँ तक कि वह बड़ी दया और उदारता का भण्डार प्रतीत होता था। परन्तु इन सब गुणों के होते हुए भी उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरित्र में कतिपय ऐसे गहरे दोष और त्रुटियाँ थीं जिनके कारण वह शासक होने के सर्वथा अयोग्य था। वह निरा आदर्शवादी था। युवा अवस्था में उसका साथ कई स्वतन्त्र विचारवाले विद्वानों (जैसे कि तार्किक साद, कवि उबैयद और तत्त्ववेत्ता अलीमउद्दीन) आदि का रहा था, परन्तु आदर्शवाद के साथ उसका सब से बुरा अवगुण यह था कि उसमें इतने महान् विद्वानों और विचारकों की सी विरक्ति न थी, प्रत्युत् सांसारिक शक्ति और राज्य करने का पूरा पूरा मोह था; और साथ ही अपनी योग्यता का इतना घमण्ड था कि वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था। उसे अपनी शक्ति का भी बहुत अहंकार था और वह यह चाहता था कि सामान्य जनता भी मेरी विचार-धाराओं के साथ दौड़ लगा सके और मेरे नये से नये कार्य-क्रमों और योजनाओं को तुरन्त कार्य-रूप में परिणत कर दे। स्वाभाविक ही था कि प्रजा इतनी जल्दी उसकी आज्ञाओं का महत्त्व न समझ पाती थी, उनका ठीक ठीक पालन करना तो दूर रहा। इस अयोग्यता के प्रति मुहम्मद में सब्र और ताब न था। वह तुरन्त उबल पड़ता था और फिर उसका नृशंस रौद्र रूप प्रकट हो जाता था। उसके इस व्यग्र आदर्शवाद के कारण उसमें अपने पिता जैसी गम्भीरता, दूरदर्शिता, क्रियात्मकता आदि शासकों के आवश्यक गुणों का भी अभाव था। परिणाम यह हुआ कि उसके समस्त अद्वितीय गुणों से लाभ के स्थान पर हानि हुई। अपने उतावलेपन से उसने अपने गुणों को धूल में मिला दिया और उसके साथ ही प्रजा भी पिस गई। उसका शासन काल एक अत्यन्त करुणार्द्र तथा दुखद कहानी का चित्र है।

परन्तु साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि दैव भी कुछ उसके विरुद्ध ही था। जिस समय में उसने राज्य किया, उस समय में सभी देशों में बड़ी विपत्तियाँ आ रही थीं। एक ऐसी महामारी फैली जिसने यूरोप और एशिया के देशों को तबाह कर डाला। भयानक और बहुकाल-व्यापी दुर्भिक्ष पड़े। कहीं वर्षा बहुत अधिक हुई तो कहीं बिलकुल नहीं। हज़ारों-लाखों आदमी भूखों मर गये, हज़ारों लाखों बीमारी के शिकार हुए। देशों की आर्थिक और व्यावसायिक दशा भी बहुत खराब हो गई। जान पड़ता है कि मानों दैव ने भी जनता की सहन शक्ति की परीक्षा लेने की ठान ली थी।

मुहम्मद तुग़लक़ के शासन का पहला भाग—(१३२५–४२) मुहम्मद को अपने पिता का भूमिकर सम्बन्धी बन्दोबस्त संतोषप्रद न मालूम हुआ। भूमिकर इतना कम था कि उससे सरकारी आय बहुत कम हो गई थी। अतएव उसने समस्त साम्राज्य की भूमि नपवा कर रजिस्टर तैयार कराये जिनमें आय, व्यय, पैदावार इत्यादि का सविस्तार ब्यौरा भरा गया। 'कुश्के-हज़ार-सुतून' नामी महल, में बरसों तक इसी काम के लिये एक बड़ा भारी दफ़्तर खुला रहा। सूबों की आय निश्चित करके सूबेदारों को उसका जिम्मेदार बना दिया गया।

इसी समय सन् १३२६ में मध्य भारत में सागर के शासक, सुलतान के फुफेरे भाई गुर्शास्प ने स्वतन्त्र होने का विचार किया। जब दक्षिण के सूबेदार ख्वाज़ा जहान ने उसका पीछा किया, तब वह कम्पिल और द्वारावतीपुर के हिन्दू राजाओं के दरबार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में भागता फिरा ; परन्तु अन्त को पकड़ा गया और मुहम्मद ने, जो देवगिरि तक स्वयं पहुँच गया था, उसकी जीते-जी खाल खिंचवा कर उसका मांस पकवा कर उसी के बीबी-बच्चों के पास भेजा। फिर कम्पिल के राजा पर, जिसने गुर्शास्प को शरण दी थी, हमला किया। इस वीर ने अपनी स्त्रियों को जौहर की ज्वाला के अर्पण करके बड़ी बहादुरी से युद्ध करते हुए वीरगति पाई। उसके पुत्रों को मुसलमान बनाया गया।

राजधानी का स्थान-परिवर्तन (१३२७)—शायद गुर्शास्प के विद्रोह के कारण ही मुहम्मद को यह सूझा कि दक्षिण के भाग को सुनियन्त्रित रखने के लिये यह आवश्यक है कि राजधानी के लिए देहली की अपेक्षा कोई अधिक केन्द्रीय स्थान हो। उसने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा और राजधानी वहाँ ले जाने का निश्चय किया। उसके योग्य पिता के सुप्रबन्ध से मुग़लों का भय न रह गया था। उत्तरी सीमा की शंका मिट गई थी। उत्तरी भारत का सुप्रबन्ध तथा शासन-व्यवस्था भी हो चुकी थी। दक्षिण इतना दूर होने से अव्यवस्थित ही था। अतएव आवश्यक था कि राजधानी को दक्षिण ले जाकर साम्राज्य के उस प्रदेश को भी सँभाला जाय। देवगिरि को हर प्रकार से सुसज्जित करने और राजधानी के योग्य नगर बनाने में बादशाह ने कोई कसर न रखी। सरकारी दफ़तरों के लिये बड़े बड़े भवन तुरन्त बनवाये गये। सब दरबारियों तथा सूबेदारों को आज्ञा हुई कि अपने अपने मकान वहाँ बनवावें। बड़े विशाल बाज़ार भी बनवाये गये जिसमें सब आवश्यक वस्तुएँ वहीं प्राप्त हो सकें। व्यापारियों को वहाँ जाकर बसने की आज्ञा हुई। सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य देवगिरि के प्राचीन क़िले की मरम्मत कराने तथा उसे अत्यन्त सुदृढ़ एवं अजेय बनाने का था। यह क़िला एक गगनस्पर्शी चट्टान के ऊपर बना हुआ है। इसके पत्थरों को घिसवा कर उसने इतना चिकना करवा दिया था कि एक लेखक के शब्दों में "उस पर साँप भी रेंग कर नहीं चढ़ सकता था"। उसके अन्दर जाने का कोई रास्ता नहीं था। क़िले के बीच से एक सुरङ्ग उतरती थी और चट्टान की तलहटी तक आती थी। इस सुरंग के मुँह पर लोहे का दरवाजा था। इसी प्रकार के अन्य उपायों से इस क़िले को उसने बिल्कुल अजेय बना दिया।

इस प्रकार शहर को सुरक्षित और सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाकर उसने दक्षिण का शासन सुव्यवस्थित किया। परन्तु सुलतान के दक्षिण चले जाने से उत्तरी सरकार की अवस्था गिरने लगी। पंजाब प्रान्त तथा सीमा प्रदेश की फिर वही अरक्षित अवस्था हो गई जो अलाउद्दीन के काल में थी। इस समय दो घटनाएँ हुईं जिनके कारण मुहम्मद को तुरन्त उत्तर आना पड़ा—मुलतान के सूबेदार का विद्रोह और तरमाशिरीन मुग़ल का हमला। मुलतान के सूबेदार से अबोहर के पास लड़ाई हुई और मुहम्मद ने धोखे से उसे जीता। सिन्ध और मुलतान को फिर अधिकृत किया और विद्रोही का सिर काटकर मुलतान शहर के दरवाज़े पर लटका दिया।

सन् १३२९ में तरमाशिरीन देहली और फिर बदायूँ तक पहुँच गया। परन्तु थोड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिन बाद मुग़ल स्वयं वापस लौट गये। कहा जाता है कि सुलतान ने चुपके से उनको रिश्वत दे दी थी।

सारे दरबारी, राजकर्मचारी व दफ़्तर देहली छोड़ कर नई राजधानी दौलताबाद चले गये। इनके साथ इनके हज़ारों गुमाश्ते, इनके परिवार व आश्रित जन एवं नौकर चाकर भी अवश्य ही गये होंगे। देहली का व्यापार आदि भी प्रायः इन लोगों के कारण ही चलता था। इस लिये बहुत से व्यापारियों को भी जाना पड़ा होगा। इसी का यह परिणाम अवश्य ही हुआ होगा कि जब तक सुलतान और राजदरबार फिर से लौट कर देहली न आ गये तब तक उस नगर में बहुत कम आबादी रह गई होगी और उसके व्यापार आदि की बड़ी हानि हो गई होगी।

इब्न बतूता ने, जो इस घटना के कई साल बाद देहली आया था, एवं कतिपय और लेखकों ने, जो यह लिखा है कि सारे शहर के बच्चे बच्चे को देहली छोड़ कर दौलताबाद जाने की आज्ञा सुल्तान ने दी, यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। न यह ठीक है कि सब लोगों को ज़बरदस्ती वहाँ घसीटा गया। यह सब कहानियाँ मात्र हैं। अगर सुलतान किसी कारण उनको सज़ा देने के लिये ऐसा करता तो उनके मकानों की क़ीमत क्यों चुकाता और रास्ते में उनके आराम के लिये इतने प्रबन्ध क्यों करता।

जब देवगिरि जाने का उद्देश, अर्थात् दक्षिण के विद्रोहों का दमन तथा वहाँ के शासन की व्यवस्था, पूरा हो गया तब सुलतान फिर देहली वापस चला आया। इससे यह भी विदित हो जायगा कि देवगिरि को उसने केवल थोड़े से समय के लिये ही राजधानी बनाया था।

संकेत मुद्रा (Token Currency) का प्रयोग (१३३०)—इस वर्ष उसने संकेत मुद्रा का प्रयोग किया। इस विषय में विद्वानों में बड़ा विवाद है। कुछ लोग कहते हैं कि दोआब की बरबादी से सरकारी आय कम हो गई थी और वह उसे बढ़ाना चाहता था। परन्तु प्रो० ब्राउन का मत यह है कि बादशाह अन्य एशियाई देशों के इतिहास से भली भाँति परिचित था और चीन, फारिस इत्यादि के अपने समकालीन शासकों से मित्रता रखता था। इससे कुछ ही दिन पहले चीन और फिर फ़ारस में कागज़ के नोट चलाये जा चुके थे; और वहाँ उनका इसलिए विरोध हुआ था कि सरकार उनको अपने दबाव से स्वीकृत कराना चाहती थी। दूसरे उस समय दुनियाँ में चाँदी की मात्रा बहुत कम हो गई थी, क्योंकि यूरोप में ज़ेवरों आदि के बनाने में बहुत अधिक व्यय कर दी गई थी। इस कारण बादशाह ने सरकार की आसानी तथा व्यापार की वृद्धि के उद्देश्य से ताँबे की 'संकेत मुद्रा' चलाई। सरकारी इजारा इन पर इसलिये न रखा कि स्वयं लोग इसके लाभ का अनुभव करके इसे ग्रहण कर लें। संकेत मुद्रा कोई तीन साल से अधिक प्रचलित भी रही, परन्तु अन्त को इस कारण बन्द हुई कि सब लोग अपने घरों में सिक्के बनाने लगे और व्यापारियों ने सोने-चाँदी के सब सिक्के मोल ले लेकर घर में रख लिये। विवश होकर सुलतान ने इसे बन्द कर दिया और बड़ी उदारता से सब को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताँबे के बजाय चाँदी के सिक्के बाँट दिये। इससे यह सिद्ध होता है कि उसके कोष में रुपये की कमी न थी। इसमें सन्देह नहीं कि मुहम्मद को नये नये प्रयोग करने का शौक़ था; परन्तु उसके समकालीन उसके विचारों से अत्यन्त पीछे थे। यह भी उसका एक प्रयोग ही था। परिस्थिति ने यहाँ भी उसका साथ न दिया। मुद्राशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित टामस एडवर्ड्स ने मुहम्मद को 'मुद्रा-तत्वज्ञों का राजा' (Prince of Moneyers) कहा है। वह वास्तव में इस प्रशंसा का पात्र था। उसने मुद्रा-विभाग में बड़े उत्तम संशोधन किये। सब मुख्य मुख्य स्थानों पर टकसालें खुलवाईं; और सिक्कों में पहले जो मिलावट होती थी, उसे बन्द करके टकसालों में सिक्के बनने की बड़ी अच्छी व्यवस्था की। सिक्कों की बनावट में अत्यन्त उन्नति की तथा उन्हें सुन्दर बनाया। ये सब संशोधन इतने काफ़ी हैं कि इनके कारण उसे "मुद्रा-तत्त्वज्ञों का राजा" कहना न्याय-संगत ही जान पड़ता है।

इब्नबतूता का आगमन (१३३३)—दोआब में कर बढ़ाने और उसके परिणाम का वर्णन हम अभी कर चुके हैं। सुलतान किसानों को दण्ड देने के लिये क़न्नौज तक पहुँच गया था। इस समय इब्नबतूता नामक एक अफ्रीकन यात्री सिंध, मुलतान और पंजाब होता हुआ देहली पहुँचा। वहाँ वज़ीर ख्वाजा जहान ने उसका बहुत आदरपूर्वक स्वागत किया। जब सुलतान कन्नौज से लौटा, तब उसने इब्नबतूता की बहुत ख़ातिर की और उसे कई गाँव तथा बहुत सा धन दिया। बाहर के यात्रियों के साथ मुहम्मद सदा अपूर्व उदारता का व्यवहार करता था और उनको ज़रूरत से ज्यादा धन देता था। इब्न बतूता सुलतान के दरबार में कई वर्ष रहा; और उसने जो कुछ देखा-सुना, उसका हाल अपनी पुस्तक में लिखा है। मुहम्मद उसके ऊपर इतना मेहरबान था कि उसे उसने देहली का क़ाज़ी बना दिया। वह हिन्दुस्तान की भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण काम करने के योग्य न था, इसलिये उसे दो सहायक क़ाज़ी भी दिये गये। काम वे लोग करते थे, परन्तु तनखाह बतूता को भी मिलती रहती थी।

मदुरा का विद्रोह (१३३५)—देहली लौटने के कुछ ही दिन बाद उसे सूचना मिली की मदुरा के शासक जलालउद्दीन अहसन कैथली ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और अपने सिक्के भी बना डाले हैं। सुलतान तुरन्त उसे दमन करने चला, परन्तु देवगिरि के आगे पहुँचने पर उसकी सेना में मरी फैल गई। सैकड़ों सिपाही मर गये। वह स्वयं बहुत दिन तक सख्त बीमार रहा। अतः उसे बीच ही से लौटना पड़ा और तब से मदुरा (माबर प्रान्त) के स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य का जन्म हुआ। इस राज्य में बहुत जल्दी जल्दी शासकों के परिवर्तन हुए। उनमें से दमगानशाह ने द्वारावती-पुर के वीर वल्लाल तृतीय को, जो ८० वर्ष का बूढ़ा था, पराजित करके क़त्ल किया और उसकी खाल खिंचवाई। हिन्दू स्त्री-बच्चों आदि को अत्यन्त निर्दयता से मरवाया। सन् १३७० के लगभग विजयनगर के उठते हुए साम्राज्य के सामने यह मदुरा का राज्य न ठहर सका। विजयनगर के दक्षिणी प्रदेश के सेनापति ने उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्त कर दिया। मुहम्मद थोड़े दिनों तक देवगिरि ठहरा और अब आठ बरस बाद उसने देहलीवालों को आज्ञा दी कि जो चाहे, वह देहली वापस जा सकता है। बहुत से लोग बड़ी खुशी से तुरन्त लौट आये।

दुर्भिक्ष और मुहम्मद की सहायता (१३३५-४२)—सुलतान को अभी तक कोई सन्तोषजनक सफलता नहीं हुई थी। किन्तु सन् १३३५ के बाद दैव के प्रकोप से उसकी रही सही दशा भी बिगड़ती गई और अन्त को उसके सँभाले न सँभली। उसी समय से साम्राज्य के पतन और विच्छेद का आरम्भ हो गया।

सुलतान अभी दौलताबाद से लौटा भी न था कि उत्तरी भारत में बड़ा भारी अकाल पड़ा। सात बरस तक बराबर वर्षा न हुई। मनुष्य एक दूसरे को मार मार कर खाने लगे। ऐसी अवस्था देखकर सुलतान ने प्रजा के दुःख निवारण करने का भरसक यत्न किया। छः महीने तक देहली के लोगों को बराबर बना-बनाया खाना बाँटा, गाँववालों को खेती करने के लिये धन से सहायता दी। जगह जगह कूएँ बनवाये। परन्तु जिन लोगों को खेती की उन्नति करने के लिये तकावी दी गई, उनमें से बहुतों ने वह अपने निजी काम में खर्च कर डाली। इस पर सुलतान ने उनको बड़ी निर्दयता से सजाएँ दीं।

सरगद्वारी (स्वर्गद्वारी) की रचना (१३३६)—जब देहली में अन्न आदि खतम होने लगा और बाहर से लाने में बड़ी कठिनाई जान पड़ी, तब मुहम्मद ने एक और नई योजना की जिससे उसकी विचक्षण बुद्धि का परिचय मिलता है। उसने देहली से कोई १६५ मील दूर गंगा के किनारे क़न्नौज के ऊपर एक नया नगर बसाया और उसका नाम 'सरगद्वारी' रखा, और देहली के लोगों को एक बार फिर आज्ञा दी कि वहाँ जाकर बसें। इस बार वे उसकी दया के पात्र थे, क्योंकि अवध में अकाल नहीं था और वहाँ का सूबेदार ऐनुल्मुल्क बहुत योग्य था। उसके बाद छः वर्ष तक सुलतान सरगद्वारी में ही रहा और देहलीवालों को ऐनुल्मुल्क और उसके भाई बराबर खाने-पीने की सामग्री भेजते रहे। देहली के लोगों के बुरे दिन इस प्रकार आराम से कट गये।

अन्य देश विजय करने की योजनाएँ (१३३७-३९) इस दुर्भिक्ष और आपत्ति के काल में भी सुलतान बड़ी बड़ी योजनाएँ तैयार किये बिना नहीं रह सकता था। इन दिनों उसके दरबार में कुछ खुरासानी ठहरे हुए थे। खुरासान के राज्य की दशा बहुत शोचनीय हो रही थी। उस देश के शासक अबू सईद ने अपने योग्य वज़ीर अमीर चौबाँ को मरवा डाला था, क्योंकि उसने अपनी लड़की, जिसे अबू सईद बहुत चाहता था, उसे ब्याहने से इनकार कर दिया था। तबसे राज्य का हाल-बे-हाल था। यह देख कर मध्य एशिया का चग़ताई सरदार तरमाशिरीन और मिश्र का बादशाह दोनों खुरासान पर चढ़ाई करने की चेष्टा कर रहे थे। मुहम्मद तुग़लक़ ने अपने मित्र मिस्र के शासक को सहायता देने और स्वयं फारस का कुछ भाग हरण करने के अभिप्राय से एक बड़ी भारी सेना तैयार की और चढ़ाई करने की प्रतीक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में एक वर्ष तक उसका पूरा व्यय सरकारी कोष से होता रहा। अन्त को यह काम पूरा न हो सका, क्योंकि मिस्र के शासक से तो अबू सईद ने सुलह कर ली और तरमाशिरीन की सेना को, जो एक वर्ष तक मर्व के पड़ाव पर दूसरे साथियों की प्रतीक्षा में पड़ी रही, चीन के राजा के विरोध के कारण हटना पड़ा, क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसका पड़ोसी तरमाशिरीन इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ा ले। इस योजना में कोई निरी मूर्खता नहीं थी। सारा भारत इस समय देहली के राज्य में था। फिर उस समय मौक़ा भी अच्छा था। परन्तु देश में अकाल इत्यादि विपत्तियों के कारण यहाँ की दशा अच्छी न थी। इससे अवश्य जनता को कष्ट हुआ होगा।

दूसरी चढ़ाई सुलतान ने क़राजल पहाड़ के राजा पर की, क्योंकि उसने सलतनत की भूमि पर क़ब्ज़ा कर लिया था। फ़रिश्ता का यह कहना निराधार है कि यह सेना चीन फ़तह करने के लिये भेजी गई थी। पहाड़ी प्रदेश के रास्तों से अनभिज्ञ होने के कारण सेना को अत्यन्त कष्ट हुआ और बहुत से सिपाही मर गये, परन्तु राजा को सुलतान से सुलह करनी पड़ी।

साम्राज्य के क्षय तथा विच्छेद का आरम्भ—इधर सुलतान अपनी लम्बी योजनाओं के स्वप्न देख रहा था और उधर उसके जर्जर साम्राज्य का ढाँचा टूटता जा रहा था। सन् १३३५ में माबर (मदुरा) के स्वतन्त्र होने का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसी बीच में विजयनगर का राज्य भी क़ायम हो चुका था जिसका वर्णन आगे किया जायगा। सन् १३३८ में लखनौती (बंगाल) में फ़ख़उद्दीन नामक एक सरदार वहाँ के सूबेदार को मार कर स्वयं सूबेदार बन बैठा और उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सुलतान इतने झगड़ों में फँसा था कि विद्रोही को दमन करना उसके बस का न था। तबसे बंगाल स्वतन्त्र हो गया।

ऐनउल्मुल्क का विद्रोह (१३४०)—सबसे बड़ा विद्रोह इस समय ऐनमुल्क का हुआ। वह बड़ी योग्यता के साथ अवध का शासन कर रहा था। उसका सुप्रबन्ध देख कर बहुत से लोग देहली और दोआब से अवध में जा बसे थे। मुहम्मद को उसकी बढ़ती हुई शक्ति और लोकप्रियता से आशंका होने लगी। उसने तुरन्त आज्ञा दे दी कि वह अवध छोड़ कर दक्षिण चला जाय। ऐनमुल्क को इस अचानक आज्ञा से कुछ संशय हुआ और उसने विद्रोह कर दिया। सुलतान ने बड़ी कठिनाई से इस विद्रोह को दमन किया। उसके सहायकों को बड़े कड़े दण्ड दिये, परन्तु ऐनलमुल्क को, उसकी पहली सेवाओं के कारण, क्षमा करके शाही बाग़ों का अफ़सर बना दिया।

अकाल-पीड़ित जनता की रक्षा का प्रबन्ध (१३४२)—इधर तो साम्राज्य के कोने कोने में बराबर विद्रोह हो रहे थे (मुलतान, सिंध इत्यादि में फिर इसी समय बलवे हुए थे), उधर सुलतान सरगद्वारी से लौटने के समय से ही अकाल-पीड़ितों की रक्षा के लिये यथा-साध्य प्रबन्ध कर रहा था। खेती की उन्नति करने के लिये उसने एक नया विभाग स्थापित किया और इसके संचालन के लिये विस्तृत नियम (अस्लूब) बनाये। यह विभाग एक मन्त्री के अधिकार में रखा गया। समस्त भूमि बराबर हिस्सों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में बाँट कर ठेकेदारों को दे दी गई कि उसमें खेती करावें और आबादी बढ़ावें। परन्तु उस हतभाग्य बादशाह की यह योजना भी कुछ संतोषजनक सफलता न प्राप्त यर सकी।

दक्षिण के विद्रोह (१९४४)—इस समय दक्षिण में स्वयं मुहम्मद की अदूरदर्शिता तथा नृशंसता के कारण इतना प्रबल विप्लव हुआ कि उसमें सुलतान और सलतनत दोनों ग़र्क हो गये। दक्षिण की मालगुज़ारी ९० फी सदी घट गई थी। सुलतान ने इसके लिए सूबेदारों को सर्वथा दोषी समझा। दक्षिण को चार सूबों (शिकों) में फिर से बाँटा और प्रत्येक शिक़ पर एक नया अधिकारी नियुक्त किया। देवगिरि से उसने वहाँ के सुयोग्य सूबेदार कतलू खाँ को हटा कर उसके अयोग्य भाई को भेजा। इससे जनता में अत्यन्त असन्तोष फैला। मालवे को भी दक्षिण का एक शिक़ बना दिया गया था। वहाँ पर उसके नये सूबेदार ने सैकड़ों 'सादा अमीरों'* को एक दम क़त्ल करवा डाला। सुलतान को तो उन पर क्रोध आ ही रहा था। उसने सूबेदार के इस बेहूदे काम का खुल्लम-खुल्ला अनुमोदन किया। इस नीति से गुजरात और दक्षिण के अमीर भी भयभीत हो गये। गुजरात के अमीरों ने तुरन्त बलवा कर दिया। इसकी सूचना पाते ही मुहम्मद ने देहली में ख्वाज़ा जहान, फीरोज़ और मलिक कबीर की एक राज-प्रतिनिधि समिति बनाकर शासन उसके सपुर्द किया और स्वयं गुजरात को रवाना हुआ। इसके बाद वह फिर देहली वापस न लौटा। भड़ौच (भृगुकच्छ) पहुँच कर उसने देवगिरि के शासक को आज्ञा भेजी कि दक्षिण के सादा अमीरों को तुरन्त मेरे पास भेज दो। वे लोग आज्ञानुसार रवाना हो गये, परन्तु मार्ग में उन्हें सुलतान के बुरे संकल्प की आशंका हो गई और उन्होंने वहीं बलवा करके स्वतन्त्रता का झण्डा खड़ा कर दिया। तुरन्त ही उन्होंने एक बूढ़े अफ़गान इस्माइल मख को अपना नेता बनाया और दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। सुलतान उस तरफ़ चढ़ा तो वे शहर छोड़ कर हट गये, परन्तु उसी समय तर्गी ने गुजरात और सिंध में बलवा कर दिया। मुहम्मद उधर गया तो दक्षिणी सरदारों ने लौट कर दौलताबाद के सूबेदार को निकाल बाहर किया और अपने में से एक बड़े योग्य सैनिक, हसन को अपना शासक बनाकर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। १३ अगस्त सन् १३४७ को हसन अलाउद्दीन अबू मुज़फ्फर बहमान शाह के नाम से दौलताबाद की गद्दी पर बैठा। इस प्रकार बहमनी वंश और स्वतन्त्र बहमनी राज्य का आरम्भ हुआ। सुलतान लगभग चार बरस तक गुजरात और सिंध के बलवों को दमन करने की कोशिश करता-करता ही २० मार्च १३५१ को ठट्टा के पास बीमार हो कर मर गया।

सिंहावलोकन—सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ का चरित्र हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। उसके शासन की घटनाओं से यही सिद्ध होता है कि वह बहुत उच्च विचार

* सादा अमीर या यूज़बाशी वे अमीर कहलाते थे जो १०० गाँवों की मालगुज़ारी वसूल करने के जिम्मेदार होते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा विचक्षण बुद्धि का व्यक्ति था और साम्राज्य को हर प्रकार से आदर्श बनाने का यत्न करता था, परन्तु उसे न तो अवसर की पहचान थी और न मानव चरित्र की। उसकी उत्कृष्ट बुद्धि और विद्वत्ता ही प्रायः उसके दुर्भाग्य का कारण बन जाती थी। अलाउद्दीन खल्जी में यह खूबी थी कि वह अपने सलाहकारों की सलाह से ही सब काम करता था। ग़यास तुग़लक़ स्वयं बड़ा समझदार और परिस्थिति के अनुकूल काम करनेवाला था। पर मुहम्मद में इन दोनों बातों का अभाव था।

मुहम्मद के चरित्र में एक स्मरणीय बात यह थी कि सरकारी मामलों तथा शासन सम्बन्धी कामों में वह धर्माधिकारियों को हस्तक्षेप न करने देता था। दूसरे वह उन्हें कोई विशेष स्वत्व न देता था। यदि बड़े से बड़े क़ाज़ी और मुल्ला भी कोई अपराध करते थे तो वे भी साधारण मनुष्यों की तरह सज़ा पाते थे। न्याय-विभाग में क़ाज़ियों और मुफ़्तियों को उसने सर्वेसर्वा नहीं रहने दिया। बड़े बड़े अमीरों को दण्ड देने और पकड़ कर उन पर अभियोग चलाने के लिये उसने एक पृथक् अधिकारी 'मीरदाद' नियुक्त किया था, क्योंकि हेनरी सप्तम्, (ट्यूडर बादशाह) के अमीरों की तरह यहां के अमीर भी क़ाज़ियों को डरा धमका लेते थे और न्याय नहीं होने देते थे। मीरदाद का यही काम था कि ऐसे बड़े बड़े अमीरों की खबर ले। अपने साम्राज्य के अन्दर वह हिन्दुओं को नहीं सताता था और उनकी सती आदि कुप्रथाओं को भी बन्द करने के उपाय सोचता था। रणथम्भोर और चित्तौड़ के राजपूत राज्यों को उसने अजेय समझ कर न छेड़ा। इस नीति से धर्माधिकारी लोग बहुत असन्तुष्ट थे। तत्कालीन इतिहास-लेखक ज़ियाउद्दीन बरनी ने भी इसी कारण उसकी बहुत निन्दा की है। सुलतान की न्यायप्रियता इस हद तक पहुँच गई थी कि कहा जाता है कि कई बार किसी साधारण आदमी के शिकायत करने पर भी वह स्वयं कचहरी में पगड़ी उतार कर गया और क़ाज़ी के फ़ैसले पर उसे जो सज़ा मिली, उसे उसने बड़ी प्रसन्नता से सहन किया*।

इसलिये यद्यपि ऊपरी दृष्टि से मुहम्मद के शासन का चित्र बड़ा भयानक और अँधेरा जान पड़ता हो, परन्तु उसमें उसकी प्रतिभा और गुण छिपे थे। ये गुण थे— उसकी अद्भुत उदार नीति, शासन में धर्माधिकारियों के अनुचित प्रभाव का नाश और मुद्रा-विभाग के संशोधन। यदि उसके उत्तराधिकारी उसकी पहली धरोहर (उदार नीति) की रक्षा करते तो अवश्य साम्राज्य का रूप शीघ्र ही राष्ट्रीय हो जाता।

सुलतान फ़ीरोज़ शाह तुग़लक़ (१३५१–१३८८)

साम्राज्यका ह्रास और विच्छेद

राजनीतिक स्थिति—फ़ीरोज़ शाह तुग़लक़ अगस्त सन् १३५१ में गद्दी पर बैठा।

* लेखकों ने सुलतान के बारे में कई ऐसी घटनाओं का जिक्र तो किया है, पर हमारी समझ में यह नहीं आता कि ऐसे अस्थिर चित्तवाले और भयानक बादशाह के विरुद्ध अभियोग चलाने का साहस ही किसी को कैसे हो जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह ग़यासउद्दीन तुग़लक़ के छोटे भाई रजब का लड़का था। उसकी माता अबोहर के भाटी राजपूत सरदार रणमल की लड़की थी जिसके पिता को रजब और गयास ने उसका राज्य तबाह कर डालने की धमकी दी थी। तब उसने कहा कि प्रजा और राज्य की रक्षा के लिये मैं प्रसन्नता से मुसलमान के साथ शादी करके आत्म-समर्पण करने को तैयार हूँ। एक ऐसी राजपूत माता का पुत्र होते हुए भी फ़ीरोज़ बहुत संकीर्ण-हृदय तथा धर्मान्ध मुसलमान था। उसमें न तो मुहम्मद जैसी बुद्धि थी और न विद्वत्ता। वह एक अत्यन्त साधारण कोटि का शासक था। दूरदर्शिता का भी उसमें नितान्त अभाव था। उसके सिंहासनारूढ़ होने के समय देश की जो स्थिति थी, वह मुहम्मद के राज्य के वर्णन से भली भाँति विदित हो गई है। साम्राज्य का विस्तार आधे से भी कम रह गया था। सारा दक्षिण, गुजरात, सिंध तथा बंगाल आदि स्वतन्त्र हो गये थे। पूरा उत्तरी भारत भी साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं था। जो कुछ था, उसका शासन भी अस्त-व्यस्त हो चुका था। मुहम्मद की अनीतियों और दैव के प्रकोप दोनों ने मानों जनता के विरुद्ध एका कर लिया था। मुहम्मद के प्रजापालन के कार्य तो कभी सफल न हुए; हाँ, उसके क्रोध की ज्वाला से भस्मसात् हुई जनता रह गई। देहली के आस-पास का बहुत सा देश उजड़ गया था। एक काम अवश्य अनुकरणीय तथा अत्यन्त श्रेयस्कर हुआ था। मुहम्मद ने ऐसी दशा में एक योग्य शासक के समान वे काम थे कि वह (१) जनता के दुःखों का निवारण करके उनको फिर से सुःख-शान्ति प्रदान करे; (२) शासन को सुसंघटित करे और मुहम्मद की एक मात्र अद्भुत कृति, (शासन में उदार नीति) को नष्ट न होने दे, प्रत्युत् उसे पूर्ण रूप से परिपक्व करके एक राष्ट्रीय शासन का सूत्रपात करे; एवं उसके अन्य लाभकारी संशोधनों को भी नष्ट न होने दे। और (३) साम्राज्य के खोए हुए भागों को फिर से जीते। ये सारे कार्य अत्यन्त कठिन एवं कष्टसाध्य थे और फीरोज़ तुग़लक जैसे साधारण कोटि के शासक की शक्ति से सर्वथा बाहर थे।

शासन-व्यवस्था को ठीक करना—शासन-व्यवस्था को ठीक करके सुख-शान्ति की स्थापना का काम पहले-पहल फ़ीरोज़ ने बहुत योग्यता एवं तत्परता से किया। उसको सब कामों में सहायता देने के लिये एक बहुत योग्य आदमी, मलिक मक़बूल, मिल गया जिसे उसने अपना वज़ीर बनाया। यह एक तैलंग ब्राह्मण था और सारे साम्राज्य में निजी योग्यता तथा स्वामि-भक्ति में अपना सानी न रखता था।

लोगों पर जो सरकारी ऋण थे, फीरोज़ ने सबसे पहले वे सब माफ़ कर दिये। पीड़ित जनता को सन्तुष्ट करने और अपने और अपने भाई मुहम्मद के पापों को क्षमा कराने के लिये फीरोज़ ने उन सब लोगों को, जिनके सम्बन्धी निरपराध मारे गये थे या जिनको किसी अन्य प्रकार से ऐसा ही कष्ट पहुँचा था, उनको हरजाना देकर उनसे इस बात के हस्ताक्षर ले लिये कि वे सन्तुष्ट हो गये। ये सब काग़ज़ात एक सन्दूक में बन्द करके उसने मुहम्मद की क़ब्र में रखवा दिये जिससे यह ईश्वर के दण्ड से बच जाय। फिर उसने एक योग्य अमीर ख्वाजा हिसाम उद्दीन जुनैद को भूमि-कर की जाँच-पड़ताल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करने के लिये नियुक्त किया। उसने सारे राज्य का भ्रमण करके छः बरस में पूरी रिपोर्ट तैयार करके पेश की। फ़ीरोज़ ने मालगुज़ारी की शरह इतनी हलकी कर दी कि किसान लोग आसानी से अपना काम करते रहें। सूबेदारों से जो सालाना भेंट ली जाती थी, उसे भी फ़ीरोज़ ने बन्द कर दिया (यद्यपि पीछे से उसी के राज्य में यह प्रथा फिर शुरू हो गई), क्योंकि इसका भार भी अन्त को किसानों पर ही पड़ता था। बरनी ने उसकी प्रशंसा करने में बहुत अत्युक्ति से काम लिया है, तथापि यह सत्य ही जान पड़ता है कि शीघ्र ही गाँवों की दशा बहुत सुधर गई। सारा देश हरे-भरे खेतों से लहलहाने लगा। देहली के आस-पास फलों के १२०० बाग़ थे जिनसे सरकार को १८०००० तंका की सालाना आमदनी होती थी। इसी प्रकार खेतीबारी अच्छी होने से तथा अन्य उपायों से आय बढ़ी और लगभग ७ करोड़ तंका के हो गई। सन् १३७५ में फ़ीरोज़ ने कोई २५ प्रकार के कर एक दम मन्सूख़ कर दिये। इससे सरकार को तो आय की काफ़ी हानि हुई, परन्तु चीज़ें बहुत सस्ती हो गईं। ८ जितल की एक मन दाल और ४ जितल का एक मन जौ बिकता था। उसके इन करों को हटा देने का कारण यह भी था कि वह शरीयत में प्रतिपादित चार करों * के सिवा और कोई कर न लेना चाहता था।

इन उपायों के अतिरिक्त खेती के लिये फ़ीरोज़ ने पाँच नहरें बनवाईं जिनके चिह्न अब तक विद्यमान हैं। इनमें से एक नहर १५० मील लम्बी थी जो उसके नये शहर हिसार फ़ीरोज़ा को पानी पहुँचाने के लिये जमना में से काटी गई थी। उसने खेती-बारी और मुसाफ़िरों के आराम के लिये १५० कूएँ भी खुदवाये थे।

वास्तु—फ़ीरोज़ को इमारतें बनवाने का बड़ा शौक़ था। उसने फ़ीरोज़ाबाद या नई दिल्ली, फ़ीरोजपुर, फ़तेहाबाद, हिसार इत्यादि नगर बसाये थे। बहुत से मदरसे, ३० महलात, चार मस्जिदें, २०० सराएँ, पाँच तालाब, पाँच शफ़ाख़ाने, सैंकड़ों क़बरें, हम्माम, मीनारें और पुल आदि बनवाये। आश्चर्य की बात है कि फ़ीरोज़-कृत वास्तु में सड़कों का कहीं जिक्र नहीं है।

शासन को सुदृढ़ करने तथा साम्राज्य के खोये हुए प्रान्तों को फिर से विजय करने में फ़ीरोज़ को इतनी सफलता न हुई। सौभाग्य से उसके शासन काल में मुग़लों का कोई हमला न हुआ और वह एक बड़ी भारी समस्या से बच गया। दक्षिण के सूबों को तो उसने छेड़ने का विचार ही न किया। हाँ, बंगाल पर सबसे पहले चढ़ाई की। सन् १३५३–५४ में बंगाल के सूबेदार शम्सुद्दीन (हाजी इलियास शाह) पर चढ़ाई की। वह इकदला के क़िले में बन्द हो गया। जब फ़ीरोज़ अपनी सेना को थोड़ी दूर हटा ले

---

* चार कर ये हैं—ख़िराज, ज़कात, जज़िया और ख़म्स।

† हिसार का नाम पहले अग्रोहा था। उस स्थान पर फ़ीरोज़ ने नया शहर बनाकर शायद नया नाम रखा। जौनपुर भी एक प्राचीन नगर के स्थान पर बनाया गया। हिन्दू परम्परा के अनुसार इसका नाम जमदग्नि ऋषि के नाम पर जमनपुर था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गया, तब शम्सुद्दीन निकल आया। दोनों दलों में युद्ध हुआ और शम्सुद्दीन फिर भाग कर क़िले में घुस गया। फ़ीरोज़ ने घेरा डाला, परन्तु औरतों और बच्चों के रोने-पीटने की आवाज़ सुन कर उसे दया आ गई और उतने शम्सुद्दीन से सुलह कर ली। देहली लौट कर सन् १३५६ में उसने अपनी नई देहली (फ़ीरोज़ाबाद) और फिर हिसार फ़ीरोज़ा बसाया। सन् १३५९ में फ़ीरोज़ ने बंगाल पर फिर चढ़ाई कर दी। कारण यह था कि इलियास के लड़के सिकन्दर शाह ने पूर्वी बंगाल पर भी अधिकार कर लिया था। उसका दावेदार पहले शासक का एक दामाद, ज़फ़र खाँ था जिसने भाग कर फ़ीरोज़ से फ़रीयाद की थी। फ़ीरोज़ ने चढ़ाई की और रास्ते में ज़फ़राबाद के पास एक पुराने शहर के स्थान पर नया शहर बसाया जिसका नाम जौनपुर पड़ा। शायद उसने उसका नाम बदल कर जमनपुर का जौनपुर कर दिया हो। बंगाल पहुँच कर फ़ीरोज़ ने सिकन्दर शाह से फिर सुलह कर ली और ज़फ़र खाँ को देहली में एक वज़ीर का पद दे दिया।

बंगाल से लौटते समय सुलतान ने जाजनगर (उड़ीसा) के राय पर हमला किया और उससे बहुत से हाथी इत्यादि सालाना खिराज भेजने का वादा कराया। साथ ही उसने जगन्नाथ का मन्दिर तोड़ा और मूर्त्तियों को समुद्र में फिकवा दिया। इस अवकाश में बहुत काल तक उसका कुछ पता न रहा। दरबार में उसकी कोई सूचना न आई। परन्तु योग्य मन्त्री मक़बूल ने शान्ति क़ायम रखी और शासन कार्य में गड़बड़ न होने दी।

सन् १३६०-६१ में उसने नगरकोट पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई का मुख्य उद्देश्य ज्वालामुखी देवी के मन्दिर का विनाश करना था, परन्तु छः महीने के घेरे के बाद दोनों दल थक गये। राय ने क्षमा माँग ली और फ़ीरोज़ उसे माफ करके लौट आया।

सन् १३७१–७२ में सुलतान ने ठट्टा पर चढ़ाई की। इसके लिये उसने बड़ी भारी तैयारी की। ९०००० घुड़सवार, बहुत से पैदल और ४८० हाथी लेकर वह देहली से रवाना हुआ। ५,००० नावों का एक बेड़ा भी भेजा गया। सिंध के सरदार ने भी बड़ी तैयारी की, परन्तु अन्त को उसे युद्ध में पीछे हटाना पड़ा। सुलतान की फ़ौज को अकाल, मरी, पानी की कमी आदि से बहुत कष्ट हुआ था और बहुत से लोग मर गये थे; इसलिये फीरोज़ भी गुजरात में आकर फिर से तैयारी करना चाहता था। परन्तु एक विश्वासघातक पथप्रदर्शक ने सारी सेना को कच्छ की दलदल में फँसा दिया। सारी सेना महीने भर तक रास्ता न पा सकी। इस बार फिर देहली तक कोई खबर न पहुँची और स्वामीभक्त मक़बूल ने फिर अपनी चतुराई से शासन को सँभाल रखा। बड़ी कठिनता से सेना गुजरात पहुँची। वहाँ पहुँच कर सुलतान ने सेना को सुसंघटित किया। सब को घोड़े आदि आवश्यक सामग्री दिलवाई। तैयारी करने के बाद सिंध पर फिर हमला किया, और लड़ाई कई महीने चली। सुलतान ने इमाद उल्मुल्क को भेज कर देहली से कुमक मँगवाई। अन्त को जाम ने हार मानी। उसे सुलतान देहली ले आया और पेन्शन दे दी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फीरोज़ का शासन कार्य—हम देख चुके हैं कि फ़ीरोज़ ने सार्वजनिक हित के काम शुरू ही से बड़ी तत्परता से किये और प्रजा को सुखी बनाया। परन्तु वह पक्का मुसलमान और उदार राष्ट्रीय नीति के सिद्धान्तों से बिलकुल अनभिज्ञ था। इसलिये उसने शासन के सिद्धान्तों को फिर संकुचित करके उसमें धर्मान्धता को प्रधानता दे दी। उसने ब्राह्मणों पर भी जज़िया लगाया और एक ब्राह्मण को सिर्फ़ इस अपराध पर जीता जलवा दिया कि वह खुले आम पूजा पाठ करता था। वह सब काम धर्म के ठेकेदारों से पूछ कर करता था। चार शरई करों के अतिरिक्त नहरों पर भी उसने तब तक कोई कर नहीं लिया, जब तक उनकी स्वीकृति नहीं ले ली।

उसने सारे राज्य को जागीरों में बाँट दिया। प्रत्येक सूबा एक जागीर के रूप में हो गया। फिर वह छोटी छोटी जागीरों में विभक्त किया गया। इस प्रथा को फिर से प्रचलित करके फीरोज़ ने साम्राज्य की शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचाया। सेना में भी उसने इसी प्रकार बहुत अदूरदर्शिता से काम लिया। स्थायी सेना को फिर से जागीरें दी गईं और अस्थायी सेना को कोष से तनखाहें मिलती रहीं। किसी बूढ़े आदमी को निकाला नहीं जाता था। बूढ़े अफ़सरों को पेन्शन मिलती रहती थी, और उनके पुत्र, चाहे योग्य हों या नहीं, उनके पद पर नियुक्त कर दिये जाते थे। इस नीति में उदारता और कृपालुता तो अवश्य थी, परन्तु सैनिक शक्ति इससे नष्ट हो गई।

न्याय-विभाग में फिर उसने क़ाज़ियों और मुफ़तियों को सर्वोच्च स्थान दिया। मुफ़ती क़ानून की तशरीह (व्याख्या) करता था और क़ाज़ी फैसला सुनाता था। फ़ौजदारी के अपराधों के लिये बड़े कठोर दण्ड थे, परन्तु फ़ीरोज़ ने यातनाओं की प्रथा हटा दी।

उसने ग़रीबों की सहायता के लिये भी एक विभाग खोला था। शहरों के कोतवालों को आज्ञा हुई कि सब दरिद्रों की सूची बनावें। ऐसे सब लोगों को योग्यतानुसार या तो राज-प्रासाद में या कारखानों में नौकरियाँ दिलाईं। जिन्हों ने किसी अमीर का गुलाम बनना पसन्द किया, उनको वहाँ भेज दिया। ग़रीब मुसलमानों को उनकी लड़कियों की शादी करने में सहायता देने के लिये एक 'दीवाने खैरात' (दान-कार्यालय) खोला। इसके अतिरिक्त देहली में उसने एक बड़ा दारउलशफ़ा या औषधालय भी खोला। इसमें मरीज़ों को खाना-कपड़ा भी दिया जाता था। यात्रियों के लिये भी उसने बहुत से सुभीते किये थे।

फ़ीरोज़ को गुलामों से बड़ी दिलचस्पी थी। अतः सूबेदार बराबर उसके पास गुलाम भेजते रहते थे। इनकी तादाद देहली तथा सूबों में मिला कर १८०००० तक पहुँच गई थी। इनको पढ़ना-लिखना और दस्तकारी के काम सीखने पड़ते थे।

टकसाल की व्यवस्था उसके समय में बिलकुल बिगड़ गई। मुहम्मद तुग़लक़ के सब सुधार उसकी नरम नीति ने नष्ट कर दिये। उसका कोई सिक्का ऐसा नहीं मिलता जिसमें मिलावट या धोखा न हो। कारण यह कि टकसाल के कर्मचारियों पर कोई नियन्त्रण ही न था। उसने जनता की सुविधा के लिये केवल एक परिवर्त्तन किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामान उन दिनों बहुत सस्ता था। इस कारण छोटी खरीद बिक्री के लिये आधा (आधा जितल) और बिख (चौथाई जितल) नामक सिक्के बनवाये।

साहित्य को भी फ़ीरोज़ ने बहुत प्रोत्साहन दिया। मुसलमान विद्वानों की वह अपने 'अंगूरी महल' में बड़ी आव-भगत करता था। इतिहास में उसकी विशेष रुचि थी। ज़िया उद्दीन बरनी और शम्स-ए-सिराज अफीफ़ उसके दरबारी इतिहास-लेखक थे। उसने अन्य विषयों के ग्रन्थ भी लिखवाये। उसने बहुत से मकतब और मठ बनवाये थे जिनमें विद्वान लोग रहते और अध्ययन में अपना जीवन लगाते थे। मौलाना जलालउद्दीन रूमी उसके समय का सब से प्रसिद्ध विद्वान था जो उसके महाविद्यालय में मुस्लिम फ़िक़ः (धर्मशास्त्र) की व्याख्या करता था। काँगड़े के मन्दिर में उसे १३०० संस्कृत के ग्रन्थ मिले थे जिनमें से उसने कई का फ़ारसी में अनुवाद कराया था।

फ़ीरोज़ के शासन के वर्णन में एक बात उसके वज़ीर खाँजहाँ मक़बूल के विषय में लिख देना आवश्यक है। हम पहले बतला चुके हैं कि वह एक तैलंग ब्राह्मण था। उसने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था। मुहम्मद के शासन में वह मुलतान का सूबेदार था। फ़ीरोज़ ने उसे अपना वज़ीर बनाया। जब जब सुलतान राजधानी छोड़ कर दूर देशों की चढ़ाइयों पर गया, तब तब मक़बूल ने इतनी योग्यता से शासन कार्य्यों का संचालन किया कि किसी प्रकार की गड़बड़ न होने पाई। वह एक बड़ा चतुर नीतिज्ञ था। कहा जाता है कि उसके हरम में दो हज़ार औरतें थीं। जब सन् १३७० में मक़बूल की मृत्यु हो गई, तब फ़ीरोज़ ने उसके स्थान पर उसके पुत्र जूना शाह को वही खाँ-जहाँ की उपाधि से अलंकृत करके वज़ीर बनाया।

फ़ीरोज़ का अन्त—पिछले दिनों में फ़ीरोज़ बहुत बूढ़ा हो गया था। उसकी शक्ति बिलकुल शिथिल पड़ गई। उसके लड़के मुहम्मद और वज़ीर खाँजहाँ में पस्पर झगड़ा चला जिसमें वज़ीर को भागना पड़ा। राजकुमार बड़ा विलासी था। उसने अपने सब विलासी साथियों को पदाधिकारी बनाया। शीघ्र ही उसका विरोध हुआ। थोड़े दिन तक फ़ीरोज़ ने किसी प्रकार फिर राज्य को सँभाला, परन्तु शीघ्र ही सन् १३८८ में वह मर गया।

फ़ीरोज़ का चरित्र—फ़ीरोज़ की मृत्यु के साथ देहली की सल्तनत की महत्ता समाप्त हो गई। अपने अग्रगामियों के किये हुए संघटन को नष्ट करने में उसने स्वयं अपनी नीति से कसर न रखी थी। सैनिक दृढ़ता, नियम-पालन, कार्य-पटुता, महत्वाकांक्षा इत्यादि शासक के आवश्यक गुणों का उसमें अभाव था, परन्तु इन त्रुटियों का प्रतिकार तथा समाधान उसके प्रजाहित के कार्यों तथा व्यक्तिगत लोकप्रियता से हो जाता था। एक और गुण उसमें था जिसने उसे बड़ी सहायता दी। वह मानव चरित्र को खूब पहचानता था और योग्य से योग्य पुरुषों को चुन चुन कर शासन कार्य उनके सपुर्द करता तथा उन पर पूरा भरोसा रखता था। उसके योग्य मन्त्रियों ने उसके शासन की ठीक देख-भाल रखी, परन्तु उसकी नीति का परिणाम यह हुआ कि उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरते ही साम्राज्य बालू पर बनी हुई दीवार की भाँति ढह गया। उसके उत्तराधिकारियों में कोई ऐसा न था जो इस जर्जर संस्था के मृतप्राय शरीर में पुनः जीवन फूँक सकता।

पिछले तुग़लक़ और तैमूर का आक्रमण

फ़ीरोज़ के बाद उसका पोता फतह खाँ तख्त पर बैठा और उसने अपना नाम गयासुद्दीन तुग़लक़ द्वितीय रखा। परन्तु बहुत ही जल्दी उसका वध हुआ और ज़फ़र खाँ नामक एक अमीर का लड़का अबू बक्र गद्दी पर बैठा। इसके विरुद्ध फीरोज़ के छोटे लड़के शाहज़ादा मुहम्मद ने देहली पर चढ़ाई की। उमरा दोनों पक्षों में बँट गये। बहादुर नाहर नामक एक मेवाती अमीर ने, जो मुसलमान हो गया था, अबू बक्र का पक्ष लिया। कई बार दोनों दलों में युद्ध हुए जिनमें मुहम्मद हारा; परन्तु एक बार मौक़ा पा कर सन् १३९० में वह अमीरों की सहायता से, अबू बक्र की अनुपस्थिति में, देहली में घुस गया और तख्त पर अधिकार करके नासिर उद्दीन मुहम्मद के नाम से सुलतान होने की घोषणा कर दी। फिर उसने अबूबक्र और बहादुर नाहर को हराया और अबूबक्र को मेरठ के किले में कैद कर दिया और नाहर को क्षमा कर दिया। सन् १३९४ में नासिर उद्दीन की मृत्यु हो गई और उसका लड़का हुमायूँ भी उसके दो चार दिन बाद ही मर गया। अब मुहम्मद का सबसे छोटा लड़का महमूद बादशाह हुआ। उसने अपना नाम नासिरउद्दीन महमूद तुग़लक़ रखा। इस समय साम्राज्य में चारों ओर विद्रोह हो रहे थे। प्रायः सरदार और जागीरदार अपनी-अपनी जागीरों में स्वतन्त्र हो बैठे थे। जौनपुर, मालवा, गुजरात आदि सूबों के शासक स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर रहे थे। इसी समब फ़ीरोज़ाबाद के अमीरों ने फ़ीरोज़ के एक पोते नसरत को आगे रख कर महमूद का विरोध करना शुरू किया। अब अवस्था यह थी कि महमूद तो देहली में सुलतान होने का दावा कर रहा कर रहा था और नसरत उससे १० मील के फासले पर फ़ीरोज़ाबाद में सुलतान बना हुआ बैठा था। दोनों पक्षों के समर्थकों में मल्लू इक़बाल, मुक़र्रब खाँ और बहादुर नाहर, ये तीन सबसे प्रबल अमीर थे। कई वर्ष तक घरेलू लड़ाई चलती रही। थे आपस के झगड़े चल ही रहे थे कि तैमूर अपनी भारी सेना लेकर आ पहुँचा।

तैमूर का आक्रमण (१३९८)—तैमूर समरक़न्द का अमीर और एक तुर्की परिवार का था। वह संसार के बड़े विजेताओं में से एक था। ३३ बरस की अवस्था में वह चग़ताई फिरके का नेता हो गया था और उसने फारस अफ़ग़ानिस्तान, मेसोपोटामिया आदि पश्चिमी एशिया के समस्त देश जीत डाले थे। हिन्दुस्तान में आने के लिसे उसे बहाने भी मिल गये, यद्यपि उसे बहानों की आवश्यकता कभी नहीं होती थी। देश-देशान्तर पर चढ़ाई करना उसका पेशा सा ही था। भारत पर चढ़ाई करने का बहाना उसे यह मिल गया कि यहाँ के बादशाह मूर्ति-पूजा का अन्त नहीं करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तैमूर ने सन् १३९८ में ही अपने पोते पीर मुहम्मद को आगे भेज दिया था। उसने उच और मुलतान को अधिकृत कर लिया था। पीर मुहम्मद ने देपालपुर में मुसाफ़िर काबुली को शासक बना दिया था। परन्तु जनता ने उसे मार डाला। तैमूर के आने की ख़बर सुन कर देपालपुर के लोग डर के मारे भाग कर भटनेर के क़िले में जा छिपे, परन्तु तैमूर के सैनिकों ने क़िले को नष्ट किया और जनता को मार-काट कर उनका माल असबाब लूट लिया।

तैमूर हिन्दूकुश होता हुआ पहले भटनेर, फिर सिरसुती और तब वहाँ से कैथल पहुँचा। यहाँ उसने देहली पर हमला करने की तैयारी करना शुरू की। फिर वह गाँवों को जलाता, लूट-मार करता, औरतों, बच्चों और मर्दों को पकड़ता हुआ अम्बाले और मेरठ के रास्ते से देहली के पास पहुँचा और शहर से कोई १० मील के फ़ासले पर लोनी के क़िले के निकट उसने पड़ाव डाला। उसकी छावनी में इस समय १ लाख हिन्दू क़ैदी थे। इनको उसने बलवे के डर से एक साथ ही क़त्ल करा डाला। तब उसने अपनी सेना को युद्ध के लिये तैयार किया। सुलतान महमूद और मल्लू इक़बाल ने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर के उसका मुक़ाबला किया और वे वीरता से लड़े, परन्तु अन्त को उनकी हार हुई। तब तैमूर ने देहली को ख़ूब लूटा, हज़ारों नगरनिवासियों को तलवार के घाट उतारा और हज़ारों कारीगरों को पकड़ कर समरक़न्द ले गया। वहाँ उनकी सहायता से उसने अपने प्यारे नगर में बड़े-बड़े प्रासाद और समरक़न्द की विख्यात मस्जिद बनवाई। देहली में एक पक्ष ठहरने के बाद तैमूर मेरठ होता हुआ हरद्वार पहुँचा। वहाँ हिन्दुओं से बड़ा घमासान युद्ध हुआ। हरद्वार को लूट कर उसने सिरमूर पहाड़ी (शिवालक) के राज्य पर हमला किया और उसको बलात् मुसलमान बनाया। इसके बाद वह मुलतान के सूबेदार ख़िज्र ख़ाँ को लाहौर, देपालपुर और मुलतान का जागीरदार बना कर वापस लौट गया।

तैमूर का आक्रमण सलतनत के ह्रास का परिणाम ही था। परन्तु उसकी लूट-मार और क़त्ल से देश की अवस्था और भी बिगड़ गई। उस समय कोई शक्ति ऐसी न रही जो शान्ति या सुरक्षित दशा स्थापित कर सकती। देहली में नाम को महमूद सुलतान था, परन्तु अधिकार मल्लू इक़बाल का था। उसके अनुचित आधिपत्य से तंग आकर महमूद ने जौनपुर से सहायता माँगी, पर विफल रहा। तब वह देहली छोड़ कर क़न्नौज चला गया। इक़बाल ने गवालियर और इटावा के हिन्दू सरदारों को दमन करने का यत्न किया और फिर ख़िज्र ख़ाँ पर चढ़ाई की जिसमें वह सन् १४०५ में मारा गया। उसके मरने के बाद महमूद देहली लौटा, परन्तु उसके पतित चरित्र के कारण उसकी शक्ति न बढ़ सकी और वह सन् १४१२ में मर गया। इसके बाद अमीरों ने दौलत ख़ाँ को अपना नेता चुना। परन्तु ख़िज्र ख़ाँ ने मुलतान से आकर उसे पराजित किया और तब वह मुलतान की गद्दी पर आरूढ़ हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौथा अध्याय

सलतनत का सन्ध्याकालः पुनरुद्धार का निष्फल प्रयास

(१)

सैय्यद वंश

चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में देश की स्थिति—खिज्र खाँ के गद्दीनशीन होने के समय देश की अवस्था ऐसी थी कि राज्य के पुनरुत्थान के लिये किसी बड़े भारी प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ, शूर-वीर एवं योग्य शासक की आवश्यकता थी। सैय्यदों को ऐसी विकट और असाध्य समस्या का सामना करना पड़ा जिस को हल करना उनकी सामान्य योग्यता के बाहर था। जिस दिल्लीश्वर का आतंक केवल ५०, ६० वर्ष पहले इस विशाल देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ था, उसका वास्तविक आधिपत्य अब दिल्ली से ५० मील पर भी नहीं रह गया था। इस पतित, हतशक्ति एवं विघटित ढाँचे को, जिसका आत्मिक प्रभाव बिलकुल मिट गया था, फिर से सशक्त और सजीव बनाने का काम एक नये साम्राज्य की स्थापना से भी कठिन था।

खिज्र खाँ सन् १४१४ से १४२१ तक देहली के डाँवाडोल तख्त पर रहा। वह अपने को सुलतान कहता हुआ भी घबराता था और केवल तैमूर के राज-प्रतिनिधि के नाम से ही राज्य करता रहा। उसका सारा समय कटेहर, बदाऊँ, क़न्नौज, सकीट, इटावा आदि स्थानों के हिन्दू सरदारों के बलवों को दमन करने के यत्न में व्यतीत हुआ। देहली के पास मेवाती स्वतन्त्र हो गये और सीमा पर खोखरों ने लाहौर तक लूट-मार करनी शुरू कर दी। दोआब के सरदारों ने थोड़े समय के लिये खिराज देना शुरू कर दिया, पर फिर वही दशा हो गई। सन् १४२१ में देहली में खिज्र खाँ की मृत्यु हो गई। खिज्र खाँ बड़े शील स्वभाव का मनुष्य था। वह व्यर्थ रक्तपात करना नहीं चाहता था। शायद वह शासन में कुछ सुधार भी करता, परन्तु परिस्थिति इतनी खराब थी कि उसे किसी प्रकार का सुधार करने का अवसर ही न मिला।

खिज्र खाँ का उत्तराधिकारी उसका लड़का मुबारक हुआ। उसको भी वही दृश्य देखना पड़ा। फिर विद्रोह हुए। सब से प्रबल विद्रोह पंजाब में जसरथ खोखर और पौलाद के हुए। मुबारक ने इनको बड़ी कठिनाई से दमन किया। फिर जब उसने शासन में कुछ सुधार करना चाहा, तब उसके अमीर बिगड़ गये और उन्होंने धोखे से उसको मार डाला (१४३४)। उसके एक समकालीन लेखक ने उसकी प्रशंसा इन संक्षिप्त शब्दों में की है—"बड़ा दयालु एवं उदार तथा सद्‌गुणों से भरपूर बादशाह"। उसके बाद उसका भतीजा मुहम्मद अत्यन्त अशक्त और अयोग्य शासक साबित हुआ। उसके समय में जौनपुर के शासक इब्राहीम ने दिल्ली के कई परगने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपहरण कर लिये। गवालियर आदि के हिन्दु सरदारों ने खिराज देना बन्द कर दिया। मालवे के शासक ने चढ़ाई कर दी थी, परन्तु वह निजी आवश्यकता के कारण लौट गया। लाहौर के सूबेदार बहलोल ने इस समय उसकी सहायता की। इस समय सल्तनत का अधिकार देहली और उसके निकट के कुछ देहातों तक ही परिमित था। मुहम्मद के बाद चौथा सैय्यद सुलतान, जो सन् १४४५ में गद्दी पर बैठा, बिलकुल ही निकम्मा था। वह शासन-कार्यों को झंझट समझता था। इससे छुटकारा पाने के हेतु वह सन् १४४७ में अपनी निजी जागीर बदायूँ में जा बसा और शासन का सब काम बहलोल को सौंप गया। थोड़े दिन बाद बहलोल ने उसका नाम खुतबे में से हटा कर अपने को स्वतन्त्र बना लिया। निर्जीव आलम शाह सन् १४७८ तक बदायूँ में जिन्दा रहा।

(२)

लोदी वंश

बहलोल ने बड़ी सावधानी से काम करना शुरू किया। अफ़ग़ान लोगों को सन्तुष्ट रखना बहुत कठिन था। कारण यह कि वे अपनी बिरादरी के सब परिवारों को बराबर समझते थे और यह कभी सहन न कर सकते थे कि उनमें से कोई सुलतान होकर अपने को उनसे ऊँचा मानने लगे। इसलिये उनको सन्तुष्ट रखने के विचार से बहलोल ने बनावटी नम्रता से काम लिया। वह स्वयं अफ़ग़ान अमीरों के घर मिलने जाता और उनसे बड़े विनीत भाव से व्यवहार करता था। कभी उनसे ऊँचे आसन पर न बैठता था। इस प्रकार अपनी बिरादरी के मुख्य लोगों को सन्तुष्ट करके बहलोल ने उन लोगों को नष्ट किया, जिनसे उसे आशंका थी। सन् १४५१ में मुलतान के सूबेदार को एक दल ने निकाल दिया। बहलोल उसे पुनःस्थापित करने को रवाना हुआ; परन्तु सरहिंद में ही उसे खबर मिली कि जौनपुर का शासक महमूद देहली पर चढ़ आया है। अतएव वह तुरन्त वापस लौटा और महमूद भी वापस लौट गया। बहलोल की इस विजय से उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। फिर उसने गवालियर, इटावा, सकीट, भोगाँव, चँदवर इत्यादि के सरदारों को दिल्ली का प्रभुत्व मानने और राज-कर देने पर विवश किया।

इस समय देहली के सुलतानों का सब से भयानक शत्रु जौनपुर का शर्की शासक था, क्योंकि अन्य स्वतन्त्र राज्य दिल्ली से बहुत दूर थे। जौनपुर के सुलतान महमूद ने एक और आक्रमण किया, परन्तु सुलह कर ली। फिर उसके उत्तराधिकारी हुसेन ने देहली पर कई आक्रमण किये, परन्तु अन्त को वह हार कर अपना राज्य भी हाथ से खो बैठा। बहलोल ने उसे निकाल कर जौनपुर का राज्य अपने लड़के बारबक के सपुर्द कर दिया। सन् १४८९ में उसकी मृत्यु हो गई।

बहलोल के बाद उत्तराधिकार का झगड़ा खड़ा हुआ, परन्तु उसका पुत्र निज़ाम खाँ गद्दी पर बैठने में सफल हुआ। उसने अपना नाम सिकन्दर लोदी रखा। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय सारा राज्य जागीरों में विभक्त था। सिकन्दर बहुत योग्य और बलशाली शासक था। उसने अफ़ग़ान सल्तनत को पुनरुज्जीवित करने का भरसक प्रयत्न किया। उत्तरी भारत का अधिक भाग उसने फिर से अधिकृत भी किया। साम्राज्य का दायरा फिर विस्तृत हुआ, परन्तु ये सब ऊपरी उद्धार थे। उसका पूर्व-कालीन संघटन वह भी स्थापित न कर सका।

सिकन्दर ने पहले-पहले रिवाड़ी के उद्दण्ड जागीरदार को निकाल कर एक दूसरा शासक नियुक्त किया। फिर उसे अपने भाई बारबक से भुगतना पड़ा। वह सिकन्दर का आधिपत्य स्वीकार नहीं करता था। सिकन्दर ने उसे पराजित किया, परन्तु फिर बहाल कर दिया। पर वह आस-पास के सरदारों के विद्रोहों को न दबा सका, इस कारण सिकन्दर ने उसे हटा कर जमाल खाँ सारंगखानी को नारनौल से जौनपुर भेज दिया। (१४९४)

उत्तरी भारत में फिर बराबर बलवे होते रहे और सिकन्दर को भी अपना अधिक समय उन्हीं के दमन करने में लगाना पड़ा। विद्रोह के दो बड़े केन्द्र थे, एक कटेहर या रूहेलखण्ड, और दूसरा इटावा और गवालियर के बीच का प्रदेश। कटेहर के विद्रोह को पूरी तरह से दमन करने के उद्देश्य से वह चार साल तक सम्भल में ठहरा और वहाँ उसने बड़ी निर्दयता से विद्रोहियों का संहार किया। फिर उसने उस प्रान्त के शासन को सुव्यवस्थित किया और हिन्दुओं के मन्दिर आदि नष्ट कर के अपनी धर्म्मान्धता का भी परिचय दिया।

इटावा के पास की समस्या का निराकरण करने के लिये उसने सन् १५०४ में आगरा शहर बसाया। जिस प्रकार पंजाब के बाद देहली पहला स्थान है, जहाँ से राजपूताना, दक्षिण तथा पूर्व जाने के रास्ते खुलते हैं, उसी प्रकार आगरा दक्षिण में वही भौगोलिक महत्त्व रखता है। जयपुर से लेकर गवालियर और बुन्देलखण्ड के प्रदेश को आधिपत्य में रखने के लिये आगरे के स्थान पर छावनी रखना अत्यावश्यक था। उसके इस महत्त्व का सिकन्दर ने अनुभव किया। फिर इस केन्द्र से गवालियर, इटावा, बयाना, कोयल (अलीगढ़), धौलपुर आदि के सरदारों को दमन किया। सन् १५०६ में उसने नरवर पर घेरा डाला। भीषण युद्ध के बाद, जब क़िले में खाने-पीने की सामग्री समाप्त हो गई, तब हिन्दुओं ने हार मान ली। नरवर के बाद चँदेरी और नागौर को भी सन् १५१० में अधिकृत किया। सन् १५१७ में आगरे में उसकी मृत्यु हो गई।

सिकन्दर का शासन—शासन को संघटित करने की तो सिकन्दर में योग्यता ही नहीं थी। हाँ, एक काम उसने किया। एक बड़ी हद तक अधिकार अपने हाथ में कर के अफ़गानों को एकाधिकार में रखा। तथापि वे यह सिद्धान्त न भूले कि हम बादशाह के बराबर ही हैं; वह केवल हम लोगों में बड़ा है। शासन के उस धर्मावस्थित सिद्धान्त (Theocracy) को, जिसे फ़ीरोज़ ने फिर पुनरुज्जीवित किया था, सिकन्दर ने और भी सुदृढ़ किया। सम्भल के बोधन नाम के एक ब्राह्मण के देश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहने पर कि हिन्दू धर्म उतना ही अच्छा है जितना मुसलमानी धर्म, उस पर उलमा की मजलिस के सामने अभियोग चलाया गया और उनके फतवे पर उसे कत्ल किया गया। हिन्दुओं के धर्म के विरुद्ध कई बड़ी संकीर्ण आज्ञाएँ दी गईं। उनको दाढ़ी और सिर मुँड़ाने से रोका गया। मूर्तियाँ कसाइयों को दे दी गईं जिसमें वे उनसे माँस तौलने के बाट बनावें। इस समय युरोप में भी धार्मिक अत्याचार बड़े वेग से हो रहे थे।

परन्तु सिकन्दर ने शासन-व्यवस्था में कुछ सुधार अवश्य किये। सरकारी आय-व्यय विभाग के हिसाब की जाँच-पड़ताल का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया, क्योंकि उस समय बीच के अफ़सर बड़ा ग़बन और बेईमानी करते थे। ऐसा करनेवालों को कड़ी सजाएँ दीं। न्याय में भी बहुत कड़ाई की और सब के साथ समान व्यवहार करना शुरू किया। किसी बड़े आदमी को केवल उसकी हैसियत के कारण नहीं छोड़ा जाता था। गुप्तचर विभाग भी स्थापित किया गया और बाज़ारों के निरीक्षण का प्रबन्ध किया गया। गाँवों के लोगों की रक्षा के उपाय किये गये। खेती की वृद्धि और उन्नति का प्रबन्ध किया गया, तथा व्यापार वाणिज्य को भी प्रोत्साहन दिया गया। ग़रीब लोगों की हर साल एक सूची बनवाई जाती थी और उनको खाना बाँटा जाता था। दस्तकारियों की उन्नति के लिये कारखाने भी खुलवाये गये। इस प्रकार शासन प्रबन्ध के भिन्न भिन्न विभागों को सुधारने का तो सिकन्दर ने भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वह उन मौलिक त्रुटियों को न दूर कर सका जिनके रहते हुए किसी राज्य का संघटित होना असम्भव होता है।

सिकन्दर कुछ कविता भी करता था। उसका तखल्लुस था 'गुलरुख़'। वह कवियों तथा विद्वानों को प्रोत्साहित करता तथा आश्रय देता था। उसकी आज्ञा से मियाँ भुवा नामक एक विद्वान् ने आयुर्वेद की एक संस्कृत पुस्तक का फ़ारसी भाषा में अनुवाद किया था। इस पुस्तक का नाम है—तिब्ब-ए-सिकन्दरी।

सिकन्दर के बाद उसका बेटा इब्राहीम गद्दीनशीन हुआ। इसको भी कभी शान्ति न मिली। परिस्थिति प्रतिकूल थी ही। इब्राहीम उतना चतुर न था। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही एक बाहरी विजेता ने उसका अन्त करके उसके साथ अफ़ग़ान साम्राज्य का भी अन्त कर दिया।

पाँचवाँ अध्याय

सलतनत की शासन-प्रणाली

मुस्लिम राजसत्ता का आधार ईश-सत्तात्मक (Theocratic) है। उसका मूल सिद्धान्त यह है कि राज्य का सर्वोच्च अधिष्ठाता अथवा सच्चा राजा स्वयं ईश्वर है और सांसारिक राजा केवल उसका प्रतिनिधि रूप है। उसका कर्त्तव्य और धर्म यही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि वह ईश्वर की आज्ञा का पालन करे और इस उद्देश्य पूर्त्ति के लिये अपने राज्य की सारी शक्ति का प्रयोग करे। राज्य का उद्देश्य केवल एक है—धर्म्म को संसार भर में फैलाना। अतः राजा तथा उसके कर्मचारियों का मुख्य उद्देश्य धर्म-प्रचार ही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये दिन रात प्रयत्न करते रहना ही प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है। इसी का नाम "जहाद" है। इस सिद्धान्त के अनुसार इस्लाम धर्म्म के विरोधी समस्त विचारों को नष्ट करना तथा उनके अनुयायियों को या तो मुसलमान बनाना और यदि वे न बनें तो उन्हें नष्ट करना प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है।

इस्लाम की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप और कुफ़ है मूर्ति-पूजा, अर्थात् एक से अधिक ईश्वर या देवता मानना, अथवा ईश्वर के बराबर कोई और शक्ति भी मानना। इसलिये मूर्ति-पूजा को नष्ट करना और मूर्ति-पूजकों को किसी न किसी उपाय से मुसलमान बनाना मुसलमानों में परम-धर्म समझा जाता है। मुस्लिम राज्य के अन्दर मूर्ति-पूजकों के लिये दो ही रास्ते हैं, या तो इस्लाम धर्म ग्रहण करना या मृत्यु।

इस्लाम धर्म अथवा राज्य का मूल सिद्धान्त तो यह था; परन्तु जब अरबवालों ने अन्य देशों को जीतना शुरू किया, तब वे ऐसी जातियों के सम्पर्क में भी आये जिनकी सभ्यता और संस्कृति उनसे कहीं प्राचीन तथा उच्च थी। उन्होंने देखा कि इनको इस्लाम धर्म स्वीकार कराना किसी प्रकार के उपाय से भी सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उन्हें अपने धर्म के कट्टर आदेशों को ढीला करना पड़ा। सिंध के अरबी मुसलमान शासकों ने बड़ी नीति और चतुराई से काम लिया। उन्होंने धार्मिक असहिष्णुता की नीति से हर प्रकार की आशंका देख कर हिन्दुओं के धर्म्म पर प्रहार न किये। उनके देवस्थानों तथा मन्दिरों को नहीं तोड़ा और शासन कार्य में भी उनसे पूरी सहायता ली। इसी प्रकार की परिस्थिति के कारण मुस्लिम दण्ड-विधान के एक बड़े भारी पण्डित अबू हनीफ़ा ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की जिसके अनुसार इस्लाम धर्म ग्रहण न करनेवाले काफ़िरों के लिये एक दूसरा रास्ता भी बतलाया। इस नियम के अनुसार वह कुछ मूल्य देकर अपने जीवित रहने का अधिकार खरीद सकता है। इसी मूल्य का नाम जज़िया है।

तुर्क सुलतानों के युग में, एक दो समझदार सुलतानों को छोड़ कर, जिन्होंने कुछ कुछ उदार नीति का प्रयोग किया, प्रायः सभी असहिष्णुता की नीति का पालन करते रहे। राजनीतिक परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के कारण उनको अपनी प्रजा के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करना पड़ता था; परन्तु विजित प्रदेशों अथवा अन्य प्रजा के साथ काम पड़ने पर वे पूर्ण रूप से इस्लाम की शिक्षा का अनुकरण करने का यत्न करते रहे।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के तुर्क मुसलमान विजेताओं के सामने धर्म का यही आदर्श था; परन्तु उनका आदर्श और उद्देश्य केवल धर्म-प्रचार न रह कर कई प्रकार से मिश्रित हो गया था। जैसा कि हम ऊपर एक स्थान पर बतला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुके हैं, उनके आदर्श और उद्देश्य ही नहीं प्रत्युत् उनकी कार्य-प्रणाली पर भी फ़ारस की गहरी छाप लग चुकी थी। इसके अतिरिक्त उनके कार्यक्रम पर एक और प्रभाव भी पड़ा था। यह था तुर्क जातीय चरित्र एवं रीति रवाज का। इस प्रकार देहली की मुसलमान सल्तनत के राजनीतिक प्रवाह में तीन मुख्य धाराएँ सम्मिलित होकर उसकी नीति को प्रेरित कर रही थीं। ये तीन धाराएँ इस प्रकार थीं—(१) अरबी धर्म तथा राजनीति का उद्देश्य तथा कार्य-प्रणाली, (२) फ़ारस की सभ्यता जिसने अरबी विजेताओं के विचार तथा दृष्टि को अधिक विस्तृत तथा उदार बनाया, तथा शासन-प्रबन्ध के कार्यक्षेत्र एवं पद्धति को बहुत विस्तृत किया। प्रजा की केवल रक्षा करना और उनसे कर उगाहना ही नहीं, बल्कि उसकी उन्नति के उपाय करने और राजा को प्रजा का सेवक मानने का आदर्श अरबवालों ने फ़ारस से ग्रहण किया। (३) तीसरा प्रभाव तुर्क जाति के चरित्र एवं रीति-रवाज का था। तुर्क जाति की युयुत्सु प्रवृत्तियों को अपने नये धर्म के उद्देश्यों से बड़ी उत्तेजना मिली। उनकी वीरता, युद्ध-कौशल तथा अन्य सामरिक गुणों के सम्मिश्रण से मुस्लिम साम्राज्य तथा राजनीति ने एक नया ही रूप धारण कर लिया। भारतीय मुस्लिम शासन-पद्धति एक ऐसी मिश्रित संस्था थी जिसमें अरबी-फ़ारसी पद्धति को अति प्राचीन तथा पूर्णतया स्थापित भारतीय संस्था के बीच में काम करना पड़ा और इसी कारण वह भारतीय संस्था से अत्यन्त प्रभावित हुई। इसका संचालन प्रायः तुर्कों के हाथ में था। इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि भारत में आकर मुस्लिम शासन पद्धति एवं राजनीतिक सिद्धान्तों में बड़े भारी परिवर्त्तन हो गये। उदाहरण के लिये, सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन उत्तराधिकार के सिद्धान्त में हुआ। इस्लाम धर्म के अनुसार ख़लीफ़ा अथवा बादशाह का पद निर्वाचनाधीन है, परन्तु तुर्क बादशाह इसकी अवहेलना करके राजगद्दी को वंशानुक्रमिक बनाने का यत्न करते रहे। इसी प्रकार राजकीय करों और विधर्मियों के साथ सहिष्णुता की नीति इत्यादि अनेक बातों में बड़े परिवर्तन हो गये॥।

अब हमें संक्षेप में यह देखना है कि मुस्लिम शासन पद्धति का वास्तविक स्वरूप भारतवर्ष में कैसा था।

केन्द्रित सरकार—पठान राज्य का सर्वोच्च सांसारिक अधिकारी सम्राट् था। सिद्धान्त रूप से वह राजनीति तथा धर्म दोनों क्षेत्रों का मुख्य अधिपति था। उसकी शक्ति तथा अधिकार किसी सांसारिक शक्ति के अधीन नहीं थे। केवल उन ईश्वरीय नियमों से, जो धर्म्म-ग्रन्थों में वर्णित थे, उसकी शक्ति तथा अधिकार परिमित होते थे। इनके भीतर वह सर्वेसर्वा था। धार्मिक नियमों के अनुसार वह अपने कृत्यों के

---

* आदर्श और वास्तविक स्थिति में इस प्रकार के भेद देख कर एक लेखक ने कहा है—
'The laws of the Faith never sufficed to curb the ambitions of kings.'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिये मुसलमान जन-साधारण के प्रति उत्तरदायी भी था, परन्तु वास्तव में कोई बादशाह इस नियम की परवाह नहीं करता था। उसके कार्यों पर कोई वैध रुकावट नहीं थी; पर हाँ, लोकमत और विद्रोह के भय का अवश्य कुछ अंकुश था।

पठान राज्य में आज-कल के समान कोई वैध सभा या समिति नहीं होती थी, परन्तु सम्राट् अपनी सहायता के लिये एक मन्त्री परिषद् (मजलिस-ए-आम) अथवा मण्डल अवश्य नियुक्त करता था। मन्त्री मण्डल हर प्रकार से सम्राट् के अधीन होता था। वही उसका कर्ता, धर्ता और हर्ता था। मन्त्रियों की कोई निश्चित संख्या नहीं थी। मन्त्री मण्डल को केवल परामर्श देने अथवा बादशाह की आज्ञा पालन करने तथा उसकी नीति का अनुसरण करने के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार नहीं था। मन्त्री मण्डल का एक प्रमुख या प्रधान अवश्य होता था जो सम्राट् की अनुपस्थिति में सभापति होता था तथा अन्य समस्त शासन का संचालन करता था। वह पठान साम्राज्य में वज़ीर-ए-ममालिक कहलाता था। मुख्य मन्त्री तथा मन्त्री मण्डल के वास्तविक अधिकार, शक्ति तथा प्रभाव उनके और बादशाह के परस्पर सम्बन्ध तथा आपेक्षिक योग्यता और व्यक्तित्व पर निर्भर थे। ग़यास और मुहम्मद तुग़लक़ तथा बलबन के मन्त्री कभी अधिक प्राबल्य अथवा महत्व प्राप्त नहीं कर सकते थे, परन्तु उनके निर्बल वंशजों के मन्त्रीगण बड़े प्रभावशाली, और कभी कभी सर्वेसर्वा हो जाते थे। तथापि क्रियात्मक रूप से सम्राटों को अपने मन्त्रियों का बड़ा सम्मान करना पड़ता था। वे उनकी अवहेलना नहीं कर सकते थे। उनके परामर्श का वे बड़ा आदर करते थे। उनके सत्परामर्श ही के कारण अलाउद्दीन ख़िल्जी जैसे सुलतानों को कई बातों में सफलता हुई और कई दुर्घटनाओं से उनकी रक्षा हुई। जब उसने अपनी शक्ति के मद में मन्त्रियों की अवहेलना करना शुरू कर दिया, तबसे उसका पतन शुरू हो गया। बलबन, गयासुद्दीन तुग़लक़ आदि शक्तिशाली सम्राट् भी अपने मन्त्रियों के परामर्श का बड़ा आदर करते थे।

वज़ीर-ए-ममालिक—राज्य में सम्राट् के बाद वज़ीर-ए-ममालिक का स्थान सर्वोपरि था। वज़ीर प्रायः बहुत शक्तिशाली होता था। वह राज्य के समस्त बिभागों का निरीक्षण करता था, परन्तु उसका प्रभाव तथा शक्ति भी सम्राट् के भाव पर आश्रित होती थी। राजकीय कोष, आय-व्यय, टकसाल तथा सार्वजनिक वास्तु आदि विभागों का प्रबन्ध प्रायः वज़ीर-ए-ममालिक के सपुर्द होता था।

अन्य मन्त्री—अन्य मन्त्रियों का वर्ग इसके नीचे होता था। उनको किसी विभाग विशेष के स्वतन्त्र संचालन का अधिकार नहीं दिया जाता था। वज़ीर की आज्ञा और परामर्श के बिना वे कोई कार्य नहीं कर सकते थे। इन मन्त्रियों में से मुख्य के नाम ये हैं—

(१) **दीवान-ए-रिसालत**—बाह्य अथवा अन्तर्जातीय सम्बन्ध विभाग का मन्त्री।

(२) **दीवान-ए-अर्ज़**—प्रार्थनापत्र आदि का निरीक्षण करनेवाला मन्त्री।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) दीवान-ए-इन्शा—राजकीय पत्र-व्यवहार इत्यादि करनेवाला मन्त्री ।

(४) दीवान-ए-वज़ारत—राजकीय आय तथा कर वसूल करनेवाले विभाग का मन्त्री ।

(५) मुगलों के समान राज प्रासाद तथा अन्तःपुर का भी एक पृथक् विभाग होता था, परन्तु इसके संचालक का नाम अप्राप्य है । इस विभाग के अन्तर्गत कई छोटे विभाग या शाखाएँ होती थीं । जैसे पाकशाला, जिसका अधिकारी चाश्नीगीर कहलाता था; इत्यादि । इसीमें शयनागार, हाथी-घोड़ों के अस्तबल, अस्त्र-शस्त्र और वस्त्र विभाग भी सम्मिलित थे ।

अस्त्र-शस्त्र, पोशाक, वर्दी इत्यादि बनाने के लिये बड़े बड़े शाही कारखाने होते थे । इनके संचालन तथा प्रबन्ध के लिये अलग कर्मचारी होते थे । कारखानों का हिसाब रखने के लिये कोष विभाग में एक पृथक् विभाग रहता था ।

सेना विभाग—मुस्लिम धर्म के अनुसार राजा ही सेनाध्यक्ष भी होता है । पठान सुल्तान प्रायः स्वयं ही अपनी सेना का नेतृत्व करते थे । अपनी सहायता के लिये वे अन्य सैनिकों को भी ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त करते थे, परन्तु पठान राज्य में समस्त सेना का कोई स्थायी सेनापति नहीं होता था । प्रत्येक सूबेदार के पास सैनिक होना भी आवश्यक था । सामान्य शासन विभाग (Civil) और सैनिक विभाग (Military) में कोई भेद नहीं था । उत्तर-पश्चिमी सूबों के अध्यक्ष बड़े बड़े सैनिक और योद्धा ही बनाये जाते थे ।

सम्राट् की स्थायी सेना प्रायः कम होती थी । अलाउद्दीन खल्जी और मुहम्मद तुग़लक ने बड़ी बड़ी स्थायी सेनाएँ तैयार की थीं, परन्तु उनके बाद फिर पूर्ववत् दशा हो गई । स्थायी सेना के अतिरिक्त सूबेदारों और जागीरदारों को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार सेना भेजनी पड़ती थी । इस प्रकार युद्ध के समय सेना की संख्या काफ़ी बड़ी हो जाती थी ।

सेना के दो मुख्य विभाग होते थे । अश्वारोही (घुड़सवार) और पदाति (पैदल)। हाथियों से मुख्यतया बार-बरदारी का काम लिया जाता था । क़िलों पर हमला करने और उनके दरवाजों इत्यादि को तोड़ने में भी हाथी काम करते थे । सड़कें उन दिनों काफी अच्छी नहीं होती थीं और नदियों पर पुल बहुत कम स्थानों पर थे । इस कारण बरसात में स्थल मार्गों से सेना का आवागमन बहुत कठिन हो जाता था । इन दिनों में दूरवाले प्रान्तों पर चढ़ाई करने के लिये जल-मार्गों (नदियों) के द्वारा नावों में सेना पहुँचाई जाती थी ।

सेना के लिये अस्त्र-शस्त्र तथा भोजन का प्रबन्ध करने के लिये कोई विभाग उन दिनों नहीं होता था । अस्त्र-शस्त्र, घोड़े तथा वस्त्रादि सबको अपने अपने लाने पड़ते थे । हर एक सूबेदार या जागीरदार अपनी अपनी सेना को सब सामान देने का जिम्मेवार होता था । खाने-पीने का सामान प्रायः आक्रान्त देशों की लूट से इकट्ठा किया जाता था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेना की एक समान शिक्षा, एक समान वस्त्र अथवा अन्य बातों के लिये कोई नियम नहीं था। ये सब बातें सेनापतियों की बुद्धि या इच्छा पर छोड़ दी जाती थीं। माँग आने पर सूबेदार तुरन्त बिना सिखाये हुए आदमियों को भरती करके सेना तैयार कर लेते थे। इसलिये बहुत से सिपाही और उनके घोड़े बिलकुल अयोग्य और युद्ध-कौशल से अनभिज्ञ होते थे। इस प्रकार सेना की सफलता या विफलता प्रायः उसके नेता की योग्यता तथा युद्ध-कौशल पर निर्भर होती थी।

न्याय विभाग—न्याय विभाग का प्रमुख भी सम्राट् ही होता था। राष्ट्र में वही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। उसके नीचे सदर क़ाज़ी होता था। सदर क़ाज़ी सारी सलतनत के न्याय विभाग का निरीक्षण करता था। जो अभियोग सीधे उसके पास आते थे, उनका वह न्याय करता था और अपीलें भी सुनता था। प्रत्येक सूबे के केन्द्रीय स्थान में सूबे का एक क़ाज़ी होता था। देहली, बदायूँ, ग्वालियर, अवध, मालवा, गुजरात, कड़ा, दक्खिन, बंगाल इत्यादि के लिये पृथक् पृथक् काजी नियुक्त किये जाते थे। सेना के लिये एक अलग क़ाजी होता था।

इन कर्मचारियों के ठीक-ठीक कर्त्तव्य और अधिकार क्या थे, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। न यही ठीक-ठीक कहा जा सकता है कि किस प्रकार के मुकदमे किस न्यायालय में जाते थे। न्याय करने की भी कोई निश्चित पद्धति नहीं थी। कागजी काम बहुत कम होता था। न्याय होने में बहुत देर न लगती थी। फैसले मौखिक ही सुना दिये जाते थे और शायद उनका पालन भी तुरन्त ही करा दिया जाता था। कचहरियाँ रिश्वत आदि के दोषों से खाली नहीं हो सकती थीं, परन्तु जल्दी फैसले होने का एक बड़ा लाभ था। लोगों को वैसे असीम कष्ट नहीं उठाने पड़ते थे जैसे आज-कल की न्याय पद्धति के कारण, जिसमें समय की कोई हद ही नहीं है। आज-कल छोटे छोटे मामलों के तै होने में भी बरसों लग जाते हैं। बेचारे अभियुक्त दुखी हो जाते हैं और उनका व्यय भी बहुत हो जाता है। आजकल के न्याय विभाग के अत्यन्त सुस्ती से कार्य करने से जो अनेक बुराइयाँ निकलती हैं और प्रजा को जो कष्ट होते हैं, उनको आधुनिक लेखकों ने भी माना है।

दण्ड विधान (क़ानून) का मुख्य स्रोत धर्म पुस्तकें ही थीं। इनके अतिरिक्त स्थानीय रीति-रवाज, प्रचलित सामाजिक नियमों और पद्धतियों इत्यादि का भी आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग किया जाता था। यदि दोनों पक्ष हिन्दू होते थे तो हिन्दू स्मृतियों के अनुसार फैसले किये जाते थे। परन्तु फौजदारी मामलों में हिन्दू मुसलमान सबका क़ुरान के विधान के अनुसार ही न्याय किया जाता था। परन्तु गाँवों के अधिकांश झगड़े ग्राम-पंचायतों द्वारा तै कर दिये जाते थे।

आय व्यय—आय का मुख्य स्रोत भूमि-कर (मालगुजारी) था। हिन्दू काल में राजा लोग पैदावार का प्रायः $\frac{१}{६}$ भाग भूमि-कर के रूप में लेते थे। कभी कभी वह उससे भी कम होता था, परन्तु अधिक कभी नहीं होता था। पठान सम्राटों ने सामान्यतया $\frac{१}{५}$ कर लेना आरम्भ किया, परन्तु कइयों ने उसे $\frac{१}{२}$ (५० फी सदी) तक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बढ़ा दिया था। इसके अतिरिक्त और भी कई कर लिये जाते थे। (१) जज़िया जो हिन्दुओं से उनके मुसलमान धर्म अङ्गीकार न करने पर दण्ड-स्वरूप लिया जाता था। (२) खम्स, अर्थात् लड़ाई की लूट का ⅕ भाग। (३) जकात जो सम्पन्न मुसलमानों से दरिद्र मुसलमानों के पालनार्थ ली जाती थी। (४) व्यापार पर कर। (५) खिराज अर्थात् हिन्दू जागीरदारों से और (६) उश्र, मुस्लिम जागीरदारों से लिया जानेवाला कर।

प्रान्तीय शासन—साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था जिसका दरबार शाही दरबार का एक प्रतिरूप ही होता था। प्रान्तीय अधिकारी वर्ग के शासन कार्य के समुचित निरीक्षण का कोई प्रबन्ध नहीं था। दूरस्थ प्रान्तों के सूबेदार तो प्रायः स्वतन्त्र राजाओं के समान ही व्यवहार करते थे। जब कोई सम्राट् अत्यन्त शक्तिशाली होता था, तब उसके भय से वे लोग कर तथा भेंट भेजते रहते थे। इसके सिवा सूबेदार लोग पूर्णतया स्वतन्त्र शासकों के समान होते थे। सूबेदारों के साथ साथ जागीरदार भी होते थे। जागीरें वंश-परम्परा के अनुसार एक ही वंश में बनी रहती थीं। सूबेदार तथा जागीरदार दोनों का मुख्य कर्त्तव्य यह था कि आवश्यकता पड़ने पर सुलतान की सहायता के लिये सेना भेजें और स्वयं भी लड़ने को तैयार रहें।

नगरों के शासन का राज्य की ओर से प्रायः कम प्रबन्ध होता था। बड़े बड़े शहरों में एक कोतवाल (City-Magistrate) होता था जिसके बड़े विस्तृत अधिकार होते थे। कोतवाल नगर की रक्षा, सफ़ाई, बाज़ारों में क्रय विक्रय की देख-रेख तथा आवश्यक शासन करता था। वह छोटे छोटे झगड़ों का फ़ैसला भी करता और अपराधियों को दण्ड भी दे सकता था। छोटे क़स्बों और गाँवों में यह सब काम ग्राम पंचायतें करती थीं। भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक संघटन की इस प्राचीन तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्था को मुसलमान शासकों ने नष्ट नहीं किया था।

सार्वजनिक वास्तु (Public Works)—पठान सम्राट् प्रायः मस्जिदें, क़बरें तथा किले और बावड़ियाँ बनवाते थे। सड़कों पर मुसाफिरों के लिये सराएँ और कुएँ बनवाते, और उनके दोनों ओर फलदार वृक्ष भी लगवाते थे। इस क्षेत्र में सबसे अधिक प्रशंसनीय कार्य गयासउद्दीन और फ़ीरोज तुग़लक ने किया था। फ़ीरोज़ को वास्तु-निर्माण का बड़ा शौक़ था। उसने फ़ीरोज़ाबाद, हिसार फीरोज़ा, जौनपुर आदि कई शहर बनवाये थे। ग़यासउद्दीन तुग़लक ने डाक का अच्छा प्रबन्ध किया था और स्थान स्थान पर डाक चौकियाँ बनवाई थीं।

शिक्षा—उस समय कोई स्वतन्त्र शिक्षा विभाग नहीं था। सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध प्रजा अपने लिये स्वयं करती थी। हिन्दू पण्डित पाठशालाएँ चलाते थे जिनका निर्वाह दान के द्वारा होता था। मुसलमानों के मदरसे और मकतब मस्जिदों में होते थे। इनमें मुख्यतया कुरान की शिक्षा दी जाती थी। इनकी सहायता के लिये बादशाह लोग भूमि दान दे देते थे जिसकी आमदनी से उनका व्यय चलता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बड़े बड़े शहरों जैसे देहली, बदाऊँ आदि में, उच्च शिक्षा के लिये महाविद्यालय और चिकित्सा के लिए शफ़ाख़ाने भी बनवाये जाते थे।

सिंहावलोकन—उपर्युक्त वर्णन से विदित हो गया होगा कि पठान साम्राज्य की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। राजा की शक्ति को परिमित रखने का भी कोई उपाय नहीं था। प्रान्तीय शासन को सुसंहित रखने के लिये कोई उपाय राजा के हाथ में नहीं था। सड़कों आदि के ख़राब होने के कारण दूरस्थ प्रान्त तो प्रायः स्वतन्त्र ही रहते थे। पठान शासन का विशेष प्रभाव शहरों पर ही देखने में आता था। वे देहातों में अपना कर बसूल करने के सिवा और कुछ न करते थे। शासन का आधार जनता की श्रद्धा और प्रेम पर नहीं बरन् केवल सैनिक बल पर था। पठान सुलतान तथा उनके साथी मुसलमान अपने को विदेशीय मानते थे और हिन्दुस्तानियों को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने यह कभी न समझा कि राज्य का आधार राष्ट्रीय अथवा जातीय एकता होनी चाहिए। इस सिद्धान्त को न समझ पाने के कारण ही पठान सल्तनत की बुनियाद कभी दृढ़ न हो सकी। उसकी निर्बलता का एक और भी कारण था। उनमें उत्तराधिकार का कोई सर्वमान्य नियम नहीं था। कुरान के निर्वाचन के सिद्धान्त का भी पालन करने के लिये कोई तैयार नहीं था। फलतः परस्पर मारकाट और झगड़े होते रहते थे। इससे राज्य की बहुत हानि होती थी।

छठा अध्याय

पठान साम्राज्य का विच्छेद : स्वतन्त्र रियासतों की स्थापना

मुहम्मद तुग़लक़ के राज्य-काल के उत्तरार्ध में विशाल पठान साम्राज्य के टुकड़े होने शुरू हो गये। ५०-६० बरस के अन्दर दिल्लीश्वर का राज्य राजधानी के इर्द गिर्द १०-२० मील से अधिक न रहा। इसके मौलिक कारणों पर हम यथास्थान विचार कर चुके हैं। तथापि यहाँ उनका सारांश दे देना अनुचित न होगा।

पठान साम्राज्य के ह्रास और नाश के कारण उसकी अन्तरात्मा में ही निहित थे। जिस राज्य का मूल आधार प्रजा की अनुमति और सहयोग पर आश्रित न हो, वह स्थायी नहीं रह सकता। एक अंग्रेज़ विद्वान् ने कहा है कि हम भाले की नोक से और सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु उस पर बैठ नहीं सकते। सैन्य बल से किसी देश या जाति को जीता तो जा सकता है, परन्तु जीत लेना एक बात है, और उस पर एक स्थायी सुदृढ़ राज्य की स्थापना करना दूसरी बात है। दिल्ली के पठान सुलतानों ने सुव्यवस्थित और सुदृढ़ राज्य का यह मौलिक सिद्धान्त समझा ही नहीं कि जिस देश या जाति पर राज्य करना हो, राजा को उसी का एक अंग हो कर रहना और बरतना चाहिए। वे सदैव इसके विपरीत चले रहे। उन्होंने भारतीय प्रजा के आदर्शों और आकांक्षाओं से सहयोग और सहानुभूति कभी न की, प्रत्युत् उसके प्रति विद्वेष का भाव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही रखते रहे। भारतीय जनता को वे विदेशी भी जान पड़ते थे और विधर्मी भी। उनकी आँख सदा खैबर के उस पार लगी रहती थी। हिन्दुस्तानियों से वे विदेशियों की भाँति अलग ही रहना चाहते थे और उनके धर्म पर प्रहार करने का कोई अवसर हाथ से न जाने देते थे। इस नीति को छोड़ कर कम से कम अपने राज्य की सीमा के अन्दर ग़यासउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ ने एक उदार नीति का श्रीगणेश किया था, परन्तु दैव उनके प्रतिकूल था। ग़यास को कार्य करने का बहुत थोड़ा अवकाश मिला। मुहम्मद तुग़लक़ के शुभ संकल्पों को कुछ तो दैव के प्रकोप ने और कुछ उसके उतावलेपन ने नष्ट कर डाला। दिल्ली के सुलतानों में इन दो को छोड़ कर और कोई शासक ऐसा न हुआ जिसने अपने विदेशी दृष्टिकोण या संकीर्ण धर्मान्धता को छोड़ा हो। मुहम्मद तुग़लक़ के काल में साम्राज्य चरम सीमा को प्राप्त हुआ। पंजाब से रास कुमारी तक और बंगाल से सिंध तक दिल्लीश्वर का ही दौर-दौरा था। इतने विस्तृत साम्राज्य को सँभालने, तथा सुव्यवस्थित रूप से उसका शासन करने के लिये आवश्यक है कि ऐसे विश्वसनीय मन्त्रियों, प्रान्धाधिकारियों और सैनिकों का एक मण्डल हो जिन्हें केवल शासन नीति के मौलिक सिद्धान्तों से बद्ध करके अपना कार्य करने के लिये पूरी स्वतन्त्रता से छोड़ दिया जाय और उन्हें अवसर दिया जाय कि वे अपने शासन को आदर्श और जनता को सुखी बना कर दिखलावें। इस विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) की नीति का पालन एक इतने बड़े साम्राज्य के शासन की सफलता के लिये अत्यावश्यक था। परन्तु मुहम्मद की नीति इसके बिलकुल विपरीत थी। साम्राज्य जितना विस्तृत होता जाता था, उतना ही उसके केन्द्रीकरण की नीति बढ़ती जाती थी। उसके झक्कीपन और क्रोधी स्वभाव के कारण कोई बड़े से बड़ा राज-कर्मचारी भी निःशंक नहीं रह सकता था। न वह किसी पर पूरा विश्वास ही करता था। स्वाभाविक ही था कि प्रजा उसके रौद्र रूप को ही देख पाती। उसके शुभ प्रस्ताव उनकी समझ के भी परे थे और उसके नृशंस कामों की काली चादर के नीचे ढँक जाते थे। उसके अनुगामियों ने अपने धर्म के अनुसार प्रजा-हित के चाहे जितने कार्य किये हों, परन्तु वे उन सिद्धान्तों को न समझते थे जिनके आधार पर एक स्थायी राजनीतिक भवन का निर्माण हो सकता था।

अब हम उन मुख्य-मुख्य राज्यों का संक्षिप्त वर्णन नीचे देते हैं जो इस साम्राज्य के नष्ट होने से प्रादुर्भूत हुए—

(१) उत्तर भारत में जौनपुर और बंगाल।

(२) मध्य भारत में मालवा गुजरात, सिन्ध और खानदेश, और

(३) दक्षिण में बाहमनी राज्य और विजयनगर साम्राज्य।

जौनपुर—आधुनिक जौनपुर की नींव सन् १३६० में बंगाल से लौटते समय सुलतान फ़ीरोज़ ने डाली थी। सन् १३७६ में जौनपुर और जफ़राबाद का एक बहुत बहुत बड़ा सूबा बनाया गया और मलिक बहरोज़ सुलतान को उसका शासक बनाया गया। बहरोज़ ने बहुत ही जल्दी विद्रोह को दमन करके शान्ति स्थापित की और सूबे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुलतान महमूद तुग़लक़ ने उस को संघटित किया। सन् १३९४ में मलिक सरवर को सुलतान महमूद तुग़लक़ ने उस प्रान्त का शासक बनाया और मलिक-उश्शर्क की उपाधि से अलंकृत किया। उसने केवल अवध पर ही अपना अधिकार नहीं जमाया, बल्कि पूरब में बिहार और तिरहुत तक और पश्चिम में कोइल तक का प्रदेश भी अधिकृत किया तथा लखनौती और जाजनगर से कर वसूल किया। तैमूर के आक्रमण से फ़ायदा उठा कर उसने अपने को स्वतन्त्र बना लिया और अताबक-ए-आज़म की उपाधि धारण की। जौनपुर को उसने अपनी राजधानी बनाया। सन् १३९९ में उसके बाद उसका दत्तक पुत्र करन-फाल, (करनफूल) मुबारक शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने अपना सिक्का भी चलाया। तैमूर के लौट जाने के बाद सुलतान महमूद के वज़ीर मल्लू इक़बाल ने जौनपुर पर चढ़ाई की, परन्तु सुलह करके लौट आया। सन् १४०२ में मुबारक की मृत्यु हो गई और उसका भाई इब्राहीम शाह गद्दी पर बैठा। उसने अपना नाम शम्सु-द्दीन इब्राहीम शाह शर्क़ी रखा। इब्राहीम बड़ा चतुर तथा गुणवान था। सुलतान महमूद तुग़लक़ ने मल्लू इक़बाल के विरुद्ध उससे सहायता माँगी थी, परन्तु उसने इनकार कर दिया। सन् १४०७ में इब्राहीम ने देहली पर चढ़ाई की, परन्तु गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र शाह के चढ़ आने के कारण उसे लौटना पड़ा। फिर मालवा के सुलतान होशंग शाह के साथ मिलकर उसने काल्पी पर चढ़ाई की, पर वहाँ से भी बिना कुछ लिये लौट आया।

सन् १४१४ से खिज्र खाँ सैयद के सुलतान हो जाने के बाद देहली की तरफ़ से कोई आशंका न रही और उसने बड़ी शान्ति से राज्य किया। उसने शासन को व्यव-स्थित किया। मुसलमान लेखक लिखते हैं कि वह उदार बादशाह था, परन्तु धर्म का पक्षपात उसमें भी कम न था। हिन्दुओं के सैकड़ों मन्दिरों को तोड़ कर उनकी सामग्री से उसने अतालादेवी मस्जिद बनवाई। इस स्थान पर पहले अताला देवी का मन्दिर था। तथापि वह बड़ा गुणग्राही और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में बड़े बड़े विद्वान् तथा कलावन्त रहते थे। उसने जौनपुर को एक बड़ा प्रसिद्ध विद्यापीठ बना दिया था। देहली निवासी क़ाज़ी शहाब उद्दीन ने, जो अपने समय का सबसे प्रसिद्ध विद्वान् था, उसी के दरबार में जा कर शरण ली थी। उसने शरह-ए-हिन्दी और ईसार-उल-नह इत्यादि कई ग्रन्थ रचे थे।

इब्राहीम सन् १४३६ में मर गया और उसका लड़का महमूद शाह सुलतान हुआ। महमूद ने कई बार दिल्ली पर चढ़ाई की, परन्तु बहलोल लोदी ने उसे पीछे हटा दिया। वह भी बड़ा योग्य था। कला और साहित्य को उसने भी पर्याप्त प्रोत्साहित किया। महमूद शाह की मृत्यु सन् १४५७ में हुई। उसका लड़का मुहम्मद बड़ा क्रूर हुआ। उसने अपने एक भाई को बड़े धोखे से मरवा डाला और बाक़ी भाइयों को भी मरवाने की चेष्टा करने लगा, परन्तु उनको खबर हो गई। सब अमीर उससे अलग हो गये और वह बच कर भागना चाहता था कि उसके भाइयों ने उसे मरवा डाला। फिर उसका उसका भाई हुसैन बादशाह हुआ। यह जौनपुर के स्वतन्त्र बादशाहों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
अन्तिम हुआ। देहली पर चढ़ाई करने पर बहलोल लोदी ने उसको पराजित किया और सन् १४७६ में अपने लड़के बारबक को जौनपुर का शासन सपुर्द कर दिया। हुसैन भाग कर बंगाल चला गया और फिर कभी उसने जौनपुर को वापस लेने की चेष्टा न की।

जौनपुरकी कला और साहित्य—जौनपुर की बादशाहत केवल ८० वर्ष के क़रीब रही, परन्तु इस अवकाश में वहाँ पर कला और साहित्य की काफ़ी उन्नति हुई। इब्राहीम के काल में जौनपुर शीराज़-ए-हिन्द कहलाने लगा था। हुसैन संगीत का बड़ा प्रेमी था, परन्तु उसका सबसे अधिक स्थायी कार्य वास्तु-कला के क्षेत्र में हुआ। शर्क़ी बादशाहों ने कई बड़ी बड़ी मस्जिदें तथा महल बनवाये। उनके महलों को तो लोदियों ने नष्ट कर दिया, परन्तु मस्जिदें अब तक बाक़ी हैं। इन मस्ज़िदों की रचना शैली बिलकुल निराली है। इनमें मीनारों के बजाय बीच के दरवाज़े के सामने दो बड़े भारी सूच्यग्र (Pylon) बनाये गये हैं और उनको स्तम्भ रूप मान कर उनके बीच में एक बड़ी ऊँची मेहराब दी गई है। इस प्रकार की रचना और कहीं नहीं पाई जाती। पाइलनों के अत्यन्त भारी और सूच्याकार होने से ग़यासउद्दीन तुग़लक़ के मक़बरे का आभास उनमें जान पड़ता है और वे मिस्र के पिरेमिडों की याद दिलाते हैं। इन पाइलनो की कई मंज़िलें हैं और उनके अन्दर जीना भी है। ये मस्जिदें बहुत सुंदर खुदाई के काम से सुसज्जित हैं। इनके बनानेवाले प्रायः हिन्दू कारीगर थे।

बंगाल—इख़्तियार उद्दीन की विजय के बाद बंगाल में उसके वंशज राज्य करते रहे। यह सूबा प्रायः स्वतन्त्र ही रहता था। बलवन ने १३ वीं सदी के अन्तिम भाग में इसे जीत कर अपने लड़के बुग़रा को उसका शासक बनाया। तबसे बलबनी वंश के बादशाह उस पर राज्य करते रहे। इसके बाद बंगाल के तीन विभाग हो गये थे। लक्ष्मणावती (लखनौती), सुवर्णग्राम (सुनारगाँव) और सप्तग्राम (सातगाँव या चटगाँव)। तुग़लक़ शाह ने बंगाल पर फिर अधिकार दृढ़ कर लिया था, परन्तु मुहम्मद तुग़लक़ के काल में वह फिर स्वतन्त्र हो गया। सन् १३५६ में फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने इलियास शाह को समस्त बंगाल का स्वतन्त्र शासक मान लिया। मुसलमान लेखकों के कथन से मालूम होता है कि इलियास बड़ा अच्छा शासक था। उसके राज्य में प्रजा सुखी थी और देश धन-धान्य से भरपूर था। इलियास के बेटे सिकन्दर ने सन् १३५८-८९ तक राज्य किया। उसका शासन भी अच्छा रहा। वह बहुत कलाप्रेमी था। उसने पाण्डुआ में अदीना मस्जिद बनवाई जो बंगाल के मुस्लिम वास्तु में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सैयद और लोदी वंश के काल में बंगाल के बादशाहों की शक्ति और भी बढ़ गई। इसके बाद हुसैन शाह (१४९३-१५१८) बड़ा प्रतापी हुआ। जौनपुर का अन्तिम राजा हुसैन उसी की शरण में जाकर रहा था। हुसैन का शासन भी बहुत उन्नतिशील तथा शान्तिमय रहा। नुसरत शाह (१५१८-३२) ने तिरहुत को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। जब बाबर ने बंगाल पर चढ़ाई की, तब उसने संधि कर ली। बाबर की मृत्यु के बाद लोदी अफ़ग़ानों ने बिहार और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बंगाल में फिर ज़ोर पकड़ा और अपना प्रभुत्व स्थापित किया। फिर शेरशाह ने बंगाल को अधिकृत किया। उसके बाद बंगाल में कराशनी वंश स्थापित हुआ। सन् १५७६ में सम्राट् अकबर ने इस वंश के अन्तिम बादशाह दाऊद को निकाल कर बंगाल को साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

बंगाल में कई शासक बड़े कला-प्रेमी तथा विद्याव्यसनी हुए। उन्होंने गौड़ में बहुत सी इमारतें बनवाईं जो अब तक विद्यमान हैं। बंगाल की इमारतें ईंटों की बनी हुई हैं, कारण कि वहाँ पत्थर मिलता न था। अदीना मस्जिद के अतिरिक्त गौड़ में और भी कई इमारतें बनवाई गईं जो अत्यन्त सुन्दर हैं। ये इमारतें भी अधिकांश हिन्दू मन्दिरों के मसालों से बनवाई गईं थीं।

मालवा—सबसे पहले अल्तमश ने मालवे पर हमला किया था। परन्तु सन् १३१० में उसे खल्जी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। सन् १४०१ में सुलतान फीरोज का जागीरदार दिलावर खाँ गूरी, जो मुहम्मद गूरी का वंशज था, स्वतन्त्र हो गया। उसने धार को राजधानी बनाया। उसके लड़के अल्प खाँ ने दिलावर को सन् १४०६ में विष दे दिया और स्वयं होशंग शाह की उपाधि धारण करके सुलतान हुआ। होशंग ने माण्डू को राजधानी बनाया और वहाँ बहुत से महल बनवाए। मालवे की राजनीतिक स्थिति बहुत संकटमय थी। वहाँ भूमि बहुत उर्वरा और हरी-भरी थी। वह चारों ओर बड़े-बड़े राज्यों से घिरा हुआ था। पच्छिम में गुजरात, उत्तर में चित्तौड़ का सीसोदिया राज्य और दक्षिण में बहमनी राज्य था, और इन सबसे मालवे के सुलतानों की लड़ाई होती रहती थी। सन् १४०७ में गुजरात के राजा मुजफ्फर खाँ ने उस पर हमला किया और उसे पकड़ ले गया। उसके स्थान पर वह अपने भाई नसरत खाँ को मालवे का शासक बनाता गया। नसरत के अत्याचारों के कारण सेना ने उसे निकाल दिया और होशंग के भाई को राजा चुन लिया। तब मुज़फ्फर ने अपने मान की रक्षा के लिये अपने पौत्र अहमद खाँ को भेज कर माण्डू में बहाल करा दिया।

सन् १४३५ में होशंग की मृत्यु हुई। उसका लड़का ग़ज़नी खाँ अत्यन्त विलासी और अधम था। उसके वजीर महमूद खाँ खल्जी ने उसे कत्ल करके राज्य छीन लिया और सन् १४३६ से १४६९ तक राज्य किया। फरिश्ता ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। उसके शासन काल में मालवे की बड़ी उन्नति हुई। उसकी शक्ति बढ़ी और जनता सुखी हुई। महमूद खल्जी बड़ा गुणवान था। वह एक चतुर शासक, शूर वीर सैनिक, विजेता, न्यायप्रिय और उदारचरित मनुष्य था। वह बड़ा विद्वान् भी था। उसने गुजरात, बहमनी राज्य तथा राजपूतों से कई लड़ाइयाँ लड़ीं। उसने अपने राज्य को बहुत विस्तृत किया। दक्षिण में सत्पुड़ा तक, पच्छिम में गुजरात की सीमा तक, पूरब में बुन्देलखण्ड तक और उत्तर में मेवाड़ तक अपना राज्य बढ़ाया। सीसोदिया वंश की प्रधानता का प्रवर्तक राणा कुम्भकरण (कुम्भा) उसका सम-कालीन था। दोनों में कई बार बड़े युद्ध हुए। एक बार दोनों ने अपने अपने को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विजेता मान लिया और राणा कुम्भा ने चितौड़गढ़ में और महमूद ने माण्डू में अपना विजय स्तम्भ बनवाया। माण्डू का स्तम्भ तो कभी का नष्ट हो गया, परन्तु राणा कुम्भा का विजय-स्तम्भ आज तक चित्तौड़गढ़ में विद्यमान है और दर्शकों को अपने निर्माता की महत्ता का स्मरण दिलाता है। सन् १४४० में गुजरात के बादशाह अहमद शाह प्रथम ने गजनी खाँ के लड़के मसऊद खाँ को तख्त पर बैठाने के बहाने से मालवे पर हमला किया, परन्तु उसे पराजित होकर लौटना पड़ा। महमूद खाँ के बाद उसके लड़के गयासुद्दीन ने सन् १४६९ से १५०० तक राज्य किया। उसके लड़के नासिर ने उसे जहर दे दिया। यह बड़ा निर्दय और विचित्र प्रकृति का मनुष्य था। नमाज का बड़ा पक्का पाबन्द था, परन्तु साथ ही अत्यन्त विलासी और पतित भी था। कहते हैं कि उसके हरम में ८५००० स्त्रियाँ थीं जिनसे वह दस्तकारी कराता था। सन् १५१० में वह झील में डूब कर मर गया। उसके बाद उसी वर्ष अलाउद्दीन शाह महमूद द्वितीय गद्दी पर बैठा। वह मालवे का अन्तिम मुसलमान राजा था। उसकी निर्बलता के कारण उसके अमीर लोग अत्यन्त प्रबल और भयानक हो गये। उसने अपने पिता के हिन्दू वजीर वसन्त राय को उसके पद पर फिर से आरूढ़ कर दिया। इसको मुसलमान अमीर न सह सके। उन्होंने वसन्त राय को कत्ल कर दिया और बादशाह के खिलाफ बलवा कर दिया। तब उसने मालवे के एक छोटे से प्रान्त के शासक मेदिनीराव राजपूत को अपनी सहायता के लिये बुलाया और उसे वजीर बनाया। मेदिनी राव ने उसके शत्रुओं को तो दबाया, परन्तु स्वयं बादशाह पर हावी हो गया। तब इस निःशंक बादशाह ने गुजरात के मुजफ्फर शाह से सहायता माँगी। उसने आकर मेदिनीराव को निकाला।

महमूद द्वितीय ने एक बार राणा साँगा से लड़ाई की, परन्तु पराजित हुआ। राणा साँगा ने उसे कैद कर लिया, परन्तु पीछे से मुक्त करके वापस भेज दिया। महमूद ने चित्तौड़ पर फिर चढ़ाई कर दी, परन्तु उसे पीछे हटना पड़ा।

सन् १५३१ में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने उसपर चढ़ाई करके उसे सपरिवार कत्ल कर दिया और मालवे का राज्य गुजरात में सम्मिलित कर लिया।

परन्तु १५३५ में हुमायूँ ने बहादुर शाह को मालवे से निकाल दिया। इतने में हुमायूँ को उत्तर की ओर जाना पड़ा। उसके पीछे एक अमीर कादिर खाँ ने अन्य अमीरों को दबा कर अपना स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिया। इसका राज्य १५४२ में शेर शाह ने नष्ट किया और शुजाअत खाँ को मालवे का शासक बनाया। जब हुमायू १५५५ में फिर से देहली का बादशाह हुआ, तब शुजाअत खाँ ने उसका आधिपत्य स्वीकार न किया। उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई और उसका लड़का बायज़ीद (बाज बहादुर) उसका स्थानापन्न हुआ। उसने गोंडवाना की रानी दुर्गावती पर आक्रमण किया जिसने उसको बुरी तरह हराकर अपने देश से भगा दिया। १५६१ में अकबर की सेना ने मालवे को विजय कर लिया। बाज बहादुर और उसकी प्रेमिका रूपमती की कहानी प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालवे के मुसलमान राजाओं ने माण्डू में बड़े-बड़े महल और मसजिदें बनवाईं। इनको देखकर सम्राट् जहाँगीर बड़ा प्रभावित हुआ था और उसने इनकी मरम्मत पर कई लाख रुपये व्यय किये थे। परन्तु मालवे का वास्तु देहली की शैली की नकल ही है। उसके भग्नावशेष अब तक विद्यमान हैं।

गुजरात—गुजरात को पहले-पहल अलाउद्दीन खल्जी ने सन् १२९७ में जीतकर देहली की सल्तनत में सम्मिलित किया था। तभी से वह उसका एक प्रान्त रहा। तैमूर के हमले के बाद वहाँ का सूबेदार ज़फ़र खाँ स्वतन्त्र हो गया। उसके लड़के तातार ने उसे कैद कर दिया। इस अनुचित कार्रवाई पर अमीरों ने तातार को पकड़कर मार डाला और जफ़र खाँ को फिर गद्दी पर बैठा दिया। उसने मुजफ्फर खाँ (प्रथम) के नाम से राज्य करना शुरू किया। उसकी मालवे के राजा होशंग पर चढ़ाई इत्यादि का वर्णन हम कर चुके हैं। सन् १४११ में मुजफ्फर के पोते अहमद ने उसे विष दे दिया और स्वयं बादशाह बन गया। अहमद शाह इस वंश का पहला प्रसिद्ध बादशाह था। उसने पहले ही साल प्राचीन नगर कर्णावती के स्थान पर साबरमती नदी के बायें किनारे एक नया शहर बसाया। यही आधुनिक अहमदाबाद है। अहमद शाह बड़ा वीर और प्रतापी बादशाह था और साथ ही अपने धर्म का बड़ा पक्षपाती भी था। उसने जन्म भर हिन्दू धर्म को नष्ट करने का प्रयत्न किया, मन्दिरों को तोड़ा फोड़ा, पवित्र तीर्थस्थानों को अपवित्र किया एवं हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया। अपने राज्य का विस्तार करने के लिये वह इर्द-गिर्द के बादशाहों से बराबर लड़ता रहा। सन् १४१४ में उसने गिरिनार के राय मण्डलीक से जूनागढ़ छीना और सन् १४१५ में सिद्धपुर का मन्दिर तोड़ा। सन् १४२१ तक दो बार माण्डू पर हमले किये, परन्तु होशंग ने क्षमा माँग ली और सुलह कर ली। फिर तीन वर्ष तक वह शासन-संघटन में लगा रहा। सन् १४२४ में उसने ईडर के राव को पराजित किया और उसे मारकर उसकी जागीर उसके बेटे को दी जिसने कर देने का वादा किया। सन् १४३७ में उसने होशंग के पोते मसऊद को माण्डू की गद्दी पर बैठाने के लिये महमूद खिल्जी पर हमला किया। परन्तु सेना में बीमारी फैल जाने के कारण उसे लौटना पड़ा। सन् १४४१ में उसकी मृत्यु हो गई। शासन करने में वह बहुत न्यायप्रिय था। किसी को केवल उच्च कुलोत्पन्न होने के कारण या बिना योग्यता के पद नहीं देता था। न्याय करने में वह इतना पक्का था कि एक निरपराध मनुष्य को वध करने के कारण उसने अपने दामाद को सबके सामने फाँसी पर चढ़वा दिया। उसके बाद मुहम्मद शाह जरबख्श ने सन् १४५१ तक राज्य किया। उसने चाँपानेर के हिन्दू राजा को पराजित किया। उसके पुत्र कुतुबुद्दीन ने व्यर्थ कई बार चित्तौड़ पर चढ़ाई की। वह सन् १४५९ में मरा और राज्य में कुछ झगड़ों के बाद अहमद (प्रथम) का एक पोता महमूद शाह बीगड़ के नाम से गद्दी पर बैठा। यह इस वंश का सबसे प्रसिद्ध तथा महान् राजा था। इसने बावन बरस (१४५९–१५११) तक राज्य किया। यह बहुत ही असाधारण मनुष्य था। इसकी मूँछ ५ फुट से अधिक लम्बी थीं जिनको वह पगड़ी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
समान अपने सिर पर लपेट लेता था। दाढ़ी उसके घुटने तक आती थी। भूख इसकी इतनी थी कि २० सेर अन्न रोज खाता था। इसके अलावा वह रात को पाँच सेर पके हुए चावलों का हलवा सा बनवा कर अपने पलंग के दोनों तरफ आधा आधा रखवा लेता था, ताकि जिस तरफ आँखें खुल जायँ, उसी तरफ फौरन खाने लगे। सुबह वह एक कटोरा शहद, एक कटोरा मक्खन और १०० या १५० केलों का नाश्ता करता था।

बीगड़ के शासन-काल की घटनाएँ—सन् १४६१ में उसने महमूद खिल्जी (मालवा) के दबाव से निजाम शाह बहमनी को बचाया। सन् १४६७ में उसने सूरत (सोरठ, सौराष्ट्र) लिया और जूनागढ़ के राय को फिर से हराया। कच्छ को भी उसने अपने राज्यान्तर्गत कर लिया। समुद्रतट के राज्यों के समुद्री लुटेरों को उसने दमन किया। सन् १४८४ में उसने चाँपानेर के हिन्दू राव को मार करके उसका राज्य छीन लिया। इसी समय पुर्तगालियों का आगमन पश्चिमी किनारे पर शुरू हुआ था। उनके आने से अरबी व्यापारियों की बड़ी हानि हुई। उसने एक जलसेना तैयार की और तुर्किस्तान (टर्की) के सुलतान ने भी उससे संधि करके एक सेना भेजी; परन्तु बड़े घोर युद्ध के बाद सन् १५०६ में मुसलमानों की हार हुई और एशियाई जातियों का समुद्री व्यापार बन्द हो गया। वह सन् १५११ में मर गया। वह बड़ा न्यायशील, शूर-वीर और प्रतापी राजा था।

इसके बाद तीसरा प्रसिद्ध राजा बहादुर शाह (१५२६-३७) हुआ। इसने मालवे को अपने राज्य में मिला लिया था तथा चँदेरी, चित्तौड़ आदि पर हमले किये थे। १५३६ में उसे हुमायूँ ने गुजरात से निकाल दिया। हुमायूँ के पतन के बाद गुजरात के सरदार और अमीर आधिपत्य के लिये लड़ते रहे। सन् १५७२ में अकबर ने उसे विजय कर लिया।

खान्देश—यह छोटा सा राज्य ताप्ती नदी की घाटी में था। इसकी स्थिति भी बहुत महत्वपूर्ण थी। इसके उत्तर में विन्ध्याचल, दक्षिण में बाहमनी राज्य, पूरब में बरार और पच्छिम में गुजरात था। यह देश दो नदियों के बीच में होने के कारण बहुत हरा-भरा था। इसकी भूमि बहुत उर्वरा थी। यहाँ खनिज पदार्थ (जैसे टीन इत्यादि) भी बहुत पैदा होते थे और इसके बन्दरगाहों के द्वारा समुद्री आयात-निर्यात का व्यापार होता था। इस राज्य का प्रवर्तक मलिक अहमद था जो मलिक राजा फ़ारुकी के नाम से प्रसिद्ध है। पहले वह बहमनी राज्य में एक सरदार था। वहाँ सन् १३६५ में उसने विद्रोह किया और भाग कर ताप्ती के किनारे थालनेर में आकर बसा। यहाँ सन् १३८२ तक उसने इर्द-गिर्द के प्रदेशों को जीत कर स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। उसके लड़के नसीर ने हिन्दू सरदार आसा से धोखे से आसीरगढ़ का किला छीन लिया। वह सन् १४३७ में मर गया। नसीर के उत्तराधिकारियों ने सन् १५१० तक अपने राज्य का कोई विस्तार नहीं किया, परन्तु वे शान्ति से राज्य करते रहे। इस अवकाश में देश के व्यापार और दस्तकारी आदि की बहुत उन्नति हुई। वहाँ के सोने-चाँदी के तार (कलाबत्तू) तथा बारीक मलमल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रसिद्ध थी। परन्तु इसके बाद उसके शासक निर्बल और अयोग्य हुए। इस कारण राज्य में लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये। सन् १६०१ में अकबर ने खानदेश को विजय करके मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

सिन्ध—अरबी राज्य का अन्त हो जाने के बाद से सिन्ध पर एक राजपूत वंश राज्य करता था। १३ वीं सदी में उससे देहली के दास वंशीय सुलतानों ने सिन्ध छीन लिया था। परन्तु सन् १३३६ में एक नये जाम वंशीय राजपूतों ने अपने देश को स्वतन्त्र किया। सन् १५२० में जाम को कन्धार के शासक ने पराजित करके भगा दिया। फिर थोड़े दिन बाद उसने मुलतान को भी अधिकृत कर लिया। सन् १५९० में सिन्ध अकबर के साम्राज्य में आ गया। सिंध का छोटा सा राज्य, बीच में एक बड़े बीहड़ रेगिस्तान के आ जाने के कारण, शेष हिन्दुस्तान से इतना पृथक् सा था कि भारतीय राजनीति पर उसका कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

बहमनी राज्य—बहमनी राज्य की स्थापना का वर्णन मुहम्मद तुगलक के प्रकरण में ऊपर किया जा चुका है। इस वंश के प्रवर्त्तक हसन ने अपना नाम अबुलमुजफ्फर अलाउद्दीन हसन बाहमान शाह रक्खा। वह फारस के प्राचीन बादशाह बाहमान शाह का वंशज होने का दावा करता था *।

दक्षिण के इन राज्यों की स्थापना की परिस्थिति समझने के लिये वहाँ की तत्कालीन राजनीतिक प्रगतियों को स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। पहले तो यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि दक्षिण में दिल्ली की सल्तनत का संघटन अथवा आधिपत्य कभी दृढ़ नहीं हो सका था; और दूसरे वहाँ के हिन्दू राज्य बिलकुल नष्ट नहीं हुए थे। दक्षिण की हिन्दू जनता में इस समय एक राष्ट्रीय जाग्रति उत्पन्न हो गई थी। वे स्वाधीनता के लिये सचेष्ट हो गये थे। तीसरे दक्षिण की मुसलमान जनता में एक बड़ा भाग विदेशी अमीरों का था जो प्रायः फ़ारस के थे। ये लोग शीया थे और बड़े चतुर, सभ्य और बुद्धिमान होते थे। फलतः ये लोग स्वाधीन होने की आकांक्षा भी रखते थे और किसी प्रकार का अन्याय अथवा धार्मिक पक्षपात भी सहन न कर सकते थे। देहली के सम्राट् सुन्नी थे, इस कारण भी वे इन अमीरों को पसन्द न करते थे। मुहम्मद तुगलक की नीति ने इनको स्वाधीन होने का जल्दी ही अवसर दे दिया।

दक्षिण की राजनीति में कुछ और भी ऐसी बातें थीं जिनका प्रभाव बराबर दक्षिण के राज्यों पर पड़ता रहा। बाहमनी और विजयनगर दोनों राज्य शुरू ही से बराबर

---

* फरिश्ता के आधार पर पहले आधुनिक लेखकों ने यही मान लिया था कि हसन बचपन में गंगू नामी ब्राह्मण का नौकर या गुलाम था, और अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये उसने अपना नाम 'ब्राहमनी' या 'बाहमनी' रखा था। परन्तु मेजर हेग ने सिद्ध किया है कि यह बात बिलकुल निराधार है। हसन ने कभी अपना नाम 'ब्राहमनी' नहीं रखा। उसके सिक्कों पर, एक मस्जिद के शिला-लेख पर, तथा अन्य पुस्तकों में भी उसका राजकीय नाम बाहमान शाह है। इसी कारण उसके उत्तराधिकारी 'बहमनी' कहलाये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
रायचूर दोआब के लिये लड़ते रहे। विजयनगर राज्य के कारण बहमनी राज्य का दक्षिण की ओर तो विस्तार रुक ही गया, परन्तु इससे भी अधिक प्रभाव यह हुआ कि बहमनी शासक उत्तर की ओर भी अपना विस्तार न कर पाये। दोनों राज्य लगभग समान शक्ति के थे, इसलिये दोनों में बराबर संघर्ष होता रहा। दूसरी विशेष बात बाहमनी राज्य में यह थी कि वहाँ के विदेशी मुसलमान अमीर लोग हर प्रकार से छोटे दर्जों के हिन्दुस्तानी मुसलमानों तथा हबशी लोगों से (जो वहाँ आ बसे थे) सामान्यतया अधिक चतुर और बुद्धिमान होते थे। राज्य में ऊँचे ऊँचे पद इन्हीं लोगों को मिलते थे। परन्तु इनकी संख्या थोड़ी थी। देशी मुसलमान इनसे बहुत ईर्ष्या करते थे। कई बार इन बाहरी अमीरों को शत्रु-दल ने कत्ल कर डाला। काले हबशी लोग भी सुन्नी थे और हिन्दुस्तानियों के साथ मिल जाते थे। यही वैमनस्य इस राज्य के नाश का एक बड़ा कारण हुआ।

हसन बाहमान शाह ने सन् १३४७ में गुलबर्ग (कुलबर्गा) को राजधानी बनाया। उसका राज्य उस समय बरार ज़िले के अन्दर ही परिमित था। चारों ओर स्वाधीन हिन्दू राज्य विद्यमान थे। हसन ने सब से पहले राज-विस्तार करना शुरू किया और आस-पास के कई क़िले अधिकृत कर लिये। तब उसने शासन को सुव्यवस्थित किया। अपने राज्य को चार 'तरफ़ों' या प्रान्तों में विभक्त किया। इनके मुख्य नगर थे गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार और बीदर। गुलबर्गा प्रान्त की सीमा शुरू में पच्छिम में घाट के पहाड़ों तक और बाद में समुद्र तक पहुँच गई। दौलताबाद गुलबर्गा के उत्तर में था। उसकी उत्तरी सीमा पर खान्देश और बगलान के राज्य थे। दौलताबाद के उत्तर-पूरब में बरार था, और बीदर उसके नीचे तैलिङ्गाना के भाग में स्थित था। सन् १२५८ में हसन की मृत्यु के बाद उसका लड़का मुहम्मद (प्रथम) गद्दी पर बैठा। सन् १३६१ में मिस्र के खलीफ़ा ने उसका दक्षिण का बादशाह होना स्वीकार किया। मुहम्मद ने शासन-प्रबन्ध को बहुत ही नियमित तथा उन्नत किया। उसकी शासन-पद्धति इतनी अच्छी थी कि बहमनी राज्य के टुकड़े हो जाने पर भी उनमें प्रचलित रही। उसने केन्द्रीय सरकार में आठ मन्त्रियों को नियुक्त किया—(१) प्रधान मंत्री, (२) निरीक्षण मन्त्री, (३) अर्थ मन्त्री, (४) परराष्ट्र मन्त्री, (५) उप अर्थ मन्त्री, (६) पेशवा, प्रधान मन्त्री का सहायक, (७) कोतवाल, अर्थात् पुलिस विभाग का अधिपति और (८) न्यायाधीश जो धर्म-विभाग का भी अधिकारी था। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छोटे बड़े अधिकारी नियुक्त किये गये। इनमें सरे-नौबत या सेनाध्यक्ष का नाम उल्लेखनीय है। प्रान्ताधिकारी लोगों की शक्ति बहुत अधिक थी। वे अपने प्रान्त में सर्व-शक्तिमान् से थे। सेना का संघटन करना, कर उगाहना, न्याय करना इत्यादि सभी काम उनके अधिकार में थे। मुहम्मद के समय में विजयनगर से युद्ध छिड़ गया, जो बराबर तब तक चलता रहा जब तक दोनों वंश विद्यमान रहे। तीसरे सुलतान मुजाहिद (१३७५–७८) ने रायचूर दोआब पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया। फिर पाँचवें बादशाह मुहम्मद द्वितीय (१३७८–१३९७) के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शासन-काल में बड़ी शान्ति रही। कोई लड़ाई नहीं हुई। साहित्य और कला की उन्नति हुई। सुलतान बहुत विद्याप्रेमी था और स्वयं कविता करता था। उसने फ़ारिस के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज को आमन्त्रित किया था, परन्तु वह समुद्र में तूफ़ान आने से डर कर शीराज़ लौट गया। इतना विद्याप्रेमी होते हुए भी अन्य सुलतानों की तरह वह धार्मिक पक्षपात से बरी नहीं था।

उसके बाद आठवें सुलतान ताजउद्दीन फीरोज़ (१३९७-१४२२) के समय में विजयनगर के राय से फिर लड़ाई शुरू हुई। यह लड़ाई बराबर देवराय के काल तक जारी रही। जान पड़ता है कि इस संग्राम में विजयनगर को कई बार हारना पड़ा और बहमनीं राजा ने उसे बड़ी क्षति पहुँचाई। फरिश्ता कहता है कि देवराय को अपनी लड़की वहमनी सुलतान को देनी पड़ी। यह उसकी सरासर गढ़न्त जान पड़ती है, क्योंकि बुरहान-ए-मआसिर का समकालीन लेखक, जो फ़रिश्ता से कहीं अधिक विश्वसनीय है, कहीं इसका ज़िक्र तक नहीं करता। न शिलालेखों में ही इसका कोई ज़िक्र पाया जाता है।

नवाँ सुलतान अहमद (१४२२-३९) था जिसने तिलंगाना के राजा को मार कर उसका राज्य अपने अधिकार में कर लिया। दसवाँ बादशाह अलाउद्दीन अहमद (१४३५-५८) था। इसके समय में विजयनगर की फिर इतनी बुरी हार हुई कि राजा ने बहमनी सुलतान को कर देने का वचन दिया और उसका आधिपत्य स्वीकार किया। १२ वें सुलतान निज़ाम के समय में विदेशी और हिन्दुस्तानी अमीरों में झगड़े शुरू हो गये। निजाम ने सन् १४६१ से १४६३ तक राज्य किया। १३ वें बादशाह मुहम्मद तृतीय ने सन् १४६३ से १४८२ तक राज्य किया। ये बादशाह पतित और निर्बल होते जा रहे थे। प्रान्तीय अमीर इतने प्रबल होते जा रहे थे कि बादशाह से कोई न दबता था। सलतनत के टुकड़े होने में देर न थी। सौभाग्य से बहमनी सुलतानों को एक अत्यन्त चतुर नीतिज्ञ और सच्चा हितैषी राजमन्त्री मिल गया था जिसने सलतनत को खण्डित होने से बचा रखा था। इसका नाम महमूद गावान था और यह ईरानी (फ़ारसी) था। गावान ने शासन के प्रत्येक विभाग में सुधार किये और बड़ी योग्यता से उसका संचालन दो पीढ़ियों तक किया। उसने सेना की सब बुराइयों को दूर करके फिर से उसमें नियम-पालन और कार्य-कौशल इत्यादि गुणों को प्रोत्साहन दिया। परन्तु दक्षिणी अमीर उससे डाह करते थे। उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड़यन्त्र रचा और एक बनावटी चिठ्ठी के द्वारा बादशाह को यह विश्वास दिला दिया कि गावान, विजयनगर के राय से मिलकर उस (यादशाह) को नष्ट करके स्वयं सुलतान बनने की चेष्टा कर रहा है। बादशाह ने शराब के नशे में बिना कुछ सोचे-समझे गावान को कत्ल करा दिया। इस प्रकार उस समय का सर्वोत्कृष्ट मनुष्य, गावान ईर्ष्या के हाथों नष्ट हुआ। उसके साथ ही बहमनी राज्य का सितारा भी डूब गया। उसका संघटन, दृढ़ता तथा व्यवस्था सब ढीले पड़ गये और शीघ्र ही सब सूबेदार स्वतन्त्र होने लगे। बहमनी राज्य के पाँच टुकड़े हो गये। इनका वर्णन करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
से पहले महमूद गावान के चरित्र के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक है।

गावान केवल अच्छा नीतिज्ञ और शासक ही न था, बल्कि उसका निजी जीवन भी अत्यन्त उत्तम एवं उच्च था। वह बहुत सादा जीवन व्यतीत करता था। उसका चरित्र अत्यन्त पवित्र था। उस समय के अमीरों और सरदारों की सामान्य बुराइयाँ उसमें न थीं। वह बड़ा वीर, साहसी, उदार, एवं न्यायशील था। वह स्वयं बड़ा विद्वान् था और अपना अधिक समय विद्वानों की संगत में व्यतीत करता था। उसने बीदर में एक महाविद्यालय खोला था जिसमें एक बड़ा भारी पुस्तकालय था। इसमें ३००० पुस्तकें थीं। दिन भर शासन का काम करने के बाद वह अपने महाविद्यालय में जाता और वहाँ विद्वानो के साथ बात-चीत तथा अध्ययन करने में समय लगाता। वह गणित तथा चिकित्सा-शास्त्र का विद्वान था और सुंदर अक्षर लिखने की कला का तो वह बहुत बड़ा ज्ञाता माना जाता था। उसने कई पुस्तकें भी लिखी थीं। पर एक पक्के मुसलमान के समान हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों का वह भी बहुधा नाश ही करता था।

बहमनी राज्य में से निम्नलिखित राज्य निकल कर अलग हुए थे—

(१) ईमादशाही वंश, बरार में।
(२) निज़ामशाही, अहमदनगर में।
(३) आदिलशाही, बीजापुर में।
(४) कुतुबशाही, गोलकुण्डा में। और
(५) बरीदशाही, बीदर में।

सब से पहले बरार के सूबेदार फतहउल्लाह इमादशाह ने अपने को बरार में स्वतन्त्र बनाया। उसके वंश ने कोई ७४ वर्ष राज्य किया। फिर वह निज़ामशाही राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

आदिलशाही वंश का प्रवर्त्तक यूसुफ़ आदिल शाह एक ग़ुलाम था जिसे गावान ने ख़रीदा था। गावान ने उसको एक उच्च पद पर नियुक्त किया था। उसने सन् १४८९ में स्वाधीनता प्राप्त कर ली। यूसुफ़ आदिल ने निकटवर्ती सरदारों से लड़ाइयाँ कीं और अपनी शक्ति खूब बढ़ाई। वह बहुत ही योग्य और उदार मनुष्य था। उस समय वही एक ऐसा मनुष्य था जिसमें धर्म का कुछ भी पक्षपात न था। धर्म-भेद के कारण वह कभी किसी को ऊँचा पद देने में संकोच न करता था। वह देखने में बहुत सुंदर, सुवक्ता, विद्वान् तथा अत्यन्त उदार था।

उसके बाद इस्माइल, केवल ६ बरस की अवस्था में, बीजापुर का सुलतान हुआ। उसकी चतुर माँ ने उसके धोखेबाज़ वज़ीर कमाल से उसकी रक्षा की और कमाल को मरवा डाला। जब इस्माइल युवा हुआ तब उसे अहमदनगर और विजयनगर से लड़ाइयाँ करनी पड़ीं, और सब में वह जीता। उसने रायचूर का दोआब विजयनगर के राय से छीन लिया। वह सन् १५३४ में मर गया। उसके बाद इब्राहीम आदिल शाह ने पहले तो सुन्नी धर्म फिर से स्थापित किया और बाहरी अमीरों को बड़े बड़े पदों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से हटा कर उनके स्थान पर दक्षिणियों तथा हवशियों को रखा। उसने अहमदनगर और गोलकुण्डा से लड़ाइयाँ कीं। परन्तु पीछे से वह विलासिता में पड़कर पतित हो गया। उसके उत्तराधिकारी अली आदिल ने विजयनगर के साथ अहमदनगर पर हमला किया और हिन्दुओं ने वहाँ की जनता पर बड़े अत्याचार किये। फल यह हुआ कि सब मुसलमान राज्यों ने मिलकर सन् १५६५ में टेलीकोटा की लड़ाई में विजयनगर साम्राज्य का नाश कर दिया। अली आदिल शाह का सन् १५७९ में वध हो गया। उसके बाद इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय ने सन् १६२६ तक राज्य किया। शुरू में जब वह छोटा था, तब लोकप्रसिद्ध चाँद बीबी ने उसकी संरक्षिका के रूप में राज्य का कार्य किया था।

निजाम शाही वंश का प्रवर्त्तक दक्षिणी दल का नेता निज़ामुल्मुल्क वहरी था। उसका पुत्र मलिक अहमद जुन्नेर का सूबेदार था। निज़ामुल्मुल्क को तो बादशाह ने मरवा डाला; परन्तु अहमद सन् १४९८ में स्वतन्त्र हो गया और उसने अहमदनगर को अपना केन्द्र बनाया। सन् १४९९ में उसने दौलताबाद पर कब्जा कर लिया। शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई और उसका नाबालिग पुत्र बुरहान निज़ाम शाह गद्दी पर बैठा। जब वह बड़ा हुआ तो उसने पहले तो बीजापुर के राय से सन्धि की और बीजापुर पर सन् १५५३ में घेरा डाला। इसके बाद निजाम शाही बादशाह इसी प्रकार अपने पड़ोसियों से लड़ते रहे। १६ वीं शताब्दी के अन्त में मुग़ल साम्राज्य का विस्तार उनके राज्य की सीमा तक पहुँच गया। फिर थोड़े दिनों में अहमदनगर मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

गोलकुण्डा—कुतुब शाही वंश का संस्थापक कुतुबुलमुल्क था जो बहमनी राज्य में तिलंगाना का सूबेदार था। उसने सन् १५१८ में अपनी स्वाधीनता की घोषणा की। गोलकुण्डा के अन्य सुलतान कुछ योग्य न हुए, परन्तु उनके यहाँ कई हिन्दू मन्त्री बड़े योग्य और नीतिज्ञ थे। इन लोगों के कारण गोलकुण्डा राज्य औरंगज़ेब के समय तक कायम रहा।

बीदर—क़ासिम बरीद के पुत्र अमीर बरीद ने, जो बहमनी वंश के अन्तिम शासक का मन्त्री था, उसके बीजापुर की शरण में चले जाने पर, सन् १५२६ में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। परन्तु उसके उत्तराधिकारी बड़े अयोग्य हुए। उसने सन् १६०७ में बीजापुर के सुलतान से छीनकर बीदर को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

विजयनगर

विजयनगर—विजयनगर साम्राज्य का आरम्भिक इतिहास अब तक अनिश्चित और विवादास्पद है। इसके विषय में कई दन्त-कथाएँ हैं। इनमें से जो आज-कल सब से अधिक सम्भाव्य मानी जाती है, वह यह है कि इस राज्य के संस्थापक दो भाई, हरिहर और बुक्काराय थे जो वारंगल के काकतीय राजा प्रतापरुद्र देव के कोष-विभाग में पदाधिकारी थे। जब सन् १३२३ में वारंगल पर मुसलमानी आक्रमण हुआ, तो वे वहाँ से भाग कर रायचूर प्रदेश में आनेगुण्डी के राजा के यहाँ आकर नौकर हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गये। जान पड़ता है कि यहीं पर किसी समय उन्होंने होयशल वंशीय अन्तिम राजा बीर बल्लाल तृतीय के शुरू किये हुए नगर को पूरा किया। इनका परम सहायक तथा नेता उस समय का प्रकाण्ड पण्डित विद्यारण्य था जिसने इस वंश की उसी प्रकार सहायता की जिस प्रकार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य की की थी। कहा जाता है कि इन भाइयों ने नगर का नाम अपने गुरु के स्मारक स्वरूप विद्यानगर अथवा विजयनगर रखा। इतना निश्चित जान पड़ता है कि सन् १३३६ तक यह नगर पूरा हो चुका था। यह तुंगभद्रा के किनारे पर बसा हुआ था। इस नगर तथा राज्य की स्थापना उस हिन्दू जाग्रति तथा प्रतिक्रिया का परिणाम थी जो उस समय दक्षिण में मुसलमानों के आक्रमण और धार्मिक अत्याचारों के कारण उत्पन्न हो गई थी।

इस राज्य का पहला राजा हरिहर था जिसने लगभग सन् १३५३ तक राज्य किया। परन्तु यह होयशल राजाओं के सीमा प्रान्त के सेनाध्यक्ष के रूप में कार्य करता रहा। सन् १३४४ में वारंगल के राजा प्रताप रुद्रदेव के लड़के कृष्णनायक ने मुसलमानों को दक्षिण से निकालने के लिये एक संघ बनाया था। इसमें इन भाइयों ने बहुत सहयोग दिया था। सन् १३४६ में अन्तिम होयशल राजा विरूपाक्ष बल्लाल की मृत्यु के बाद इन लोगों को राज्य-विस्तार का अवसर मिला। होयशल राज्य की समस्त भूमि उन्होंने अपने राज्य में मिला ली। विजयनगर साम्राज्य उत्तर में कृष्णा नदी तक, दक्षिण में कावेरी नदी तक, और पूरब-पच्छिम में समुद्र के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल गया। जैसा कि हम बहमनी वंश के वर्णन में कह आये हैं, उत्तर की ओर विजयनगर का विस्तार बहमनी राज्य के कारण रुक गया। दोनों राज्य नये और शक्तिशाली थे। दोनों आजीवन एक दूसरे को नष्ट करके सारे दक्षिण पर आधिपत्य जमाने का प्रयास करते रहे।

हरिहर के बाद उसका भाई बुक्क महीपति सम्राट् हुआ जिसने साम्राज्य की सीमा को और भी बढ़ाया एवं विजयनगर को भी पूर्ण तथा अधिक विस्तृत किया। ये लोग शैव मतावलम्बी थे, परन्तु अन्य मतों के प्रति बड़े उदार तथा सहनशील थे। एक बार वैष्णव और जैन धर्म के अनुयायियों में बड़ा भारी झगड़ा हो गया। बुक्क ने अत्यन्त चतुराई से दोनों दलों को सन्तुष्ट करके उनका फैसला कर दिया और दोनों दलों को शान्त तथा सन्तुष्ट कर दिया।

बुक्क की मृत्यु सन् १३७९ में हुई। उसका उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय हुआ। उसने पहले पहले महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। हरिहर बहुत शान्त तथा शान्तिप्रिय था। उसने मुसलमानों आदि से कोई संग्राम नहीं किया; प्रत्युत् अपना समय एवं शक्ति राज्य का शासन संघटित करने में लगाए। दक्षिण में उसके सेनाध्यक्ष ने कई नये प्रदेशों को जीत कर साम्राज्य में सम्मिलित किया। हरिहर की मृत्यु सन् १४०४ में हुई। उसका लड़का शीघ्र ही मर गया। उसके बाद देवराय प्रथम उत्तराधिकारी हुआ। उसे बहमनी वंश से जीवन भर लड़ना पड़ा और इसमें विजयनगर को क्षति भी उठानी पड़ी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसके बाद छठा राजा देवराय द्वितीय (१४१९-४६) बड़ा शूर-वीर हुआ। उसने भी बहमनी राज्य से लड़ाइयाँ कीं और अपनी सेना में मुसलमान अश्वारोहियों को भरती किया। परन्तु उसे कभी सफलता न हुई। उसके शासन काल में दो बाहरी यात्री एक इटली-निवासी निकोलो कॉण्टी नामक और दूसरा फ़ारस का दूत अब्दुर्रज़ाक विजयनगर में आया। इन दोनों ने अपने अपने यात्रा-विवरण लिखे हैं जिनसे उस राज्य एवं तत्कालीन दक्षिण के इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। निकोलो कोण्टी सन् १४२० के क़रीब भारत में आया था। वह लिखता है—"बाइज़ें गेलिय (विजयनगर) बड़े सीधे पहाड़ों के निकट बसा हुआ है। शहर का घेरा छः मील है। कहा जाता है कि इसमें ९० हज़ार मनुष्य ऐसे हैं जो हथियार चला सकते हैं। इस मुल्क के लोग कई ब्याह कर सकते हैं। यहाँ का राजा भारत में सब से अधिक शक्ति-शाली है। उसके प्रासाद में १२००० औरतें हैं जिनमें ४००० उसके साथ हर जगह जाती हैं। ये सब रसोई के काम में लगी रहती हैं। इतनी ही संख्या घोड़ों पर उसके पीछे चलती है। बाक़ी डोलियों में जाती हैं। इनमें से २००० या ३००० उसकी स्त्री बनने के लिये पसन्द कर ली जाती हैं। इन सबको उसके मरने पर उसके साथ सती होना पड़ता है।"

"वर्ष में एक बार वे अपने देवता (प्रतिमा) को रथों में रख कर शहर में सवारी निकालते हैं। इन रथों में सुसज्जित स्त्रियाँ इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये गायन करती हैं। बहुत लोग जोश में रथ के सामने लेट कर मर जाते हैं, क्योंकि यह माना जाता है कि ऐसी मौत से देवता बहुत प्रसन्न होते हैं।" इत्यादि। उसने यह भी लिखा है—"साल में ये लोग तीन त्योहार मानते हैं। एक पर वे दीपक जलाते हैं, दूसरे पर केसर का रंग एक दूसरे पर छिड़कते हैं।"

निकोलो के २० बरस बाद सन् १४४२ में अब्दुर्रज़ाक आया। उसने शहर का सविस्तार वर्णन किया है। उसने राज-दरबार का हाल भी लिखा है। उसने राजा को देखा कि वह ४० खम्भों के मण्डप में साटन का चोगा पहने हुए बैठा था और गले में इतने बहुमूल्य मोतियों की माला पहने था कि उनकी कीमत का अनुमान करना कठिन था। उसका रंग गन्दुमी, क़द लम्बा और शरीर पतला था। वह अत्यन्त अल्प-वयस्क प्रतीत होता था। अब्दुर्रज़ाक को राज्य की ओर से रोज़ खाने-पीने की इतनी सामग्री मिलती थी—२ भेड़ें, ४ जोड़ी मुरगे, ५ मन चावल, एक मन मक्खन, एक मन शक्कर और सोने के दो वाराह। सप्ताह में दो बार उसे दरबार में बुलाया जाता था। हर बार उसे पानों का बीड़ा, ५०० फनम की एक थैली और काफ़ूर के मिस्काल मिलते थे।

नगर के बारे में अब्दुर्रज़ाक ने लिखा है—"सारी दुनिया में ऐसा शहर न देखा गया है, न सुना गया। उसके चारों ओर ७ दीवारें हैं। बाहर की दीवार के चारों तरफ कोई पचास गज़ की चौड़ाई में आदमी की ऊँचाई के बराबर पत्थर जमीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
में बराबर बराबर गड़े हैं, जिससे कोई घोड़ा या सवार शहरपनाह के ६० गज के अन्दर नहीं जा सकता।

"शहर के अन्दर हर पेशेवालों का बाजार अलग है। जौहरी लोग खुले-आम हीरे, मोती, माणिक, पन्ने आदि बेचते हैं। इस बाजार में तथा राजा के प्रासाद के आस-पास पत्थर की बनी हुई पानी की छोटी छोटी नहरें बहती हैं।"

"राजा का दीवान-खाना इतना विशाल है कि एक प्रासाद जान पड़ता है। उसके सामने एक बड़ा कमरा है जो मुहाफ़िज़-खाना है। इसमें पुराने दस्तावेज़ सुरक्षित रहते हैं और यहीं बहुत से लेखक बैठते हैं।" देवराय द्वितीय की मृत्यु लगभग सन् १४४९ में हुई। उसके बाद उसके लड़कों से तिलंगाना के शक्तिमान जागीरदार सलुवा नरसिंह ने गद्दी छीन ली। परन्तु उसके उत्तराधिकारी से फिर उसके शूर वीर सेनापति तुलुवा वंशीय नरेश नायक ने गद्दी छीन ली। इस तुलुवा वंश का सबसे प्रसिद्ध तथा तेजस्वी राजा कृष्णदेव राय था। कृष्णदेव राय सन् १५०६ के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ। सउके शासन में विजयनगर उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। उसने बहमनी राज्य से युद्ध किये और उनसे खूब बदला लिया। कृष्णदेव राय बहुत शूर-वीर होने के अतिरिक्त बड़ा दृढ़ एवं उदार सासक था। वह स्वयं वैष्णव था, परन्तु अपनी प्रजा को उसने पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता दे रखी थी। उसके समय में भी कई बाहरी यात्री आये थे। उन सबने उसकी उदारता, उत्कृष्ट शिक्षा-दीक्षा तथा आकर्षक व्यक्तित्व की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। बाहरी यात्रियों के प्रति उसका व्यवहार बहुत उदार तथा कृपापूर्ण होता था। वह स्वयं बड़ा विद्वान था और संस्कृत तला तलुगू भाषा के साहित्यों का बड़ा पोषक था। उसके दरबार में 'अष्ट दिग्गज' अर्थात् आठ बड़े बड़े कवि थे। युद्ध विद्या में भी वह बहुत कुशल एवं चतुर था। उसके समान कोई शासक दक्षिण के इतिहास में नहीं हुआ है। समस्त दक्षिण पर उसका गहरा प्रभाव था। वह बड़ा प्रभावशाली था। जो कोई उससे मिलता, बिना प्रभावित हुए न जाता।

कृष्णदेव राय ने उड़ीसा के राजा को हराया और वहाँ की एक राजकुमारी से शादी की थी। फिर उसने बीजापुर के आदिल शाह को सन् १५२० में पराजित किया। इस समय हिन्दू विजेताओं ने इतना अनुचित और उद्दंड व्यवहार किया कि समस्त मुस्लिम राज्य भयभीत हो गये और विजयनगर से घृणा करने लगे। पुर्तगालियों से भी कृष्णदेव राय का सम्बन्ध था। उसे उनके घोड़ों आदि के व्यापार से बड़ा लाभ होता होता था। पुर्तगालियों ने गोवा को इसी के शासन काल में लिया था। कृष्णदेव की विजयों से साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया कि कटक से सालसीट तक और दक्षिण में मैसूर तक पहुँच गया। यह विस्तार देख कर उत्तरी मुस्लिम रियासतों को बहुत डर लगा और उनमें एका होने लगा।

तालीकोटा की लड़ाई—(सन् १५६५)—कई मुस्लिम रियासतों ने मिल कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़ी भारी तैयारी की और सन् १५६४ में विजयनगर पर धावा बोल दिया। कृष्णा नदी के किनारे तालीकोटा के पास सेनाएँ आकर ठहरीं। कृष्णदेव राय को बड़ा घमण्ड हो गया था। उसने पहले तो इनकी परवा न की, परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखें खुल गईं। फिर उसने तुरन्त तीन सेनाएँ तीन ओर भेजीं ताकि शत्रु को नदी पार न करने दें। उसी मैदान में बड़ा भारी युद्ध हुआ। अन्त को विजयनगर की सेना पराजित हुई और उसकी शक्ति नष्ट हुई। विजेताओं ने बड़ी मार-काट की। स्वयं कृष्णदेव राय भी मारा गया। फिर उन्होंने विजयनगर को लूटा और उसका संहार किया। विजयनगर की जनता के साथ जैसा नृशंस और घृणित व्यवहार शत्रुओं ने किया, वह अकथनीय है।

इसके बाद विजयनगर का ह्रास आरम्भ हुआ। फिर सन् १५७० में तिरूमल ने एक नया राजवंश चलाया। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा वेंकट प्रथम हुआ। उसने राज्य को फिर से दृढ़ किया। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के समय में राज्य शीघ्र ही दुर्बल हो गया। उत्तर में बहुत सा भाग मुसलमानों ने अपहरण कर लिया और दक्षिण में मदुरा तथा तंजौर आदि के नायकों ने राज्य के टुकड़ों से स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

शासन-प्रबन्ध—विजयनगर की शासन-व्यवस्था में जागीरदारी प्रथा तथा एकात्मक सत्ता का मिश्रण था। राजा की सहायता के लिए एक मन्त्री-मण्डल था जिसके सदस्य कतिपय मन्त्रियों के अतिरिक्त प्रान्तीय शासक, सेनापति, विप्रगण और विद्वान् होते थे। शासन अत्यन्त केन्द्रित था। राजा सर्वशक्तिमान था। सामान्य शासन का सँचालन, सेना विभाग की देख रेख, तथा न्यायाधीश का कार्य इत्यादि वह स्वयं ही करता था। उसे सब मामलों में मन्त्रणा तथा परामर्श देनेवाला प्रधान मंत्री होता था। उसके अतिरिक्त कोष-मंत्री और रक्षा विभाग का अधिष्ठाता आदि पदाधिकारी भी थे। विजयनगर का राज-दरबार बड़ा वैभवशाली था।

साम्राज्य दो प्रकार के विभागों में विभक्त था; अर्थात् प्रान्त या 'मण्डल' तथा जागीर-दारियाँ अथवा चोल, चेर, पाण्ड्य इत्यादि अर्ध-स्वतंत्र रियासतें। प्रान्तों के शासक राजा की ओर से नियत किये जाते थे और महामण्डलेश्वर कहलाते थे। जागीर-दार वंश-परम्परागत होते थे। प्रान्त कई नाडुओं (जिलों) में बँटे थे। तैलुगू प्रदेश में सीमा को नाड्ड कहते थे। नाड्ड या सीमा में कई स्थल होते थे। इन शासन-विभागों के अधिकारियों को केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती थी। साम्राज्य के प्रान्तों की संख्या अनिश्चित है। एक बाहरी यात्री पेज (Paes) के लेख के अनुसार आधुनिक लेखकों ने यह मान लिया है कि साम्राज्य में २०० प्रान्त थे। यह भूल है। साम्राज्य के प्रान्तों की तादाद बहुत थोड़ी थी। महामण्डलेश्वरों को भी काफी अधिकार थे। वे स्थानीय शासन के प्रत्येक विभाग के मालिक होते थे। राजा की ओर से समय समय पर उनका निरीक्षण होता था।

स्थानीय शासन का अन्तिम विभाग गाँव ही था। ग्राम-समिति गाँव का सब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रबन्ध करती थी। राज-कर उगाहना, प्रजा की रक्षा करना, छोटे मामलों में न्याय इत्यादि काम ग्राम-समिति के द्वारा निपट जाते थे।

राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत भूमि-कर ही था; परन्तु उसकी दर का प्रश्न बहुत विवादास्पद है। पुर्तगाली इतिहास-लेखक ने लिखा है कि पैदावार का $\frac{९}{१०}$ भूमि-कर के रूप में लिया जाता था। जान पड़ता है कि यह अनुमान करने में उसने भूल की है। तत्कालीन ग्रन्थ पराशर माधवीयम् में लिखा है कि भूमि-कर कुल पैदावार का $\frac{१}{६}$ होना चाहिए। एक और प्रमाण यह भी मिलता है कि १६ वीं सदी के शुरू में एक यात्री मि० बुशानन को उत्तरी कनाडा के एक पटेल से मालूम हुआ था कि चावल पर कर कृष्णदेव राय की पद्धति के अनुसार पैदावार का $\frac{१}{६}$ होता था। इससे जान पड़ता है कि भूमि कर $\frac{१}{६}$ के लगभग रहा होगा। आय के और भी कई स्रोत थे।

सैनिक विभाग का प्रबन्ध भी प्रायः प्रान्तीय शासकों के हाथ में था। राजा स्वयं भी एक बड़ी स्थायी सेना रखता था। बाकी सेना प्रान्तीय शासक भरती करते तथा उसे सुव्यवस्थित एवं युद्ध के योग्य रखते थे। यह ठीक है कि कृष्णदेव राय की सेना ६० हजार पैदल और ३२ हजार सवारों की थी।

४—काश्मीर—काश्मीर का कोई राजनीतिक सम्पर्क देहली की सलतनत से, मुगल युग तक न हुआ। प्राचीनकाल से ही अपनी विचित्र भौगोलिक परिस्थिति के कारण काश्मीर भारतीय साम्राज्यों से अलग ही रहा। तथापि किसी किसी साम्राज्य में काश्मीर को सम्मिलित होना पड़ा था, जैसे—मौर्य, कुशन और हूण साम्राज्यों में। ईसा की ७वीं शती में करकोट वंश के राजाओं के समय से कश्मीर का सम्पर्क देश के अन्य प्रान्तों से होना प्रारम्भ हुआ। इस वंश के राजाओं ने तक्षशिला तक के प्रदेश पर अधिकार जमा था। इस वंश का सबसे महान और प्रतापी राजा ललितादित्य मुक्तापीड़ हुआ (७२४–७६० ई०)। उसने समस्त उत्तरी भारत पर दिग्विजय की। उसने चीन से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित किया। उसने कश्मीर में मार्तण्ड मन्दिर इत्यादि अनेक बड़े बड़े भवन बनवाये जिनके खण्डहर उनकी महानता के साक्षी हैं। ८वीं शती के अन्त में करकोट वंश का ह्रास आरम्भ हुआ और ६वीं शती के बीच में उसी वंश के एक सम्बन्धी अवन्ति-वर्म्मन ने राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। उसका वंश उत्पल वंश कहलाता था। उत्पल वंशीय राजाओं के दरबार में बड़े बड़े विद्वानों को आश्रय मिलता था। अवन्ति वर्म्मन के दरबार का एक रत्न ध्वनि-कारिका की ध्वन्यालोक नामक टीका का रचेता, आनन्द वर्द्धन था। बौद्ध महाकाव्य कप्फनभ्युदय का लेखक शिवस्वामिन, हरविजय नामक महाकाव्य का रचेता रत्नाकर और बालकृत कादम्बरी को पद्यात्मक करनेवाला अभिनन्द भी, उसीके दरबार में थे। उसके बाद में अन्य राजाओं ने भी कला व साहित्य की वृद्धि करने में काफ़ी भाग लिया। इस वंश के अन्तिम राजा संग्रामदेव को उसके मन्त्री पर्वगुप्त ने सं० ९४९ के लगभग गद्दी से हटाकर राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। इस वंश की दिद्दा नामक रानी बड़ी बलशाली हुई। वह बड़ी दुश्चरित्र भी थी परन्तु उसका शासन बड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

योग्य एवं कड़ा था। दिद्दा ने अपने बेटे पोतों को हटाकर और मरवा कर ९५८ से १००३ ई० तक शासन किया और कई विष्णु मन्दिर तथा अन्य प्रकार के भवन बनवाये।

दिद्दा के मरने पर लोहारा वंश का अधिकार कश्मीर पर स्थापित हुआ। लोहारा वंश का पहला राजा संग्राम राजा (१००३–१०२८) महमूद गज़नवी का समकालीन था। उसका मन्त्री तुङ्ग तृलोचनपाल साही की सहायता के लिये एक सेना लेकर गया परन्तु उसकी हार हुई और इस कारण उसको अपने पद से हटना पड़ा। सं० १०१५ और १०२१ में महमूद गज़नवी ने दो बार कश्मीर पर भी चढ़ाई करने का प्रयास किया परन्तु निष्फल हुआ। इस वंश का हर्षनामक राजा (१०८९–११०१) अत्यन्त दुष्ट, अत्याचारी एवं योग्य भी था। उसकी मृत्यु के बाद कश्मीर का राज घरेलू लड़ाई, दुराचार, विश्वासघात एवं दुर्भिक्ष के गर्त में फँस गया। इसी वंश के राजा जयसिंह (११२८–११५५) के समय में कल्हण ने 'राज तरंगिणी' की रचना की थी। लोहारा वंश का ११७१ में अन्त हो गया। इसके बाद कश्मीर में सन् १३३६ तक हिन्दू राजाओं का राज्य बना रहा परन्तु उनमें कोई प्रतापी या बलवान न हुआ। १३३९ ई० में रानीकोट देवी के एक मुसलमान नौकर शाह मीर ने, जो लगभग २५ बरस से दरबार में नौकरी करता था, रानी को गद्दी से उतार दिया और स्वयं राजा बन बैठा। इस प्रकार कश्मीर पर मुसलमानी राज्य कायम हुआ।

कश्मीर के इतिहास की यह विशेषता है कि यद्यपि राजनीतिक रूप से यह प्रदेश भारतवर्ष से प्रायः अलग ही रहा, परन्तु उसका प्रभाव देश की राजनीति एवं सामाजिक जीवन पर काफ़ी पड़ा। इस राज्य की एक यह भी विशेषता रही कि उसके शासक प्रायः बड़े अत्याचारी हुए और उनके मन्त्री अथवा उनकी कई रानियाँ बड़ी दुराचारी होती थीं। प्रजा बड़ी निर्बल एवं निस्सहाय थी और कुलीन व ज़मीनदार गण उन पर कड़े कर लगाते थे। परन्तु ऐसी दशा सदैव ही नहीं रहती थी। कश्मीर में बड़े बड़े प्रतापी, प्रजापालक, एवं साहित्य व कला पोषक राजा भी हुए जिनके कारण कश्मीर के विद्वानों एवं कलाकारों ने कला व साहित्य के भण्डार को भरपूर किया।

काश्मीर पर मुसलमानी राज्य—शाहमीर ने शम्सुद्दीन के नाम से राज करना शुरू किया और १० बरस तक (१३३६–१३४९) योग्यता के साथ शासन किया। शम्सुद्दीन के वंशज बड़े क्रियाशील और योग्य हुए। कश्मीर की स्त्रियों का चरित्र प्रायः बहुत गिरा हुआ था। वे पतिव्रता नहीं होती थीं। इस सामाजिक दोष का सुधार करने के उद्देश से शम्सुद्दीन के बेटे अलाउद्दीन ने (१३५०–१३५९) यह कानून बनाया कि जो स्त्रियाँ पतिव्रता नहीं होंगी उनको पति की जायदाद पर कोई हक़ नहीं रहेगा। अलाउद्दीन के बाद उसका भाई शिहाबउद्दीन राजा हुआ (१३५९–७८)। उसने अपने राज का विस्तार करना शुरू किया और सिंध के शासक को पराजित किया।

इस वंश का राजा सिकन्दर (१३९४–१४१६) बड़ा कट्टर था। उसने हिन्दुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। उसने हिन्दू मन्दिरों और मूर्त्तियों को तोड़ा। उसने उन बहुत से लोगों को कश्मीर से निकाल दिया जिन्होंने इस्लामधर्म को ग्रहण करने से इनकार किया। इस प्रकार उसने कश्मीर की मुसलमानी आबादी को बहुत बढ़ाया। उसने सती प्रथा को भी रोका।

सिकन्दर का दूसरा बेटा ज़ैनुलआब्दीन था। इसने (१४२०–७०) तक राज्य किया। इसकी नीति इतनी उदार थी कि उसे कश्मीर का 'अकबर' कहा जाता है। यह कश्मीर का सब से महान् मुसलमान राजा था। वह धार्मिक व सामाजिक विचारों में अत्यन्त उदारचित्त था और निजी जीवन में अत्यन्त संयमी और सदाचारी। उसके केवल एक ही रानी थी। उसने जज़िया हटा दिया और जो हिन्दू उसके पिता सिकन्दर के काल में मुसलमान धर्म को ग्रहण न करने के कारण देश से निकाल दिये गये थे, उनको वापस बुलाया। हिन्दु मन्दिरों के निर्माण की फिर से उसने आज्ञा दी और गऊकुशी बन्द कर दी। वह अहिंसावादी था। शिकार खेलना उसने बन्द कर दिया था। वह मांस खाना भी पसन्द नहीं करता था। धार्मिक उदारता की नीति का पूरी तरह पालन करने के उद्देश से वह सती प्रथा को भी नहीं रोकता था। जैनुल आब्दीन साहित्य, कला एक ज्ञान का भी बड़ा सम्पोषक और सम्वर्द्धक था। वह विद्वानों और गुणीजनों का समुचित आदर करता और उनको प्रोत्साहित करता था। साहित्य चित्र कला और संगीत की उसने काफ़ी उन्नति की थी। संस्कृत, अरबी एवं अन्य भाषाओं के बहुत से ग्रन्थों के उसने फ़ारसी भाषा में अनुवाद कराये थे। वह स्वयं भीं बड़ा विद्वान् था।

जनता की आर्थिक उन्नति के हेतु उसने क़ैदियों के द्वारा सिंचाई के साधनों का निर्माण कराया। उसने चीज़ों के भावों को भी व्यवस्थित किया और राजकीय मुद्रा का सुधार किया।

अपने समकालीन पड़ोसी शासकों से जैनुल आब्दीन का बड़ा मैत्री का सम्बन्ध था। देहली, गुजरात और सिंध के सुलतानों से उसका अच्छा मेल था।

परन्तु एक ऐसे महान् आत्मा और उत्तम राजा के भी अन्तिम दिन दुःख से खाली न रहे। उसके बेटों में राजगद्दी के लिये परस्पर झगड़े शुरू हो गये। इसी कारण उसके मृत्यु के बाद कश्मीर की अवनति शुरू हो गई। राजदर्बार में मन्त्रियों में भी झगड़े शुरू हो गये। और इन लोगों ने राजा को तो बिलकुल अलग सा कर दिया। सं० १५४१ से १५५१ तक बाबर बादशाह के चचेरे भाई और तारीख–ए–रशीदी के रचेता, मिर्ज़ा हैदर दौलत ने कश्मीर पर राज किया। उसके बाद फिर सलतनत की वही दशा हो गई अर्थात् सुलतानों की निर्बलता एवं अयोग्यता और मन्त्री मण्डल का उन पर हावी होना। अन्त को सं० १५६१ में चक फ़िरक़े के सेनापति, ग़ाज़ी ख़ाँ चक ने शाहमीर के वंश का अन्त कर दिया। इस नये शासक के वंशज से सं० १५८६ में अकबर ने काश्मीर को जीत लिया।

उसके समय में वास्तुकला की भी बिशेष उन्नति हुई। बहुत सी पत्थर की कबरें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनी जो अब तक मौजूद हैं। श्रीनगर की प्राचीन हिन्दू शैली की बनी हुई एक काठ की मस्जिद को उसने बहुत बढ़वा था।

सातवाँ अध्याय

समकालीन हिन्दू रजवाड़ों की दशा

१४वीं शती के पहले चरण में तुर्की सलतनत समस्त देश पर फैल गई थी। तथापि देश के अनेक भागों में प्राचीन हिन्दू राजा व सामन्तगण अपने छोटे छोटे राज्यों को सुरक्षित किये हुए बैठे थे। जब तब इन राजाओं को तुर्की सुलतानों का आधिपत्य स्वीकार करना और उनको कर देना पड़ता था।

राजपूताने के राजवंश; चौहानवंश—इन राजवंशों में राजपूताने के राजवंश मुख्य थे। हम ऊपर कह आये हैं कि महमूद ग़जनवी के आक्रमणों के समय में विग्रहराज चौहान (दूसरा) के वंशज साँभर में राज्य करते थे। कहा जाता है कि उसने अन्हिलवाड़ा के राजा मूलराज को पराजित किया था। उसी के समय से चौहानवंश का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ। उसका वंशज पृथ्वीराज प्रथम लगभग ११०५ ई० में राजा हुआ। इसके पुत्र अजयदेव (अजयराज) ने 'अजयमेरु' (अजमेर) नगर की स्थापना की और उसे अपनी राजधानी बनाया।

अजयदेव के बाद अनलदेव (आर्णोराज या आणा) राजा हुआ। उसने अजमेर की पहाड़ियों में बाँध बनवा कर अणासागर झील बनवाई। इसने अन्हिल-वाड़ा के राजाओं से भी युद्ध किये। परन्तु उसका उत्तराधिकारी विग्रहदेव या विग्रहराज (बीसलदेव) चौथा बड़ा प्रतापी हुआ। उसने अपने राज्य का विस्तार देहली की तरफ़ किया और उस नगर को उसके तंवर वंशीय राजा से छीन लिया। तंवर राजा देहली पर १०वीं शती से राज करते थे। इन्हीं के एक पूर्वज ने देहली का लालगढ़ बनवाकर उस नगर की बुनियाद सं० ९९३–४ में डाली थी। यह वही क़िला है जिसके अन्दर कुतुबमीनार है, और जिसकी खुदाई गत १० वर्षों में शुरू की गई है।

विग्रहराज के छोटे भाई सोमेश्वर के राजकाल और फिर पृथ्वीराज, (तीसरे), जिसे मुस्लिम लेखक राय पिथोरा कहते हैं, के राज्यारम्भ का हम ऊपर बयान कर आये हैं। पृथ्वीराज ने सं० ११७७ से सं० ११६३ तक राज्य किया।

पृथ्वीराज निस्सन्देह समकालीन राजपूतों में सब से महान्, बलवान और योद्धा था। परन्तु ऐसे समय में जब कि देश पर बाहरी हमलों के बादल मण्डला रहे थे, उसने उत्तरी और मध्य भारत के अन्य राजपूत योद्धाओं को नीचा दिखला कर और उन पर आक्रमण करके, इस बात का पूरा परिचय दे दिया कि वह अपनी राजपूती-शान के सामने देश की रक्षा की आवश्यकता को तनिक भी नहीं समझता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने कन्नौज के गहरवार राजा जयचन्द्र की बेटी संयोगिता को हरण करके जयचन्द्र के आत्म सम्मान को इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि वह दिल्लीपति का जानी दुशमन हो गया। इतना ही नहीं ११८२ में उसने महोवे के राजा परमाल (परमार्दि देव) को हराकर उसे भी अपना शत्रु बना लिया। यह आत्महत्या की नीति देश के लिये घातक साबित हुई। हिन्दू लेखकों का कहना है कि तरावड़ी की लड़ाई के अवसर पर जयचन्द बजाय पृथ्वीराज की सहायता करने के उसके शत्रु विदेशी मुहम्मद गूरी से मिल गया।

पृथ्वीराज की हार और मारे जाने के बाद मुहम्मद बिन साम ने तुरन्त देहली और अजमेर को अपने अधिकार में कर लिया और पृथ्वीराज के बेटे गोविन्दराज को जो अभी बालक ही था, अजमेर का शासक बना दिया। गोविन्दराज के बचपन के कारण उसके चचा हेमराज (हरिराज) ने उसे गद्दी से उतार कर उससे राज छीन लिया। गोविन्दराज भाग कर रणथम्भोर के क़िले में जा रहा और वहाँ एक नए वंश की स्थापना की। उसके वंश का तीसरा राजा वीरनारायण बचपन में ही राजा हुआ और उसका चचा वागभट उसका राज-प्रतिनिधि हुआ। वीरनारायण सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश का समकालीन था। अल्तमश ने सन् १२२५ में रणथम्भोर पर चढ़ाई की परन्तु हार कर वापस आया। फिर उसने वीरनारायण को धोखे से देहली बुलवा कर ज़हर दे कर मार डाला और रणथम्भोर पर क़बज़ा कर लिया। उधर मालवे के देश-द्रोही पंवार राजा ने वीरनारायण के चचा बागभट्ट पर इस उद्देश से चढ़ाई कर दी कि अपने को देहली के बाद बादशाह का मित्र बना सके। परन्तु वागभट्ट ने उसे हरा कर भगा दिया। अल्तमश की मृत्यु के बाद वागभट्ट ने रज़िया के हाकिम से रणथम्भोर को छीन कर फिर से उसे अपनी राजधानी बनाया।

सन् १२४९ में बलबन ने रणथम्भोर को लेने का प्रयत्न किया किन्तु विफल रहा। वागभट्ट के बाद उसका बेटा जैयसिंह राजा हुआ। जैयसिंह ने शीघ्र ही राज-त्याग दिया और फिर १२८२ में उसका बेटा हम्मीर देव राजा हुआ। इसने १३०१ तक राज किया।

हम्मीर देव ने मालवे के राजा भोज (दूसरे) को दण्ड देने के लिये उस पर हमला किया, क्योंकि उसके पूर्वज ने अल्तमश को खुश करने के व्यर्थ प्रयास में रणथम्भोर पर हमला किया था। हम्मीर ने भोज को हरा कर उज्जैन पर अधिकार जमाया और फिर वहाँ से उत्तर की ओर चल कर गहलोत राजा लछमनसिंह को अपना आधिपत्य मनवाने पर मजबूर किया। लौटते समय उसने अजमेर, पुष्कर, साँभर, खण्डेला आदि स्थानों को भी अधिकृत किया। पूरब की तरफ़ हम्मीर ने गढ़मंडला के गोंड राजा को परास्त किया और उससे राज कर वसूल किया।

इन सब कामों से हम्मीर की ख्याति बहुत बढ़ी और दिल्ली के सुलतान जलालउद्दीन ख़ल्जी ने उसको दबाने के उद्देश से रणथम्भोर पर हमला किया, परन्तु असफल होकर वापस आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिर अलाउद्दीन के समय में हम्मीर ने अलाउद्दीन को इस बात से नाराज़ कर लिया कि गुजरात की चढ़ाई से लौटते समय जालोर में सुलतान के भाई उलू खाँ के विरुद्ध जिन नौमुस्लिम सैनिकों ने बलवा किया था, उनको हम्मीर ने अपने आश्रय में ले लिया। इन बलवाइयों का नेता एक नौ-मुस्लिम, मीर मुहम्मदशाह था। उलू खाँ ने बलवाइयों का पीछा किया और उनके दो सेनापयियों, अर्थात् भीम और धर्मसिंह को हराया। हम्मीर ने धर्मसिंह को अखता करवा डाला। इस पर धर्मसिंह और उसके भाई ने अलाउद्दीन से जाकर फ़रयाद की और सुलतान ने इस अत्याचार का बदला लेने के बहाने से रणथम्भोर पर चढ़ाई करने के लिये नसरत खाँ और उलू खाँ को भेजा। परन्तु नसरत खाँ तो मारा गया और उलू को हम्मीर ने मार भगाया। तब सुलतान स्वयं वहाँ पहुँचा। कई महीने के घेरे के बाद हम्मीर का मन्त्री रणमल दुश्मन से जा मिला और क़िले के गुप्त रास्ते घेरे वालों को मालूम हो गये। इस पर हम्मीर और मीर मुहम्मद शाह ने अपनी सब स्त्रियों को जौहर की आग में जला डाला। हम्मीर की रानी रङ्गदेवी ने भी इसी जौहर में अपने को भस्म कर दिया। हम्मीर के साथ, उसका भाई वीरम, और कई योद्धा वीर गति को प्राप्त हुए। राजद्रोही रणमल और उसके साथियों को भी अलाउद्दीन ने न छोड़ा। उनको भी मरवा डाला।

इस प्रकार हिन्दुस्तान से चौहान राज्य का अन्त हुआ। हम्मीर के प्रतापी जीवन एवं कार्यों का वर्णन कवि जयचन्द्र ने अपने हम्मीर महाकाव्य में और १४वीं शती में कवि सारंग धर ने अपनी हिन्दी कविता में किया है। अलवर की रियासत के उत्तर में निमराना राज के राजा अपने को पृथ्वीराज के वंशज कहते हैं।

मेवाड़ राज्य—मेवाड़ राज्य के गहलोत वंश का प्राचीन इतिहास हम ऊपर दूसरे अध्याय में दे आये हैं। १२वीं शती के मध्य में गहलोत वंश की दो शाखायें बन गईं। एक शाखा के लोग रावल कहलाते थे और दूसरी के राना। पहली शाखा की राजधानी चित्रकूट (चित्तौड़) में थी और दूसरी शाखा की राजधानी सिसोदा। इसी कारण राणा वंश सिसोदिया वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस वंश का प्रवर्त्तक राहुप नाम का सरदार था। रावल शाखा का पहला प्रतापी नरेश जैत्रसिंह हुआ। इसने १२१३–५६ तक राज्य किया उसका उत्तराधिकारी उसका बेटा तेजसिंह हुआ, और फिर समरसिंह और उसके बाद रतनसिंह जो सन् १३०२–१३०३ तक शासक रहा, अन्तिम रावल हुआ। रतनसिंह से अलाउद्दीन खल्जी ने चित्तौड़ को सन् १३०३ में छीन लिया। रतनसिंह की रानी पद्मिनी की कहानी जनता में प्रसिद्ध है। आधुनिक इतिहास वेत्ता इस कहानी की सचाई में सन्देह करते हैं। कहा जाता है कि पद्मिनी के अद्भुत रूप की चर्चा सुन कर दिल्लीश्वर अलाउद्दीन उस पर मोहित हो गया और इसी कारण उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और रावल रतनसिंह को धोखे से पकड़ ले गया। रानी पद्मिनी ने बड़ी चतुराई से अपने पति को सुलतान के पंजे से छुड़ाया। उसने सुलतान को पत्र लिखा कि मैं तुम्हारे पास अपनी आठ सौ सहेलियों के साथ आ रही हूँ; और अपने साथ आठ सौ सशस्त्र राजपूतों को डोलों में छिपा कर सुल्तान के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिविर में जा पहुँची। और इन आठ सौ राजपुत वीरों ने सुल्तान की अचेत सेना पर एक दम धावा करके रतनसिंह को छुड़ा लिया और वापस लौटे। चित्तौड़ में आकर सुल्तान के हमले के भय से बचने के लिये रानी पद्मिनी अपनी समस्त सहचरियों के साथ जौहर की आग में जल कर भस्म हो गई।

इस घटना के बाद चित्तौड़ का गहलौत वंश नष्ट हो गया फिर कुछ काल के पश्चात् सन् १३२६ के लगभग सिसोदिया शाखा के महाराना हम्मीर ने इस वंश का पुनरुत्थान किया और अपना राज्य स्थापित किया। महाराना हम्मीर ने सन् १३६४ तक राज्य किया और चित्तौड़ को फिर से जीत लिया। उसके बाद राना लाखा ने (सन् १३८२ से १३९७) चित्तौड़ के उन सब मन्दिरों और महलों को फिर से बनवाया जिन्हें अला-उद्दीन खल्जी ने मिस्मार कर दिया था। उसने अपनी प्रजा के सुख और उन्नति के लिये अनेक कार्य किये। खेती के लिये सिंचाई का सुप्रबन्ध किया। उसी के समय में मेवाड़ की भूमि में शीशे, जस्ते और चाँदी की खानों का पता लगाया गया। इनके कारण राजा और प्रजा की बहुत आर्थिक उन्नती हुई।

उसके बाद इस वंश का अत्यन्त प्रतापी एवं यशस्वी राणा कुम्भा हुआ (१४३३–६८) जो लाखा का पौत्र था। राणा कुम्भा केवल एक योद्धा ही नहीं था परन्तु बड़ा विद्वान् एवं विद्याव्यसनी भी था। उसने अनेक मंदिर और बड़े बड़े गढ़ मेवाड़ की पहाड़ियों के ऊपर बनवाये। इनमें रणपुर का जैन मंदिर वास्तु-कला का एक अत्युत्तम नमूना है और उसके बनाये हुये गढ़ों में कुम्भल गढ़ चित्तौड़ गढ़ के समान ही प्रसिद्ध है। मालवे का खल्जी सुल्तान महमूद प्रथम अपने वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक राणा कुम्भा का समकालीन था। राणा और महमूद के बीच निरन्तर युद्ध होते रहे और राणा ने महमूद को हरा कर चित्तौड़ गढ़ में एक जय-स्तम्भ बनवाया। वास्तु-कला की दृष्टि से यह स्तम्भ अपनी गूढ़तम प्रतिभा और सौंदर्य का एक अद्भुत एवं अद्वितीय उदाहरण है। यह जय-स्तम्भ आज तक विद्यमान है।

राणा कुम्भा को उसके लड़के ऊदा ने क़त्ल कर दिया। इसी ऊदा के भाई भोज-राज की स्त्री लोक प्रसिद्ध "मीरा बाई" थी जिसने अपने भक्तिरस मय गीतों से हिन्दी साहित्य को भरपूर किया और जनता को सच्ची भक्ति का मार्ग दिखलाया। मीराबाई ने प्रायः सन् १४७० में घरबार एवं सम्बन्धियों का मोह त्याग कर कृष्ण भक्ति में अपने जीवन को अर्पण कर दिया था।

ऊदा के बाद इस वंश का महान व प्रतापी राणा संग्रामसिंह या साँगा हुआ जिसने सन् १५०८ से २९ तक राज्य किया। राणा-साँगा ने सन् १५१७ में मालवे के खल्जी सुल्तान महमूद द्वितीय को हरा कर कैद कर लिया और फिर उसे छोड़ दिया। चित्तौड़ के राणा अपने को सूर्यवंशी मानते हैं और इस नाते से दिल्ली अर्थात् प्राचीन इन्द्रप्रस्थ को अपनी प्राचीन राजधानी समझते हैं। इसी कारण वे सुल्तानों से देहली को जीत कर वापस लेना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। यद्यपि उनका यह विश्वास सर्वथा भ्रान्ति-मूलक था, क्योंकि प्राचीन इन्द्रप्रस्थ चंद्र-वंशीय राजाओं की राजधानी थी न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि सूर्य वंशियों की। राणा संग्रामसिंह भी लोदी सुल्तान इब्राहिम से दिल्ली को छीन लेना चाहता था। इस उद्देश से उसने काबुल के बादशाह बाबर से सहायता माँगी। अपने देश के किसी भी शासक के विरुद्ध एक विदेशी विजेता को इस प्रकार आमंत्रित करना राजनीतिक दृष्टि से भारी भूल थी। इसी राजनीतिक निर्बुद्धिता का परिणाम ऐसा विनाशकारी हुआ कि उस विदेशी शक्ति ने दोनों को ही नष्ट कर दिया। राणा संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद सन् १५३४ में गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर हमला किया और उसको जीत लिया परन्तु हुमायूँ बादशाह के गुजरात पर चढ़ आने के कारण बहादुरशाह को भागना पड़ा, और चित्तौड़ फिर से स्वतन्त्र हो गया। इस समय वहाँ पर राणा उदयसिंह राज्य कर रहा था।

मारवाड़ राज्य—मारवाड़ अथवा जोधपुर के राठौर राजा अपने को कन्नौज के गहड़वाल वंश के वंशज मानते हैं। आधुनिक इतिहासिक खोज से यह बात निश्चय रूप से प्रमाणित हो गई है कि कन्नौज में एक समय एक राष्ट्रकूट वंश राज्य कर्ता था अतएव यह सम्भव है कि जोधपुर के राठोड़ इसी वंश के हों। १३ वीं और १४ वीं शती में यह लोग साधारण कोटि के सामन्त थे। रणमल राठौर की लड़की (१४०८ से १४४४ तक) मेवाड़ के राणा लाखा को व्याही थी। इस सम्बन्ध से राठौरों की शक्ति एवं प्रभाव बढ़ गया यहाँ तक कि इन लोगों ने मेवाड़ की गद्दी को ही हड़प करने का प्रयास किया, परन्तु वहाँ से निकाले गये। रणमल के चौबीस लड़के थे। इनमें सबसे जेठा जोधा था। उसने सन् १४५९ में जोधपुर बसाया। जोधाके बेटे सूरजमल ने (१४८८–१५१६) तक बड़ी वीरता से अनेक तुर्की लुटेरे सरदारों का मुकाबला किया और बहुत-सी राजपूत अबलाओं को उनके चंगुल से बचाया। इसका पोता गंगासिंह (१५१६-३२) राजा साँगा के साथ, खनवाहा के युद्धक्षेत्र में बाबर के विरुद्ध लड़ता हुआ, मारा गया। राठौर वंश का मुग़ल काल में बहुत उत्थान हुआ जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

आठवाँ अध्याय

समाज व संस्कृति

सामाजिक स्थिति—हर्ष के बाद भारतवर्ष की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था पर जिन जिन बातों का प्रभाव पड़ा, उनका दिग्दर्शन हम पहले खण्ड के पहले अध्याय में करा आये हैं। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से सारे देश में एक प्रकार की समानता पाई जाती थी। जात-पाँत के भेद-भाव, खान-पान के बन्धन, मूर्ति-पूजा तथा उसके साथ अनेक रूढ़ियाँ, कर्म-काण्ड का विकृत रूप और इसी प्रकार की अन्य परिपाटियाँ प्रचलित थीं। समाज का संघटन परिवारसंस्था पर आश्रित था। मनुष्य अपने नैतिक एवं सामाजिक जीवन में बड़े कड़े नियमों से जकड़े हुए थे। किसी को स्वतन्त्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विचार अथवा तर्क करने का अधिकार नहीं था। समाज का मानसिक नैतिक एवं धार्मिक नेतृत्व ब्राह्मण धर्माधिकारियों के हाथ में था। यद्यपि सम्प्रदाय अनेक थे, परन्तु मूर्ति-पूजा आदि की रीति सब में एक समान थी। भेद केवल इतना था कि कोई विष्णु की पूजा करता था, कोई शिव की और कोई दुर्गा की, इत्यादि। इसी प्रकार सारे देश में जात-पाँत के भेद एक समान फैले हुए थे। धर्म-ग्रंथों के पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार शूद्रों तथा अन्त्यजों को न था। धर्म ग्रंथ केवल संस्कृत में थे और उनका अनुवाद करना वर्जित था। मन्दिर बनवाना, उनमें चढ़ावे चढ़ाना, देवी-देवताओं की पूजा करना, उपवास करना, तीर्थ-यात्रा करना, देवी भागवत आदि किसी पुस्तक का पाठ कराना, आदि कार्य धर्म के मुख्य अङ्ग माने जाते थे। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक यही अवस्था थी। परन्तु राजनीतिक दृष्टि से पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। यदि राजा एक सम्प्रदाय का होता और प्रजा दूसरे की, तो वह उनके धर्म-पालन में हस्तक्षेप नहीं करता था। बौद्ध मत लगभग विलुप्त हो चुका था। वैष्णव और शैव सम्प्रदायों का विशेष विस्तार हो रहा था। इस युग के साहित्य एवं कला पर धर्म तथा समाज के उपर्युक्त तत्त्वों की अमिट छाप पड़ी। सहस्रों मन्दिर और देवालय, राज-प्रासाद, दुर्ग आदि बनाये गये। मूर्त्ति-कला, शिल्प, चित्र-कला, गायन-वादन और नृत्य आदि की अत्यन्त उन्नति हुई और इन सब विषयों पर संस्कृत भाषा में अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे गये जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं।

स्त्रियों की स्थिति भी एक दृष्टि से सन्तोषजनक न थी। उनमें उच्च शिक्षा का अभाव था। तथापि इस काल में कतिपय देवियाँ अत्यन्त विदुषी हुईं जिनके नाम इतिहास में अमर रहेंगे। इस बात से कुछ आधुनिक विद्वान् यह परिणाम निकालते हैं कि उस समय सामान्यतया स्त्री जाति में शिक्षा का प्रचार था। परन्तु उक्त विदुषी देवियाँ इनी-गिनी और अपवाद मात्र हैं, जिससे यही प्रमाणित होता है कि सामान्यतया स्त्री-शिक्षा का प्रचार उस समय नहीं था। घर में स्त्रियों का बड़ा मान होता था। स्त्री के सतीत्व की रक्षा करना मनुष्यों के लिए गौरव का काम समझा जाता था। परन्तु लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की कम क़द्र थी। लड़की के पैदा होने पर खुशी नहीं मनाई जाती थी। सती प्रथा भी जारी थी। कुछ जातियों, जैसे मद्रास के नायरों में, बहुपति (एक स्त्री के कई पति) की प्रथा थी। नीच जातियों में परदा कम था। जनता अंध-विश्वासों से ग्रस्त थी। जादू-टोने, जन्तर-मन्तर आदि बहुत प्रचलित थे। हिन्दू लोग दान बहुत करते थे। परन्तु इसका बहुत सा भाग निकम्मों और मुफ़त-खोरों के पास जाता था और दुराचार तथा कुरीतियों के बढ़ने का कारण होता था।

मानसिक दासता तथा कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन—क्रियात्मक दृष्टि से समाज की यह दशा सन्तोषप्रद नहीं थी। उसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन तथा परिशोधन की आवश्यकता थी। दक्षिण में १३ वीं शताब्दी से ही इस अवस्था के विरुद्ध जाग्रति चिह्न देख पड़ते थे। उस समय बहुत से समाज-सुधारक सन्त उत्पन्न हुए और उन्होंने समाज की कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इस सुधार के आन्दोलन में ज्ञानदेव,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो सबसे पहला है, देवगिरि के राजा रामचन्द्र यादव का समकालीन था। उसके बाद कोई २०० वर्ष तक ५० के लगभग सन्त और सुधारक समाजोद्धार का प्रयत्न करते रहे। इनमें कई स्त्रियाँ भी थीं और कई शूद्र एवं अत्यन्त नीच-जातीय लोग भी। इन सबने ब्राह्मणों के एकाधिकार तथा उनकी धर्म की ठेकेदारी पर प्रबल आक्रमण किये, जात-पाँत के भेदों को मिथ्या बतलाया और यह भी कहा कि सब को धर्म-पुस्तकों के अध्ययन का समान अधिकार है। सर्वसाधारण की भाषाओं में धर्म ग्रन्थों के अनुवाद और सारांश लिखे गये और स्वयं अपने विचार तथा उपदेश जनता की भाषा द्वारा व्यक्त किये गये। धर्म और तत्त्व के गहन विषयों की सामान्य भाषाओं द्वारा व्याख्या करने का कार्य बारहवीं सदी में ही मुकुन्दराज ने प्रारम्भ कर दिया था। उसने ब्रह्मविद्या तथा वेदान्त पर मराठी भाषा में विवेक-सागर नामक एक ग्रन्थ लिखा था*। इसी प्रकार उत्तर में मनुष्य मात्र के समानाधिकारों तथा सामाजिक और मानसिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन शुरू हुआ। हिन्दू जाति के विधायक सुधारकों के सामने दो समस्याएँ थीं—एक आन्तरिक और दूसरी बाह्य। आन्तरिक समस्या तो यह थी कि उच्च जातीय हिन्दुओं, विशेष कर ब्राह्मण-क्षत्रियों के दुर्व्यवहारों तथा अन्यायों से छोटी जातियों को छुड़ाना और उन्हें धर्म तथा समाज में समान अधिकार प्राप्त कराना। दूसरी समस्या थी हिन्दू मात्र को मुसलमान शासकों के अत्याचारों से मुक्त करना तथा हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक भेद-भाव, एक दूसरे के प्रति घृणा, तिरस्कार अथवा शंका, भय और धार्मिक पक्षपात के भावों को निकाल कर दोनों जातियों में परस्पर प्रेम, विश्वास तथा सहनशीलता के भाव उत्पन्न करना जिससे दोनों एक दूसरे की उन्नति में बाधक नहीं, बल्कि सहायक हो सकें। हिन्दुओं की सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों से, मनुष्य और मनुष्य के बीच ऊँच-नीच के भावों से, तथा मुसलमानों की सङ्कीर्ण धार्मिक और राजनीतिक नीति से जनता अत्यन्त दुःखी हो गई थी। समाज की आत्मा पुकार कर कह रही थी कि इन कुरीतियों का अन्त होने पर ही शान्ति तथा स्वतन्त्रता का राज्य स्थापित हो सकता है। जाति की अन्तरात्मा की इस मूक ध्वनि को प्रतिध्वनित करने-वाले महात्माओं में सबसे पहला नाम रामानन्द का है। रामानन्द ने १४वीं शताब्दी में अर्थात् तुग़लक़ साम्राज्य के युग में काशी में वैष्णव (भागवत) धर्म का प्रचार किया। उनका मूल सिद्धान्त यह था कि एक ईश्वर की सच्ची भक्ति करने और राम नाम जपने से जात-पाँत के सब बन्धन टूट जाते हैं और मनुष्य मात्र एक समान हो जाते हैं। उनके शिष्यों में जाट, नाई, चमार मुसलमान तथा स्त्रियाँ भी थीं। वे सब पूजा-पाठ तथा भोजन आदि साथ साथ करते थे। रामानन्द ने हिन्दी भाषा में ग्रन्थ लिखना तथा प्रचार करना शुरू किया और इस प्रकार केवल दलितों का ही उद्धार नहीं किया, बल्कि हिन्दी भाषा का भी बड़ा उपकार किया। रामानन्द के शिष्यों में

* 'थीइज्म इन मेडीवल इण्डिया', (जे कार्पेण्टर) पृ० ४५१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कबीर सबसे प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि कबीर का जन्म सन् १३९८ के लगभग बनारस में हुआ था और मृत्यु मगहर में सन् १५१८ के लगभग। इसके अनुसार कबीर की आयु १२० वर्ष की हुई। कबीर एक मुसलमान जुलाहे के घर में पले थे, परन्तु उन्होंने रामानन्दजी से वैष्णव धर्म की दीक्षा ली थी। कबीर ने तत्कालीन कुप्रथाओं, जात-पाँत के भेदों, मूर्ति-पूजा, मन्दिर-मस्जिदों के झगड़ों आदि के विरुद्ध बड़े ज़ोर से आन्दोलन किया और एकेश्वर वाद का प्रचार किया। हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव और छूआछूत को मिटाने में बड़ा भारी काम किया। वे निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार करते थे। इसी प्रकार बंगाल में चैतन्य देव (१४८६–१५३४) ने वैष्णव धर्म का प्रचार किया और कृष्ण-भक्ति को परम कर्त्तव्य बतलाया। चैतन्य ने भी व्यर्थ पूजा-पाठ आदि को छोड़कर आध्यात्मिक भक्ति पर जोर दिया और दलितों का उद्धार किया। गुरु नानकदेव (१४६९–१५३६) ने पंजाब में मनुष्य मात्र में भ्रातृ भाव तथा एकेश्वर वाद का प्रचार किया। इस प्रचार का प्रभाव मुसलमानों पर भी पड़ा। बहुत से मुसलमान फ़क़ीरों और सूफियों आदि ने तो दोनों जातियों को मिलाने का प्रयत्न किया ही, पर साथ ही मुसलमान शासकों ने भी कहीं-कहीं बड़ी उदारता दिखलाई। १५ वीं सदी के अन्त में बंगाल के अरबी सुलतान अलाउद्दीन हुसेन (१४९३–१५१८) और उसके बेटे नसरत ने बड़ी उदारता तथा समदर्शिता से राज्य किया और दोनों जातियों में मेल कराने का प्रयत्न किया। हुसेन ने पहले-पहल महाभारत और भागवत का अनुवाद बँगला भाषा में कराया। रामायण का अनुवाद कृत्तिवास नामक विद्वान द्वारा रामानन्द के समय में ही हो चुका था। कहा जाता है कि हुसेन ने हिन्दू मुसलमानों को मिलाने के लिये 'सत्य पीर' नामक एक पन्थ की स्थापना की थी।

मुस्लिम शासन का प्रभाव—मुसलमान बादशाहों की संकीर्णतापूर्ण तथा दमनवाली नीति का हिन्दुओं की सभ्यता पर बड़ा हानिकारक प्रभाव पड़ा। देवालयों, मठों और मन्दिरों को नष्ट करने से भी कहीं अधिक एवं अपूरणीय क्षति साहित्य ग्रन्थों को नष्ट करने से पहुँची। इसके अतिरिक्त उनकी दमन नीति का यह प्रभाव हुआ कि हिन्दू जाति की मानसिक शक्ति नष्ट हो गई और उच्च कोटि के विद्वानों का अभाव हो गया। इस युग में पूर्व काल के समान कोई उत्कृष्ट साहित्य या दर्शन आदि के ग्रन्थ न लिखे गये। न इस युग में कोई प्रतिभाशाली विचारक अथवा विद्वान् हुआ। हाँ, कतिपय प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद हुए और उन पर भाष्य तथा टीकाएँ लिखी गईं। परन्तु जब इस निश्चल स्थिति के विरुद्ध फिर से प्रतिक्रिया आरम्भ हुई, तब मानसिक विकास दूसरे रूप में प्रकट हुआ। भक्ति सम्प्रदाय के सन्तों ने प्रायः बोल-चाल की भाषाओं द्वारा गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्त व्यक्त किये और उनका प्रचार किया जिसके फल-स्वरूप हमारी आधुनिक देशी भाषाओं का विकास भी हुआ।

मुसलमानों की सामाजिक अवस्था—भी बहुत दिनों तक अच्छी न रही। वे बड़े विलासी हो गये। साम्राज्य के प्रायः सभी बड़े बड़े पद उनको दिये जाते थे। वे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोई कमाई का पेशा नहीं करते थे। आर्थिक चिन्ता न होने तथा भोग-विलास की विपुलता के कारण उनकी शक्ति नष्ट हो गई। उनमें दासत्व प्रथा भी प्रचलित थी। परन्तु दासों के साथ बुरा व्यवहार न किया जाता था। दास कभी कभी ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त कर लेते थे। उनको वज़ीर तक बना दिया जाता था। स्त्रियों की दशा कुछ सन्तोषजनक न थी। उनको किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं थी। परदे का रवाज बढ़ता जा रहा था।

आर्थिक स्थिति—मुस्लिम शासन में भारत की प्राचीन ग्राम-संस्था बनी रही; कारण कि मुसलमान शासक ग्रामों के प्रबन्ध आदि के झगड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। वे अपना कर लेकर सन्तुष्ट हो जाते थे और ग्राम-पंचायतों के हाथ में ग्राम का शासन छोड़ देते थे। इसलिये जब तक कर की मात्रा बहुत नहीं बढ़ जाती थी, तब तक गाँवों की दशा जैसी की तैसी बनी रहती थी। यातायात के साधनों या सड़कों आदि में सुलतानों ने कोई कथनीय उन्नति नहीं की थी। तुग़लक़ काल में इन बातों पर अवश्य ध्यान दिया गया था। परन्तु अलाउद्दीन खल्जी जैसे शासकों के राज्य में जनता को अवश्य असह्य कष्ट हुए। उसके आर्थिक नियमों का क्या प्रभाव हुआ होगा, इसका हम ऊपर विचार कर ही चुके हैं। व्यापार प्रायः नदियों और नहरों के द्वारा होता था। विदेशों से व्यापार बहुत कम होता था। उत्तर में खुरासान और फ़ारस आदि देशों से घोड़ों का व्यापार होता था। दक्षिण में भड़ोच (भृगुकच्छ) तथा कालीकट आदि बन्दरगाहों के द्वारा फ़ारस, मिस्र आदि देशों से व्यापार होता था। व्यापार की उन्नति या अवनति भी शासन के दृढ़ या निर्बल होने पर निर्भर थी। सामाजिक जीवन में बड़ी अस्थिरता थी।

यद्यपि बाहरी देशों से व्यापार तथा व्यवसाय नहीं होता था, तथापि जनता सामान्यतया सन्तुष्ट रहती थी, क्योंकि खाने-पहनने की किसी को कमी न होती थी। दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ अत्यन्त सस्ती थीं। दुर्भिक्ष पड़ने पर निर्बल शासकों के समय में अवश्य कष्ट होता था, परन्तु योग्य सुलतान उसके निवारण का प्रबन्ध कर लेते थे। मुहम्मद तुग़लक़ के समय में बहुत बड़े और लम्बे अकाल पड़े थे। सुलतान ने प्रजा के कष्ट दूर करने के बड़े उत्तम उपाय किये थे, परन्तु उसकी नीति ने उनका शुभ फल नष्ट कर दिया था।

धार्मिक स्थिति—आठवीं शताब्दी के बाद राजपूत युग में शैव और वैष्णव धर्मों की वृद्धि हुई जिससे बौद्ध धर्म का लोप हो गया। उसके अनेक तत्त्वों को नवीन हिन्दू धर्म ने ग्रहण कर लिया और वे शैव या वैष्णव धर्मों में मिलकर एक नये नाम से प्रचलित हुए। महायान धर्म के ध्यान तथा योगादि के सिद्धान्त शैव मत में सम्मिलित हो गये और भक्ति तथा लोक-सेवा आदि के सिद्धान्त वैष्णव मत में। हिन्दू धर्म का योगेश्वर शिव महायान धर्म के ध्यानी बुद्ध का रूपान्तर मात्र है। वैष्णव धर्म की भक्ति तथा ईश्वर-प्रेम, दरिद्रों की सेवा, साधु-सन्तों का प्राबल्य आदि सब महायान धर्म के ही अंग थे जिनमें हिन्दू धर्म ने नया जीवन फूँक दिया और निःशक्त बौद्ध धर्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पर विजय पाई। शैवों ने बौद्ध विहारों में अपने मठ बना लिये और वैष्णवों में बौद्ध श्रमणों का स्थान वैरागियों ने ले लिया। फल यह हुआ कि सर्वसाधारण को इस परिवर्त्तन का पता भी न चला। बात वही थी, केवल नाम का परिवर्त्तन हुआ था। फिर इसी समय बुद्ध भगवान को भी हिन्दुओं ने विष्णु का आठवाँ अवतार स्वीकार करके हिन्दू धर्म का एक अंग बना लिया। इस प्रकार हिन्दू धर्म न केवल बौद्ध धर्म को ही समूचा हड़प कर गया, बल्कि स्वयं बुद्ध महाराज को भी हज़म कर गया।

तान्त्रिक मत—महायान धर्म ने हिन्दू धर्म को तान्त्रिक मत भी उपहार स्वरूप दिया। तान्त्रिक मत का प्रादुर्भाव इस प्रकार हुआ कि तिब्बत, मध्य एशिया और चीन आदि देशों की अविकसित जातियाँ बौद्ध धर्म्म के गूढ़ तत्त्व, अध्यात्म दर्शन तथा आचार शास्त्र को समझने के सर्वथा अयोग्य थीं। उनमें प्रेत-पूजा आदि प्रचलित थी। यह देखकर बौद्ध धर्म के उन प्रचारकों को, जो उन देशों में गये थे, स्थानीय प्रचलित मत-मतान्तरों के साथ समझौता करना पड़ा। उन्होंने प्रचलित प्रेत-पूजा इत्यादि पर केवल बौद्ध मत का मुलम्मा चढ़ा दिया और उनके पूजा-पाठ को बौद्ध धर्म का अंग मान लिया। तान्त्रिक मत का उद्देश्य था तपस्या तथा यन्त्र मन्त्र के द्वारा भूत-प्रेतों पर अधिकार प्राप्त करना और फिर विषय-वासनाओं की तृप्ति, लोहे आदि धातुओं से सोना बनाना, जादू से दवा तैयार करना इत्यादि। इसी को वे मुक्ति का साधन समझते थे। इस तान्त्रिक बौद्ध मत के देवी-देवता शैव मत में अवतरित हो गये। शैव मत की देवी 'शक्ति' अथवा काली तान्त्रिक मत की तारा का ही रूपान्तर है। तान्त्रिक मत ८वीं सदी से १२वीं तक उत्तरी और पूर्वी बंगाल में बहुत फैला। बंगाल के अन्य भागों में भी इस मत का कुछ कुछ प्रचार हुआ।

इस्लाम धर्म का प्रभाव—हिन्दू धर्म की पुरानी पाचक प्रवृत्ति नष्ट हो गई थी, इसलिए वह मुसलमान धर्म को न पचा सका। इसका कारण यह था कि मुसलमान धर्म का आधारभूत एक मात्र सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। अतः मुसलमान यह कभी न मान सकते थे कि उनका अल्लाह भी हिन्दुओं के लाखों देवी-देवताओं में से एक है। दूसरे पठान साम्राज्य के काल में मुसलमानों की धारणा अन्त तक यही बनी रही कि हम विदेशी हैं और वे इसी प्रकार यहाँ व्यवहार करते रहे। हिन्दुओं ने तो उनके अल्लाह को एक अवतार बनाने का पूरा प्रयत्न किया और एक अल्लोपनिषद् तक बना डाला; परन्तु उन्हें सफलता न हुई। मुसलमानों के हिन्दू जाति में न मिल सकने का सबसे बड़ा कारण यह था कि हिन्दुओं ने अपना जातीय क्षेत्र बहुत संकुचित कर दिया था, जिसके अन्दर कोई बाहरी आदमी दाखिल ही न हो सकता था।

साहित्य और कला—साहित्य और कला के क्षेत्र में पठान साम्राज्य के काल में काफ़ी उन्नति हुई। देहली तथा अन्य बड़े बड़े शहरों में बड़े नामी मुसलमान विद्वान् और लेखक हुए जिन्होंने स्वतन्त्र पुस्तकों के प्रणयन के अतिरिक्त संस्कृत ग्रन्थों के फ़ारसी भाषा में अनुवाद भी किये। बहुत से मुसलमान बादशाह बड़े साहित्य-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रेमी तथा विद्वानों के पोषक होते थे। उनके दरबार में बड़े बड़े साहित्यिकों, कवियों तथा पंडितों को आश्रय मिलता था। उस समय के मुसलमान लेखकों में सबसे प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरू हुआ है जो बलबन, खल्जी तथा तुग़लक़ बादशाहों के दरबार में था। सन् १३२६ के लगभग उसकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि खुसरू ने कोई पाँच लाख शेर लिखे थे। उसकी पहेलियाँ और गीत आज तक गाँवों में प्रचलित हैं। खुसरू का साथी हसन देहलवी भी ऊँचे दर्जे का कवि था। मुहम्मद तुग़लक़ के समय में बद्र उद्दीन (बद्र-ए-चच) भी बड़ा प्रसिद्ध कवि हुआ। इस युग में कई बड़े प्रसिद्ध इतिहास-लेखक हुए। इनमें से कतिपय अधिक प्रसिद्ध नाम हम यहाँ देते हैं—मिन्हाज-उस्सिराज, गुलाम सुलतान नासिरउद्दीन के काल में, ज़िया उद्दीन बरनी, खल्जी और तुग़लक़ काल में, शम्से सिराज आफ़ीफ़, तुग़लक़ काल में, इत्यादि। १५वीं सदी में जौनपुर विद्या तथा कला का सर्वोत्कृष्ट केन्द्र हुआ, यहाँ तक कि शीराज़-ए-हिन्द कहलाने लगा। जौनपुर के विद्वान लेखकों में क़ाज़ी शहाबुद्दीन दौलताबादी और मौलाना शेख इलाहबादी के नाम प्रसिद्ध हैं। इस काल में अरबी और फ़ारसी भाषाओं में बहुत से संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भी हुए। अलबेरूनी ने, जो महमूद ग़ज़नवी के काल में भारत में आया था, स्वयं संस्कृत पढ़ कर बहुत से ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किये। फीरोज़ तुग़लक़ ने कोट काँगड़ा के पुस्तकालय की कई संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद कराया, और उसका नाम दलायल-ए-फीरोज़शाही रखा। सिकन्दर लोदी ने आयुर्वेद के एक ग्रन्थ का फ़ारसी में अनुवाद कराया था।

इस युग के हिन्दुओं के साहित्य को अनुवादों और टीकाओं का युग कहना अनुचित न होगा। कोई स्वतन्त्र दर्शन अथवा विज्ञान शास्त्र इस युग में नहीं लिखा गया। रामानुज से रामानन्द पर्यन्त भागवत वैष्णव धर्म के पहले नेता अपने अपने सिद्धान्तों को पुष्ट करने के हेतु वेदान्त, उपनिषदों तथा गीता पर टीकाएँ लिखते रहे। इस समय में जैन विद्वानों ने अध्यात्म तत्त्व पर बड़े गूढ़ ग्रन्थ लिखे। दूसरे और कवियों ने संस्कृत में गेय काव्य के अत्यन्त मधुर ग्रन्थों की रचना की। जयदेव का गीत गोविन्द गेय काव्य ग्रन्थों में अतुलनीय है। इसके अतिरिक्त बहुत से वीर काव्य (Epics) तथा नाटक भी इस काल में रचे गये। बीसल देव चौहान का हरिकेलि नाटक तथा उसके राजकवि सोमेश्वर का ललित विग्रहराज नाटक, जयसिंह सूरी का हम्मीर-मद-मर्दन इत्यादि नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। व्याकरण, न्याय, दण्डनीति इत्यादि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ रचे गये। दक्षिण में इस काल में विद्या की उन्नति और भी अधिक हुई। हम पहले बतला आये हैं कि देवगिरि के यादव राजाओं के काल में ज्ञानदेव ने अपनी प्रसिद्ध गीता की टीका ज्ञानेश्वरी लिखी। उसी के समकालीन राजा रामचन्द्र का यादव मन्त्री हेमाद्रि मोड़ी लिपि का जन्मदाता और बहुत बड़ा विद्वान् था। उसने अपने मित्र व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित बोप देव से कई ग्रन्थ लिखवाये और स्वयं चतुरंग चिन्तामणि की रचना की जिसमें अनेक विषयों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संग्रह है। १४ वीं सदी में दक्षिण का सर्वोत्कृष्ट विद्वान् और राजनीतिज्ञ मध्व या विद्यारण्य हुआ। उसके भाई सायणाचार्य ने वेदों का भाष्य किया। हरिहर और उसके भाइयों ने विजयनगर राज्य की स्थापना विद्यारण्य के परामर्श से ही की थी। इसी काल में हिन्दी साहित्य का भी उदय एवं विकास हुआ। आल्हा खण्ड, जिसमें महोबे के चन्देल राजा परमाल के वीर सैनिक आल्हा और ऊदल आदि की वीरता के कारनामों का बड़ी उत्तमता से वर्णन किया गया है, १२वीं शताब्दी में लिखा गया था। कवि अमीर खुसरो ने भी हिन्दी की बड़ी प्रशंसा की है और उसकी पहेलियाँ प्रायः हिन्दी भाषा में ही पाई जाती हैं। इसके बाद सन्त मण्डल ने बराबर हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में लिखना शुरू किया। इसी समय उर्दू का भी उदय हुआ। इस भाषा का भी सबसे पहला कवि अमीर खुसरू ही है। उर्दू में हिन्दी, फ़ारसी, तुर्की और अरबी के शब्दों का सम्मिश्रण है, क्योंकि यह पड़ाव की भाषा है। इसका व्याकरण हिन्दी के समान है।

कला—जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, मुसलमान शासकों की दमन नीति के कारण गणित, ज्योतिष, रसायन, आयुर्वेद आदि विद्याओं की उन्नति रूक गई थी, परन्तु कला के कुछ अंग जैसे चित्रण, तक्षण, मूर्तिनिर्माण आदि तो नष्टप्रायः ही हो गये। कारण कि इस्लाम धर्म में किसी जीव का किसी प्रकार का चित्र बनाना वर्जित था। परन्तु इस समय में वास्तु कला तथा संगीत इत्यादि की बहुत प्रशंसनीय उन्नति हुई।

वास्तु कला के क्षेत्र में मुसलमान बादशाहों ने प्राचीन हिन्दू शिल्पियों को नये प्रकार, नये रूप-रंग और नये ढंग के भवन बनाने में लगाया और इस प्रकार उनके हुनर और चातुर्य को नवीन क्षेत्रों में अपना चमत्कार दिखलाने का अवसर मिला। पठान कालीन भारतीय मुस्लिम वास्तु कला की विशेषता यह है कि यद्यपि उसके प्रायः सभी मुख्य मुख्य अंग पूर्व-कालीन हिन्दू कला से लिये गये हैं, तथापि उसमें अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व और रूप-रेखा विद्यमान है और ये गुण भिन्न भिन्न शैलियों में स्थानीय परिस्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न रूपों में पाये जाते हैं। भारत में मुस्लिम वास्तु कला की लगभग १० शैलियाँ हैं। इनमें देहली की शैली मुख्य तथा सबसे पुरानी है। यहाँ पर पहले हिन्दू मन्दिरों को तोड़ कर उन्हीं के स्थान पर मस्जिदें बनाई गईं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण देहली की जामा मस्ज़िद अथवा कूवतुल इस्लाम मस्जिद में मिलता है। १२ वीं सदी में अर्थात् दास वंश के समय में वास्तु की निर्माण पद्धति में कोई विशेष भेद न हुआ। पुराने हिन्दू मन्दिरों को बदल कर मुसलमान धर्म के उपयुक्त बना लिया गया। हाँ, बलबन के काल में सबसे पहले निर्माण पद्धति में एक उल्लेखनीय परिवर्त्तन हुआ, अर्थात् डाट या मरगोल बजाय टोड़ों के त्रिज्याकार (Radiating) प्रणाली पर बनती शुरू हुई। इस काल में बाहरी खुदाई आदि में भी स्पष्ट परिवर्तन हो गये थे। खल्जी काल में सुलतानों की वास्तु-कला अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की हो गई थी। उसकी सजावट, रचना-शैली, अंग-विन्यास, गुम्बद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
इत्यादि सब बड़े उत्तम एवं सुन्दर एवं कोमल हो गये थे। तुग़लक़ काल में फिर से कोमलता को त्याग कर भवनों को बहुत भयावह, सादा, और अजेय तथा अभेद्य रूप धारण करना पड़ा। अलाउद्दीन खलजी के बनाये हुए अलाई दर्वाज़े और ग़यास तुग़लक़ के मक़बरे तथा क़िले की तुलना करते ही पता चल जाता है कि दोनों वर्गों की इमारतों में कितनी भिन्नता है। फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने बहुत सी इमारतें बनवाईं। इनमें उसने फिर कुछ कोमलता, सरलता एवं विशालता के गुण लाने का यत्न किया। इसके बाद सुलतानों के वज़ीरों ने अठपहलू ढंग की मस्जिदें और मक़बरे बनाने शुरू किये। सिकन्दर लोदी के समय दोहरे गुम्बद का निर्माण होना शुरू हुआ। यह एक अत्यन्त प्रशंसनीय एवं अद्भुत नवीन मार्ग था।

प्रान्तीय शैलियों में जौनपुर, गुजरात, मालवा, बंगाल, गोलकुण्डा और बीजापुर के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब की शैलियाँ अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व लिये हुए हैं। जौनपुर शैली की विशेषता मस्जिदों में मीनारों के स्थान पर बीच के भारी भारी द्वार (Propylon) हैं जो और कहीं नहीं पाये जाते। गुजरात में आबू के प्राचीन मंदिरों की कला का रूपान्तर तथा विस्तार है। मालवे की कला तो केवल देहली की नकल है। परन्तु गुजरात तथा मालवे की इमारतें विशालता तथा दृढ़ता में किसी से कम नहीं हैं। बंगाल में पत्थर की कमी होने से मुख्यतया ईंटों की ईमारतें बनाई गईं। दक्षिण में गुम्बद तथा डाट का अत्यन्त विकास हुआ। भावी मुग़ल कला इसी पठान-कालीन कला के आधार पर इतनी उन्नति को प्राप्त हुई।

इस समय में गायन-वादन की भी यथेष्ट उन्नति हुई। अमीर ख़ुसरो ने सामान्य जनता के मनोविनोदार्थ बहुत सी पहेलियाँ तथा गीत बनाये जो अब तक घर घर में गाये जाते हैं। उसने "फूलवालों की सैर" नामक एक मेले की स्थापना की जो आज तक देहली में श्रावण मास में बड़े समारोह के साथ होता है और जिसमें बहुत से गाने-बजानेवाले इकट्ठे होते हैं। कहा जाता है कि अमीर ख़ुसरो ने रागों में भी कुछ नई बातें पैदा की थीं।

—*❀*—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी कुछ नई प्रकाशित पुस्तकें

१. सूरदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल २॥)

२. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन
डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ४॥)

३. अजातशत्रु (समीक्षा) ॥)

४. स्कन्दगुप्त (,,) ॥।)

५. चन्द्रगुप्त (,,) ॥=)

६. आधुनिक काव्यधारा—डा० केशरी नारायण शुक्ल ३॥)

७. हिन्दी उपन्यास—शिव नारायन श्रीवास्तव ३॥)

८. चिन्तामणि (द्वितीय भाग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल २॥)

९. जौहर (महाकाव्य) श्यामनारायण पांडेय ४)

१०. नूरजहाँ (,,) गुरुभक्त सिंह २)

११. विक्रमादित्य (,,) ,, ५)

१२. चिकोटी—इन्द्रशङ्कर मिश्र १॥।≡)

१३. भारतीय लोकनीति—एस० वी० पुणताम्बेकर ३॥)

१४. नागरिक नीति , २॥)

१५. भारतीय राजनीति और शासन-पद्धति—कन्हैयालाल वर्मा ५)

१६. भारतीय शासन ,, ४॥)

१७. सरल मनोविज्ञान—लालजीराम शुक्ल ५)

१८. बाल मनोविकास ,, ५)

१९. घनानन्द कवित्त—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र २)

२०. घन आनन्द और आनन्द घन ,, ७)

पुस्तक मिलने का पता —

नन्दकिशोर एण्ड ब्रद

चौक, बनारस